

HARIVANSH KATHA

(An Abridged Hindi Edition)

by

MadayaJ Jain

Price Rs 7 50

Copyright 1970.

प्रकाशक : अहिंसा मंदिर प्रकाशन,
१, अंसारी रोड, दरियागज, दिल्ली-६
(द्वारभाष . २७३५३७)

संस्करण : प्रथम १६७०

मुद्रक : उद्योगशाला प्रेस, हरिजन सेवक संघ,
किंग्सवे कैम्प, दिल्ली-६

मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

आद्यमिताक्षर

‘हरिवंशकेतुरनवद्य विनयदमतीर्थ नायकं ।
शोलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥’
—बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, अरिष्टनेमिजिनस्तोत्र, १२२

भारतीय वशो का इतिहास उस वट बीज के समान है, जो विशाल वृक्ष का रूप धारण कर क्रमशः अपनी शाखा-उपशाखाओं से भू-मडल के विस्तृत क्षेत्र को व्याप्त कर लेता है और कालान्तर में जिसकी सन्तान परम्परा की गणना अशक्य हो, सर्वथा अनुमान मात्र का विषय रह जाती है। ऐसी स्थिति में इस युग में कर्मभूमि के प्रारम्भ से अब तक कितने वशों का उदय और कितनों का अस्त हुआ, यह जानना सर्वथा दुरुह कार्य है।

साधारणतया माना जाता है कि युग के आदि में कुलकर (मनु) नाभिराज से आदि तीर्थकर ऋषभदेव का उदय हुआ और इनके नाम से ‘पुरुषा’ की उत्पत्ति हुई। पुरु का अर्थ होता है ‘आदि’ या प्रथम। राजा श्रेयाश ने इश्वरस का दान दिया अथवा ‘इक्षु’ की विधि बतलायी, इस हेतु वश का नाम ‘इक्षवाकुवश’ पड़ा। इस प्रकार कभी प्रमुख के नाम से तो कभी प्रमुख के कार्य से वशों के नामकरण होते रहे। सूर्यवश, वानरवश, हरिवश और यदुवश आदि सभी का इतिहास ऐसा ही रहा है।

हरिवश-कथा हमारे सामने है। इस वश के इतिहास का प्रारम्भ दसवें तीर्थकर शीतलनाथ के युग से प्रारम्भ होता है। वश के नामकरण में तत्कालीन राजा ‘हरि’ प्रमुख कारण हैं। कालान्तर में वहुत से राजा-महाराजा और तीर्थकर आदि अनेकों लोकोत्तर महापुरुषों ने इस वश में जन्म लिया। तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथ इसी वश के अवतास थे। मूल रूप में बाईसवें तीर्थकर नेमिनाथ भी इसी वश के थे, जो कालान्तर में यदुवशी नाम से प्रसिद्ध हुए।

वशों के इतिहास-ज्ञान से हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के सरक्षण और वर्धन को पूरा-पूरा बल मिलता है। हमें अपनी प्राचीन सुपरम्पराओं का ज्ञान होता है और हम अपने कर्तव्यमार्ग पर दृढ़ रह सकते हैं।

हरिवश के इतिहास-ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में लेखक श्रीयुत माईदयाल जैन का साहसिक प्रयत्न है। वे सिद्धहस्त लेखक हैं। यद्यपि वस्तु-स्वरूप अगम्य और छब्बस्थज्ञान के अगोचर हैं। उसका निरन्तर मनन-चिन्तन करने पर भी नवीन-नवीन वाते सामने आती रहती हैं। ऐसी स्थिति में किसी निश्चित कथन का दावा करना सर्वथा असम्भव है। तथापि हमें इतना विश्वास होता है कि लेखक ने ग्रन्थ-गुन्थन में पर्याप्त छानवीन और परिश्रम किया है।

नि सदेह प्रकाशक धर्मनिरागी लाला राजकृष्ण जी जैन की रुचि धर्म-प्रभावना और सन्मार्ग में विशेष है। उन्होंने पहले भी अनेकों सास्कृतिक और सामाजिक कार्य किये हैं। आज भी उनकी रुचि धर्म में है। पाठकगण प्रस्तुत कृति के प्रकाशन से अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करें, ऐसी हमारी भावना है।

आशीर्वाद ।

—विद्यानन्द मुनि

रामपुर मनिहारान
चैत्र वदि ६ वृषभ-जयन्ती
बीर निर्वाण सवत् २४६५

प्रकाशकीय वर्तव्य

जैन साहित्य इन चार भागों में विभक्त है : (१) कर्णानुयोग, (२) द्रव्यानुयोग, (३) चरणानुयोग और (४) प्रथमानुयोग । कर्णानुयोग में ससार रचना और भूगोल आदि का वर्णन है, द्रव्यानुयोग में जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश छह द्रव्यों का वर्णन है । चरणानुयोग में मुनियों तथा गृहस्थों (श्रावकों) के आचरण का उल्लेख है और प्रथमानुयोग में पुराण, चरित्र तथा कथाएँ आदि हैं ।

जैन साहित्य जहां अति विपुल, विशाल और भारत की प्राचीन भाषाओं जैसे प्राकृत तथा सस्कृत में है, वहां अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी आदि तथा द्राविड़ भाषाओं कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलंगु में भी है । जैन आचार्यों तथा लेखकों ने किसी विशेष भाषा का आग्रह न करके सभी भाषाओं को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया है । उन्होंने जैन धर्म, दर्शन, सिद्धान्त, नय, तर्क आदि विषयों के अतिरिक्त दूसरे लौकिक विषयों गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, वनस्पति शास्त्र और स्थापत्य कला आदि-आदि को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । इन की रचनाओं के माध्यम तथा अध्ययन से भारतीय 'साहित्य,' दर्शन, इतिहास आदि तथा भाषाओं के पूर्ण विकास का नित्र देख सकते हैं । पर खेद है कि जैन साहित्य के इस ढंग से अध्ययन की ओर विदेशी तथा भारतीय विद्वानों का ध्यान उतना नहीं गया है, जितना उनका ध्यान वैदिक और वौद्ध साहित्य के अध्ययन की तरफ गया है ।

जैन आचार्य तथा लेखक महान् पुराण लेखक और कथाकार भी थे । इनके माध्यम से वै पाठकों तथा श्रोताओं को न केवल धर्म की बातें बताते थे, वरन् मानवीय अनुभव बताते थे और

कहानियों के द्वारा उनका मनोरजन करने के अतिरिक्त उन्हे शिक्षा भी देते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने राम, कृष्ण, पाण्डवों तथा कौरवों आदि की सुप्रसिद्ध कथाओं को अपनाकर उन्हे जैन साहित्य का अग्र बनाया और लोककथाओं को भी अपने साहित्य में इस ढंग से स्थान दिया है कि वह उसका अभिन्न अग्र बन गया है। उनकी 'हाथी और सात अधों की कहानी' अनेकान्त दर्शन को इतने अच्छे तथा हृदयग्राही ढंग से पेश करती है, कि वह विश्वसाहित्य में स्थान पा गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुराण, चरित्र तथा कथासाहित्य में जैन आचार्यों तथा लेखकों का अपूर्व तथा प्रशसनीय योगदान है।

हमारा विचार है कि इन जैन पुराणों, चरितों तथा कथाओं को नई शैली में सरस-सरल तथा रोचक भाषा में पाठकों को दिया जाय, जिससे अधिक सख्त्या में पाठक उससे लाभान्वित हो सके। हमारा यह भी विचार है कि इस साहित्य को नाटकों, एकाकियों तथा उपन्यास आदि विधाओं में भी प्रकाशित किया जाय। जैन कथा-साहित्य में इतनी विपुल मात्रा में सामग्री मौजूद है कि उसके लिए लेखकों की टीमें (मण्डलियां) हो और प्रकाशन के लिए अनेक संस्थाएँ हों।

अपने उपर्युक्त विचार को कार्यान्वित करने के लिए हम सुप्रसिद्ध हरिवश-पुराण को 'हरिवश-कथा' के रूप में जैन समाज, और हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध लेखक श्री माईदयाल जैन से लिखवा कर साहित्य जगत् को भेट कर रहे हैं। वे पचासों पुस्तकों के लेखक होने के साथ-साथ शिक्षा शास्त्री भी हैं। हमे आशा है; साहित्य प्रेमी हमारे इस प्रकाशन का न केवल स्वागत करेगे, वरन् वे अपने स्वाध्याय में इसे उचित स्थान देंगे।

हमे यह बात बड़े खेद से लिखनी पड़ती है, कि हरिवश-कथा के मुद्रण में प्रेस ने विलम्ब किया, जिससे हमे अपनी प्रकाशन योजना

को कार्यान्वित करने में बड़ी रुकावट हुई। अच्छे कामों में कितने विघ्न आते हैं, उसका यह एक उदाहरण है।

हम मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज के अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होने अपने अत्यन्त मूल्यवान् क्षण हमे देकर इस रचना के लिए आशीर्वचन लिखे और इस पुस्तक को सम्मान प्रदान किया।

राजकृष्ण जैन

नयी भूमिका

आचार्य श्री जिन सेन द्वारा वि० स० द४१ मेरचित सस्कृत हरिवश पुराण के नये रूप हिन्दी हरिवश कथा की यह नयी भूमिका है। इसे नयी भूमिका इस लिए कहा गया है, कि इसके साथ एक प्राचीन पुराण को नये ढंग से लिखकर साहित्य जगत् को भेट किया जा रहा है।

अहिसा मन्दिर, दिल्ली, के स स्थापक और मेरे पुराने मित्र श्री राजकृष्ण जैन का यह विचार है, कि जैन पुराणों, चरितों और कथा-साहित्य को नयी शैली मे सरस, सरल और रोचक भाषा मे प्रकाशित किया जाय, जिससे पाठक उच्चिपूर्वक उसे पढ़ कर लाभान्वित हो सके। इतना ही नहीं बहुत से जैन-अजैन विद्वानों का यह मत भी है कि इस पुराण आदि साहित्य मे वर्णित कथानकों को योग्य अधिकारी लेखकों के द्वारा लिखवाकर साहित्य की नयी-नयी विधाओं जैसे नाटक, एकाकी और उपन्यास आदि के रूप मे भी प्रकाशित किया जाय। मैं श्री राजकृष्ण जैन और दूसरे विद्वानों के इन दोनों विचारों से पूरे रूप से सहमत हूँ और इसकी आवश्यकता को भी अनुभव करता हूँ।

जब श्री राजकृष्ण जैन ने मुझ से इस हरिवश पुराण को कथा रूप मे सक्षिप्त करके लिखने को कहा, तो मैंने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया और मैं अपनी सीमाओं को जानते हुए भी इस महान् काम को हाथ मे लेने को तैयार हो गया।

जैन पुराणो मे मुख्य कथा उप-कथाए तो होती ही है, उनमे दर्शन, सिद्धान्त, त्रिलोक वर्णन और मुनियों तथा गृहस्थों के आचरण आदि का भी बड़ी मात्रा मे वर्णन होता है। प्राचीन पुराण शैली मे यह अनिवार्य था। पर आज कथा के सम्बन्ध मे

यह विचार है, कि कथा मे न अप्रासादिक सामग्री हो और न उपदेश हो। पाठक कथा पढ़ ले, श्रोता कथा सुन ले और फिर उन के हृदयों पर कथा के उपदेश या शिक्षा का प्रभाव स्वयं पड़ जाय। इसके अतिरिक्त वडे-वडे पुराण या चरित्र पढ़ने-सुनने के लिए भी आज किसी के पास समय नहीं है। इसलिए कथाओं को सक्षेप मे देने की परिपाटी बढ़ रही है।

हरिवश पुराण के आधार पर रचित या पुनर्कथित—रिटोल्ड (Retold) प्रस्तुत हरिवश कथा मे उपर्युक्त वातों का ध्यान रख कर उसे सक्षेप मे सरस, सरल और रोचक भाषा मे लिखा गया है। पुराण को सक्षिप्त करते हुए मुख्य कथा तथा उपकथाओं को यथोष्ट रूप मे दिया गया है जिससे कथा मे कोई कमी न आने पाये। सक्षिप्त होते हुए भी यह हरिवश कथा बड़ी ही मालूम होगी। पर इससे अधिक सक्षिप्त करना मैंने उचित नहीं समझा। मैं अपने इस प्रयत्न मे कहा तक सफल हुआ हूँ, इस का निर्णय मैं विद्वानों तथा योग्य पाठकों पर छोड़ता हूँ।

अहिंसा मन्दिर प्रकाशन के सचालकों तथा उसके उत्साही मंत्री श्री प्रेमचन्द्र जैन का मैं आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस साहित्य-सेवा का प्रशासनीय अवसर दिया। जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पडित राजेन्द्र कुमार जैन, न्याय तीर्थ, से भी मुझे समय-समय पर इस काम मे जो परामर्श मिला है, उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

यदि साहित्य जगत् ने मेरे इस प्रयास को पसन्द किया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा और इस प्रकार की दूसरी पुराण-कथाएँ भी आगे देने का प्रयत्न करूँगा।

माईदयाल जैन

विषय-सूची

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	हरिवण की उत्पत्ति	१-११
२	तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथ	१२-१६
३	राजा वसु और पर्वत-नारद विवाद	१७-२४
४	राजा अधकवृष्टि के जन्म-जन्मान्तर की कथा	२५-३१
५	वसुदेव का चरित्र	३२-४१
६	विष्णु कुमार महात्म्य	४२-४७
७	चारुदत्त-चरित्र	४८-५८
८	वसुदेव का नोलमयशा से विवाह	५९-६२
९	वसुदेव के और विवाह	६३-७१
१०	वसुदेव और त्रिशिखर युद्ध	७२-७६
११	गजा वसुदेव वेगवती मिलन	७७-८०
१२	रानी राम दत्ता का न्याय	८१-८६
१३	सजयत स्वामी	८७-९३
१४	राज कुमार मृगध्वज और भैसा	९४-९७
१५	बन्धुमती, प्रियंगसुन्दरी और ऋषिदत्ता	९८-१०३
१६	प्रभावती	१०४-१०८
१७	स्वयम्बर, सग्राम और भ्रातृ-मिलाप	१०६-१२१
१८	बन्धु-बन्धु समागम	१२२-१३६
१९	महा उपवास	१४०-१४४
२०	कृष्ण-बालक्रीडा	१४५-१५१
२१	कस-वध	१५२-१६३
२२	श्री नेमिनाथ जन्म	१६४-१७०
२३	जरासिंघ का यादवो पर आक्रमण	१७१-१७५
२४	द्विरिका-निर्माण	१७६-१७९
२५	रुक्मणी हरण और शिशुपालवध	१८०-१९०

क्रम-संख्या

विषय

पृष्ठ-संख्या

२६	प्रद्युम्न कुमार के पूर्व-जन्म	१६१-२०७
२७	कृष्ण के और विवाह	२०८-२१०
२८	कौरव, पाण्डव और द्रोपदी स्वयम्भर	२११-२२०
२९	कीचक निर्वाण	२२१-२२६
३०	प्रद्युम्न कुमार की द्वारिका वापिसी	२२७-२३८
३१	यदुकुल के कुमार	२३६-२४३
३२	दुर्गा उत्पत्ति	२४४-२४८
३३	चक्रव्यूह और गरुड-व्यूह	२४६-२५६
३४	यादव-जरासिध युद्ध	२५७-२६०
३५	जरासिध-वध	२६१-२६५
३६	कृष्ण-दिग्गिजय	२६६-२७०
३७	द्रोपदी हरण	२७१-२७६
३८	नेमिनाथ दीक्षा कल्याणक	२७७-२८५
३९	केवलज्ञान प्राप्ति और समवसरण	२८६-२९०
४०	नेमि प्रबचन	२९१-२९५
४१	भगवद् विहार	२९६-३००
४२	पटरानियों के भव वर्णन	३०१-३१०
४३	तरेसठ शलाका पुरुष	३११-३१४
४४	द्वारिका दहन	३१५-३२१
४५	श्रीकृष्ण परलोक गमन	३२२-३२६
४६	वलदेव का तप	३२७-३३६
४७	श्री नेमिनाथ निर्वाण	३३७-३४०



हरिवंशकी उत्पत्ति

अतिम और चौबीसवे तीर्थकर महावीर स्वामी विहार करते-करते मगध देशके प्रसिद्ध नगर राजगृह पधारे । मगध देशको भारतकी धर्म भूमि, पवित्र भूमि और स्वर्ग भूमि होनेका गौरव प्राप्त है । इस देशको जम्बूद्वीपका भूषण कहा है । यहाके पर्वत वृक्ष पक्षियोसे सुशोभित हैं । अनेक नदियाँ, सघन वन, विभिन्न प्रकारके धान्य और खाद्यान्नोके हरे-भरे खेत, आम, जामुन तथा केले आदि फलोके बाग-बगीचे मगध देशके प्राकृतिक सौन्दर्यको चार चाद लगाते हैं, देशको सब प्रकारसे समृद्ध और खुशहाल बनाते हैं । मगध देश न केवल सभी प्रकारकी आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विभूतिवाला था, वरन् यहा तत्त्व-चर्चा, स्वाध्याय, तप और आध्यात्मिकताका खूब प्रचार था । उस समय मगध देश जैन धर्म और जैन सस्कृतिका महान केन्द्र था, जिसके प्रमाणमे यहाके अनेक जैन तीर्थ जैसे वैशाली, कुण्डलपुर, राजगृह और पावापुरी आदि हैं । आज भी सहस्रो स्त्री-पुरुष यात्री इन तीर्थोंकी बन्दनाके लिए हर वर्ष आते हैं । वीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथ और चौबीसवे तीर्थकर महावीर स्वामीने अपने जन्म, तप और विहारसे इस देश-की मिट्टीके कण-कणको पवित्र किया । महावीर स्वामी के समकालीन महात्मा बुद्धके जन्म का गौरव भी मगध देशको ही प्राप्त है ।

उस समय राजगृह मगधकी राजधानी थी । राजगृहकी शोभा इन्द्रपुरीके समान थी । यहा पृथ्वीपर स्वर्ग उत्तर आनेकी बात चरितार्थ होती थी । यहाके महल और सुन्दर भवन तथा इसके आस-पास के प्राकृतिक सौन्दर्यका वर्णन करना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है ।

इसी राजगृहमे तीर्थकर महावीरका समवसरण—प्रवचन मण्डप, सभा मण्डप—बना। इस समवसरणमे कई कक्ष थे, जिनमे देवता, गणधर, मुनि, आर्यिकाए, राजा, विद्वान, जनता और पशु-पक्षी बिना किसी भेदभाव और वैरभावके भगवानके उपदेशमृतका पान करनेके लिए बैठते थे। वहा धर्मोपदेशमृतकी सरिता बहती थी। सबकी शकाओ और सभी प्रकार की जटिल समस्याओ का समाधान वहा होता था। समवसरणमे तीर्थकरकी दिव्यध्वनि सबको आत्मिक सुख-गाति देनेवाली, मोक्षमार्ग बतानेवाली होती थी। दिव्यध्वनि सर्व भापामय होती थी और सभी उसको आसानीसे अपनी-अपनी भापामे समझते थे। यह इसकी विशेषता कही जा सकती है।

इसी सभामे भगवान महावीरने अपने उपदेशमे बताया कि यह जीव और सृष्टि अनादि है और इसका कर्ता या नाशक कोई नही है। यह जीव अनादि कालसे कर्मोंके वन्धनके कारण आवागमनके चक्रमे धूमता रहता है। कर्म सिद्धान्त यह है कि जो जैसा कर्म करता है उसको उसका वैसा ही फल मिलता है। अच्छे कर्मका फल अच्छा और बुरे कर्मका फल बुरा होता है। इन कर्मोंके वन्धनको काटकर यह जीव मोक्ष प्राप्त करता है। मोक्ष जानेके पश्चात् कोई जीव ससारमे दोवारा जन्म नही लेता। मोक्ष ही जीवका परम लक्ष्य है। सम्यग्दर्गन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र तीनों मिल कर मोक्षका मार्ग बनाते हैं। महाव्रत रूप मे मुनिवर्म और अणुव्रत रूपमे श्रावक धर्म हैं। मुनि धर्म उत्कृष्ट धर्म है। मुनियोंको अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अचौर्य पाच व्रत महा व्रत रूपमे पालने होते हैं। परन्तु हर एक स्त्री-पुरुष मुनि धर्मका पालन नही कर सकता। इसलिए उनके लिए अणुव्रत रूप धर्मका उपदेश है। अहिंसा परम धर्म है। इसका आशय यह है कि किसी भी जीवको प्रमाद से मन, वचन और कायासे स्वयं या

दूसरेके द्वारा कष्ट मत दो और न उसका अनुमोदन करो । प्राणी मात्रके प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए । विषय और वस्तु-स्वरूप को ठीक तौर पर समझने के लिए उन्होने अनेकान्त अथवा स्याद्वाद का प्रयोग किया ।

भगवान् महावीरके उपदेशके पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधरने तत्त्व-चर्चा और शका-समाधान किया । समवसरण में श्रोताओंमें राजगृहके राजा श्रेणिक भी थे । तीर्थकर महावीर स्वामीका उपदेश सुननेके पश्चात् उसने श्री गौतम गणधर से प्रार्थना की, “महराज ! हरिवंशकी उत्पत्ति और उसका वर्णन बताने की कृपा करे ।” श्री गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे हरिवंश की उत्पत्ति-की कथा कहने लगे ।

सब देशोंमें अति सुन्दर वत्स देश था । उसमें यमुनाके किनारे कोशाबी नगर था । यह नगर वत्स राज्यकी राजधानी थी । कोशाबी नगरकी रक्षाके लिए कोट, परिकोट और खाई बनी हुई थी । कोशाबी नगर की सुन्दरताका वर्णन करना कठिन है । उसमें बड़े-बड़े तथा ऊँचे-ऊँचे अनेक भवन थे और रातके समय उसमें जो प्रकाश होता था वह रत्नोंके प्रकाशके समान था ।

वत्स देश के राजाका नाम सुमुख था । इसके राजमे समस्त प्रजा सुखी थी । बहुत से नरेश राजा सुमुखके आधीन थे । राजाका धनुष इन्द्रधनुषसे उत्तम था, क्योंकि उसमें कीर्ति दोष न था । राजा-का महा सुन्दर शरीर और नव यौवन देखने योग्य थे । वह धर्म-शास्त्रमें प्रवीण, विशेष कलाओंको जाननेवाला और महा गुणवान् था । वह सुजीवों पर अनुग्रह करने में समर्थ और प्रजाका पालक था, पर दुष्टोंको दबानेमें भी कुशल था । राजा सुमुखके अनेक गुणोंके कारण प्रजा उसे हृदयसे चाहती थी और सदा आशीर्वाद देती थी और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति और चिर आनन्दकी हृदयसे कामना करती थी ।

एक दिन राजा सुमुख अपने नगरमें ऋषण कर रहे थे ।

राजाको देखकर सबके मन आनन्दसे भर गये । सभी राजाको बिना पलक मारे देख रहे थे, पर उनके मन नहीं भर रहे थे । उन नर-नारियों में एक अत्यन्त रूपवती नवयुवती दोनों नेत्रों से राजाके रूपामृतको अतृप्तसी पी रही थी । जब राजाकी हृष्टि उस पर पड़ी, तो उसका मन भी उस स्त्रीपर अनुरक्त हो गया । राजाके पांव न आगे बढ़ रहे थे और न पीछे हट रहे थे । राजा मनमें विचारने लगा कि यह अत्यन्त रूपवती कौन है, जिसने अपने रूप और नवयौवनके फन्दे में मेरे मनको फसा लिया है? पर स्त्रीका सेवन समस्त जगतमें महा पाप माना गया है । मन भी जब विषयाभिलाषा से चलाय-मान होता है, तो उसे वशमें करना अत्यन्त कठिन होता है । विषया-सक्ति से राजाकी बुद्धि मन्द पड़ गई और उसे लोकापवादका भी डर न रहा । वह उसे सहनेको तैयार हो गया, पर अपने मनको वशमें न कर सका । राजा अपने मनकी पीड़ा जीतनेमें असमर्थ बन गया ।

अब राजा उस स्त्रीको हरनेकी विधि सोचने लगा । जैसे सूर्य प्रभावान और दैदीप्यमान है, पर अस्त समय मन्द पड़ जाता है, वैसे ही राजा सुमुख भी लौकिक आचार, धर्म तथा नीतिको जाननेवाला होते हुए भी कामके आतापसे मन्द बुद्धि हो गया ।

उस महा रूपवती स्त्रीका नाम वनमाला था और वह नगरके एक सेठ वीरककी धर्मपत्नी थी । जब वनमालाने राजा सुमुखको उस भीड़में देखा था, तब वह भी अपने हृदयको राजाको सौंप चुकी थी । वह भी राजाको पानेके लिए आतुर थी ।

दोनों एक ढूसरेके अनुरागसे व्यथित थे ।

राजा वहाँ से वन-उपवनमें गया । यद्यपि वहाँ बहुत प्राकृतिक सौन्दर्य था, पर वहाँ भी राजाका जी न लगा । वह अपने महलोमें आगया, पर तब भी वेचैन । उसके मनमें तो विष-याग्नि धघक रही थी, उसे गान्ति कैसे मिलती ?

राजाका सुमति नामका अति बुद्धिमान और चतुर मन्त्री था। राजाका यह हाल देखकर वह बड़ी विनयसे राजासे पूछने लगा, “हे प्रभो! आज आप चिन्ता में क्यों हैं? आपको अपने प्रताप से सब सुख प्राप्त हैं। आपकी प्रजा सुखी है, आप सबका सम्मान करते हैं। सभीको आपसे अनुराग और प्रेम है। फिर आज यह उदासी और चिन्ता क्यों? अपने दुखको अपने प्राण समान मित्रसे कहकर उसका उपाय करने से दुख मिटता है। यह जगत की रीत है। इसलिए अपने मनकी बात मुझसे कहो, जिससे उसका यथोचित उपाय करूँ।” तब राजाने नगरमें स्त्री समूहमें देखी हुई उस रूपवती नवयुवतीका वर्णन किया और मन्त्रीसे कहा कि उस स्त्रीको प्राप्त किये बिना उसे चैन नहीं पड़ेगा। मन्त्री राजाकी बात सुनकर दग रह गया। मन्त्री सुमतिने पर स्त्री सेवनकी बुराइयों और राजाके पवित्र कर्तव्यकी बात राजा को समझाई, पर राजाके सिर पर तो विषयका भूत सवार था। उसने मन्त्रीके अच्छे परामर्श को न मानना था न माना। अपनी ही बात और सेठानी बनमालाकी रट लगाता रहा। राजाने कहा कि यदि मुझे आज उसका सयोग न हुआ, तो उसके बिना मेरा एक दिन भी जीना कठिन है। राजाने मन्त्रीको यह भी बताया, कि मेरे बिना वह भी इसी प्रकार तड़प रही होगी। राजाने कहा, “मैं जानता हूँ कि इस बुरे कामसे लोकमें अपयश और परलोक में पाप का फल मिलेगा, परन्तु विषयासक्त मूढ़ जीव अन्धेके समान कार्य-अकार्यको नहीं देखते। यदि मेरा जीवन रहा तो इस पापको शात करनेके अनेक यत्न बादमें कर लिये जायगे। अब मेरी इच्छा पूरी करो।”

मन्त्रीने यह जानते हुए भी कि राजाकी मनोकामनाको पूरा करना बुरा काम है, पर राजा के प्राणोंकी रक्षा करना भी मन्त्रीका कर्तव्य है, इसलिए उसने राजाको बनमाला दिलानेका

आश्वासन देते हुए उसे नहाने-धोने और भोजन आदि करनेको कहा ।

मन्त्री सुमुखने राजाकी आज्ञासे दूत कार्यमे अति निपुण दूती आत्रेयीको बनमालाके पास भेजा । बनमालाने दूतीका बड़ा सम्मान किया । आत्रेयीने बनमालाके रूप, स्वभाव और गुणोकी प्रशंसा करते हुए बड़े प्रेमसे उसकी चिन्ता और उदासीका कारण पूछा । दूतीने उसे वेटी कहते हुए अपने मन की बात उसे कहनेको कहा । दूतीने शीघ्र ही बनमालाका विश्वास प्राप्त कर लिया । बनमाला उससे राजाके प्रति अपने अनुरागकी बात कहने लगी । सेठानीने अपनी प्रेमपीडा और मनकी व्यथा को दूती से दिल खोल-कर कहा और राजा सुमुखसे मिलाने की प्रार्थना की । साथ ही बनमालाने समस्त बातको गुप्त रखनेका भी आग्रह किया । बनमालाने दूतीसे कहा कि जहाँ तक मेरा अनुमान है राजा सुमुख भी मुझपर अनुरक्त है और जैसे मैं तडप रही हूँ वैसे ही मेरे बिना वह भी बेचैन होगा । दूती बनमालाका राजाके प्रति अनुराग और उसकी कामपीडाकी बात सुनकर समझ गई कि उसे अपने कार्यमे सफलता आसानीसे मिल जायगी । वह मनमे बड़ी हर्षित हुई । आत्रेयी बनमालासे कहने लगी, “पुत्री! राजा सुमुखने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तेरे रूपपर वह बड़ा आसवत है । तेरे बिना उसका जीना भी कठिन है । इसलिए तु मेरे साथ अभी चल । मैं तुम दोनोंकी अभिलापा पूरी करूँगी ।” दूती अपनी सफलता पर मन ही मन प्रसन्न थी ।

कामातुर बनमाला दूतीके बचन सुनकर बिना आग-पीछा सोचे पतिके पीछे दूतीके साथ राज महलके लिए चल पड़ी । जब बनमाला राजा सुमुखके महलमे पहुँची, राजाने बड़े प्रेम और आदरसे उसका स्वागत किया । दोनों एक दूसरे को देख कर बड़े प्रसन्न और हर्षित हुए । प्रेम और काम वासना की वृद्धिके लिए वे

दोनों अनेक हाव-भाव प्रकट करते रहे । वे दोनों अनेक प्रकारकी प्रेम क्रीड़ा करते रहे और कामाग्निको शान्त करते रहे । सभी शास्त्रोमें निज स्त्रीके सेवनको भी सीमित रखने का उपदेश है, उसे भी भवभ्रमणका कारण बताया है, फिर परदारा सगम तो महा पाप कहा गया है । यह तो प्रत्यक्ष ही कुगतिका कारण कहा गया है । धिक्कार है उस काम वासनाको जो मनको मोहित और धर्म विमुख करके स्त्री-पुरुषोंको अधर्म मार्गपर प्रवृत्त करती है । सुमुख जैसे नीतिवान, न्यायशील और धर्मके ज्ञाताके लिए तो यह पाप कर्म और भी निन्दनीय था । पर कामवश बुद्धिमान से बुद्धिमान स्त्री-पुरुष भी अन्धे बन जाते हैं ।

रात भर राजा सुमुख और बनमाला र गरलियोमें मस्त रहे । भोर हुआ पर राजा सुमुखने बनमालाको वापस उसके घर न जाने दिया । मन वाञ्छित दुर्लभ वस्तु मिलने पर कौन छोड़ना चाहता है ? राजा ने उसे अपनी पटरानी बनाया । सब राजलोकमें सेठानी शिरोभाग बनी । यहा जो उसकी प्रतिष्ठा थी, वह सेठ वीरकके घरमें उसे कहाँ प्राप्त थी ? वह भी अपने पति सेठ वीरकको भूल गई ।

कुछ दिन बीतने पर कोशाबी नगर में वरधर्म नामके एक जैन मुनि बिहार करते हुए पधारे । वरधर्म तपो निधि, व्रतोंको पालनेवाले, एक वस्त्र तक के परिग्रहके भी त्यागी, महान शान्त और अध्ययनादि तप रूप लक्ष्मीसे सुशोभित थे । वे आहार-भोजन के लिए धूमते-धूमते राजा सुमुखके राजमहलके द्वारपर आये । जब राजाने मुनि महाराजके अपने महलके द्वारपर पधारनेका शुभ सम्वाद सुना, तब वे वडे हर्षित हुए और उन्होने मुनिके आगमनको अपना अहोभाग्य और पुण्योदय समझा । भट से राजा सुसुख अपनी विवाहिता धर्मपत्नी सहित मुनिकी प्रदक्षिणा दे विनय सहित मुनिराजको बड़ी श्रद्धासे महलमें ले गया । राजाने शुद्ध जल

से मुनिके चरण धोये, मुनिकी धर्म विधि पूर्वक अष्ट द्रव्योंसे पूजा की । मन, वचन और कायासे मुनिको बार-बार बन्दना करके उन्हें विधि पूर्वक आहार कराया ।

सेठानी बनमालाने भी राजाके द्वारा मुनिको आहार करते प्रर बङ्गा हर्ष माना ।

मुनि तो आहार करके वहां से बनकी ओर चले गये । इधर राजा सुमुख और बनमालापर दैव योगसे विजली गिरी और उन दोनोंकी तत्काल मृत्यु हो गई ।

यद्यपि पर स्त्री और पर पुरुषके समागमके पापके कारण राजा सुमुख और बनमाला की कुगति होती, परन्तु उन दोनोंने अन्तिम कालमें इस पापके लिए बढ़ा पश्चाताप किया था, राजाने मुनिको आहार दिया था और बनमालाने मुनि आहारके अच्छे कामपर हर्ष प्रकट किया था, उसका अनुमोदन किया था, इसलिए मरनेके पश्चात् उन दोनोंने विजयार्द्धगिरिमें विद्याधरोंके यहां जन्म लिया । विजयार्द्धगिरिमें हरिपुर नगर में राजा पवन गिरि विद्याधर था । उसकी महा गुणवत्ती, कलावती और कुलवन्ती मृगावती रानी थी । उनके यहाँ सुमुखका जीव पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ ।

विजयार्द्धगिरिमें मेघपुर नगरमें राजा वेग विद्याधर था, जिसकी महा मुन्द्र रानीका नाम मनोहरी था । उन दोनोंके घर बनमालाका जीव मनोरमा पुत्री हुआ । वे दोनों राजाओंके घर सुखमें पलते रहे । ज्यूँ-ज्यूँ वे बढ़ते गये, उनके शरीर सुगठित होने लगे और गुण बढ़ने लगे और वे भिन्न विद्याओंमें निपुण होने लगे ।

जब वे दोनों बड़े हुए, तब उनकी सगाई हो गई । फिर उन दोनोंका बड़े समारोहके साथ विवाह हुआ और वे दोनों राज महलमें बड़े सुन्दर स्थानोंपर वे दोनों वर-वधु घृमने गये । उनके दाम्पत्य जीवनके सुखकी कोई सीमा न थी ।

दुतीके साथ छुप कर बनमालाके घरसे चले जानेके पश्चात् सेठ वीरक अपनी पत्नीके वियोग और विरहसे व्याकुल और दुखी रहने लगा । उसे दिनको चेन न रातको नीद । ठण्डी आहे भरते-भरते उसका समय बीतने लगा । “हाय बनमाला । तू कहा गई, तूने क्या किया ?” यही रट उसकी जुबानपर रहने लगी । मारे चिन्ता और वियोगके उसका खाना-पीना बन्द-सा हो गया और उसका शरीर सूखने लगा । उसकी तमाम धन-सम्पत्ति और उसके घरके सभी सुख उसके हृदयकी जलनको शान्त न कर सके । जिस प्रकार स्त्रीको पति वियोगसे महा दुख होता है, उसी प्रकार पुरुषको भी पत्नी वियोगसे महा दुख होता है । अब वीरकको घर और ससारकी कोई भी वस्तु अच्छी न लगती थी, वरन् उनसे विरक्ति हो गई । अब वीरक सेठने गृह त्याग कर जैन मुनिका धर्म अगीकार किया । ससारसे विरक्त पुरुषोंके लिए मुनि धर्म और स्त्रियोंके लिए आर्यिका धर्म बड़ा शरण है । अब वीरक सेठ नहीं वीरक मुनि बन गया । वह अपने ‘मन और सभी इन्द्रियोंको वशमे करने का अभ्यास करने लगा । उसने महान तपसे शरीरको सुखा कर काटा बना दिया । मर कर वीरक मुनि का जीव पहले स्वर्ग मे देव हुआ । जो मुनि अपने जन्ममे मोक्ष प्राप्त’ नहीं करते, वे स्वर्गके सुख भोग कर निर्वाण पद अर्थात् मुक्ति पाते हैं ।

एक दिन वह देव अपने पूर्व जन्मकी बातोपर विचार करने लगा । उसे अपनी पहली पत्नी बनमालाकी याद आ गई । सुमुख राजाने उसकी सेठानीको हरकर उसका अपमान किया था, वह भी देवको याद आ गया । उसने अपने ज्ञानसे यह भी जान लिया कि सुमुख और बनमालाके जीव मरने के पश्चात् विद्याधरोंके घरमे जन्म लेकर फिर पति-पत्नी रूपसे रह रहे हैं । इन सब बातोंकी यादसे उस देवके मनमे द्वेषकी आग भड़क उठी और उसने अपने अपमानका बदला लेने का निश्चय किया ।

उस देवने अपने ज्ञानसे यह जान लिया कि वे पति-पत्नी उस समय मध्य लोकमे हरिवर्ष क्षेत्रमे आनन्द मना रहे थे । देवने सोचा कि वे दोनो नवयौवन हैं, इसलिए मारने योग्य नहीं हैं । तब उसने अपनी अखड देव मायासे उनकी आकाश गामिनी विद्याका नाश कर दिया । फिर उस देवने पूछा, “हे सुमुख!, क्या तू मुझे जानता है? मैं वही सेठ हूँ जिसकी प्रिया पत्नी बनमाला तूने हरी थी । बनमाला तू पापिनी है । तूने अपने शील धर्मको खोया, इसलिए तुझे धिक्कार है । मैंने तुम्हारी विद्या तो हर ली है अब वताओ तुम्हें क्या दुख दूँ?” ऐसा कहकर उस देवने उन दोनोंको इस तरह उठा लिया जैसे गङ्गड आदमियोंके जोडे को उठा लेता है । वह उनको उठाकर दक्षिण भारतकी ओर ले गया । फिर वह उन्हे लेकर चम्पापुरी नगरमे आया ।

सयोगकी बात है कि उसी समय चम्पापुरीके राजा चन्द्र कीतिका निधन हो गया था । चम्पापुरी अब अनाथ थी । उसे एक राजाकी आवश्यकता थी । इसलिए वह देव चम्पापुरीका राज्य सुमुखके जीवको देकर आप वापिस देवलोक आगया । वे दोनो पति-पत्नी अपनी आकाशगामिनी विद्याके छिन जाने से पखहीन पक्षियोंके समान देव लोक जाने मे असमर्थ होकर वही चम्पापुरीमे स्थायी रूपसे रहकर राज्य करने लगे । उस मण्डलके अनेक राजाओ ने उनकी आधीनता रखीकार कर ली ।

यह बात दशवें तीर्थकर श्री शीतलनाथके समयकी है । राजा-गानीने अनेक वर्षों तक वहाँ सुखसे राज किया । उनके घर एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरिरखा गया । कुछ वर्षोंके बाद वे दोनो राजा-रानी परलोक मिथारे । और राजा हरि चम्पापुरी पर राज करने लगा । राजा हरि बड़ा प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ । अपने वधका मुन्द्य राजा होनेके कारण उसका वज्र हरिवंश नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

राजा हंरिके पुत्रका नाम महागिर था । उसके बेटेका नाम हिमगिर था । हिमगिरके बसुगिर पुत्र हुआ और उसके गिर नाम-का पुत्र हुआ । ये राजा स्वर्ग लोक पधारे । इनके पश्चात् इन वशमे सैकड़ो और राजा हुए । इन राजाओने इन्द्रके समान वैभव प्राप्त किया और सुखसे राज कर अपने-अपने समयमे मुनि दीक्षा लेकर तप करके वे भोक्ष या स्वर्ग लोक गये । इस हरिवंशमें अनेक राजा अद्भुत चरित्रके धारक हुए थे ।

२

तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथ

वहुत समयके पश्चात् मगध देशमे कुण्डली नगरमे हरिवंशमे एक बडा प्रसिद्ध, शस्त्रविद्यामे निपुण और पुरुषार्थी राजा सुमित्र हुआ । उसकी रानीका नाम पद्मावती था । वे दोनो बडे सुखसे राज कर रहे थे । प्रजा हर तरहसे सुखी थी । राजा और रानी दोनो जैन धर्मके अनुयायी और बड़े भक्त थे ।

तीर्थकर शीतलनाथके पश्चात् तीर्थकर श्रेयासनाथ, वासु पूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, ज्ञातिनाथ, कुन्युनाथ, अरहनाथ और मल्लिनाथ हुए ।

इन्द्रको यह मालूम हुआ कि राजा सुमित्रके घर रानी पद्मावतीके गर्भमे वीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथ आयगे, इसलिए इन्द्रने घनपति कुवेरको राजा सुमित्रके घरमे मणियोकी वर्षा करने की आज्ञा की ।

एक रातको रानी पद्मावती अपनी सेजपर निद्रामग्न थी । उसने पिछली रातमे सोलह स्वान देखे । उन स्वप्नोमे रानीने हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चान्द, सूर्य, मछली, कलग, कमलोंसे भरा सरोवर, ममुद्र, सिहामन, देव विमान, फनीन्द्र भवन, रुन राणि और निर्धूम अरिन देखे । रानी पद्मावती इन स्वप्नोको देखकर बड़ी आनन्दित हुई । उसकी उस समय की कातिका वर्णन करना अति कठिन है, क्योंकि उसके गर्भमे तीर्थकर आनेवाले थे ।

प्रात काल रानी पद्मावती अपने पति राजा सुमित्रके पास गई और उसने बड़ी विनयसे राजाको प्रणाम किया । राजा-ने भी रानीका बड़ा आदर-मान किया और अपने पास सिहामन-पर स्थान दिया ।

आपस में कुशल मगलकी बात पूछने पर रानीने सोलह स्वप्नोंका हाल राजाको बताया और उनका फल पूछा । राजा उन स्वप्नोंको सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे कहने लगा, “हे प्रिये ! तीन लोक के स्वामी जगत गुरु तीर्थकर तेरे गर्भमें आये हैं । तू धन्य है । हमारा वज्र धन्य है ।” रानी भी स्वप्नोंका यह फल सुन कर बड़ी हर्षित हुई । राजाके बचनोंने सूर्यकी किरणोंके समान रानीको उल्लसित किया । रानी अपने जन्मको सुफल मानने लगी । गर्भवती रानी पद्मावती शरद ऋतुकी जलसे भरी मेघ मालाके समान सुन्दर और विजलीसे भी अधिक प्रभावान दिखाई देती थी ।

रानी पद्मावतीने माघ मासके शुक्ल पक्षमे द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमे बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथको जन्म दिया ।

तीर्थकरको जन्म देने के कारण रानी पद्मावतीके हर्षकी सीमा न थी । उसे तीर्थकर जननी होने का महान गौरव प्राप्त था । राजा सुमित्र भी तीर्थकर श्री मुनि सुव्रतनाथके जन्मका शुभ समाचार सुन कर हर्षसे फूले न समाये । राज्य भर मे प्रजाने खुशीसे बड़े उत्सव मनाये । तीर्थकरके जन्मके समाचारसे देव लोक तकमे आनन्द मनाया गया । इन्द्रादि देवोंके मुकट विनयसे भुक गये और उनके सिंहसान कापने लगे ।

नवजात शिशु मुनिसुव्रतनाथ अति सुन्दर थे और उनके शरीरमे शख चक्रादिक एक हजार आठ शुभ लक्षण थे । उनके शरीर का रंग नीलमणि समान व्याम सुन्दर था ।

यहां यह बता देना आवश्यक है, कि महान शुभ विशेष कर्मके बन्धने से ही जीव तीर्थकरके रूपमे जन्म लेते हैं, अन्यथा नहीं । इन्हे महामानव कह सकते हैं । तीर्थकरोंके गर्भ, जन्म, तप, केवल ज्ञान प्राप्ति और मोक्षके पाच कल्याणक कहलाते हैं । कल्याणक अर्थात् कल्याण करने वाले समय तीर्थकरोंके जीवनमे पच कल्याणकोंका बड़ा महत्व होता है । पच कल्याणको पर सभी नर-नारी, देवी-देवता और इन्द्रादि हर्ष मनाते हैं, उत्सव करते हैं ।

बीसवे तीर्थकर मुनि सुव्रतनाथके पच कल्याणकोपर खूब हर्ष मनाया गया ।

जगतकी दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुभी मुनि सुव्रतनाथको बाल्यावस्थामें सुलभ थी । ज्यू-ज्यू उनका शरीर बढ़ने लगा, उनके गुणोमें वृद्धि होने लगी । युवावस्था प्राप्त करने पर उनका विवाह एक महा मनोग्रन्थ नवयुवतीसे किया गया । मुनिसुव्रतनाथ और रानी ऐसे मिले, जैसे महानदी समुद्रसे मिलती है । मुनि सुव्रतनाथके समान पृथ्वीपर कोई पुरुष नहीं था और रानीके समान कोई स्त्री न थी ।

फिर हरिवंशके सूर्य मुनि सुव्रतनाथ राजसिहासनपर बैठे । सब राजाओं और समस्त प्रजाको सुख देते हुए वे राज्य करने लगे । राजाकी आज्ञा अखण्ड थी । राजा-रानी बड़े सुखसे समय विताने लगे ।

एक दिन शरद कृष्टुमें राजा मुनिसुव्रतनाथ अपने महलमें रानी सहित आनन्दसे बैठे शरद कालकी प्राकृतिक सुन्दरता देख रहे थे । आकाशमें मेघमण्डलको देखकर राजा-रानीके मन बड़े हर्षित हुए । परन्तु उसी समय वह मेघमण्डल प्रचण्ड पवनके चलनेसे विलय हो गया । वह इस तरह छिन्न-भिन्न हो गया, जैसे आगकी ज्वालासे तप्त मक्खनका पिण्ड पिघल जाता है । इस प्रकार वादलोके विलयके दृश्यको देखकर राजा मुनिसुव्रतनाथ सोचनेलगे कि वादलोका इस तरह छिन्न-भिन्न होना जगतको विनाशकी सूचना देता है । आयु और काया सब विनिश्चर हैं । ये वादल निर्मल बुद्धि आदमियोको ससारकी अनित्यता स्पष्ट रूपसे दिखाते हैं । यह शरीर छोटे-छोटे महा तुच्छ पुदगल परमाणुओंका समूह है । रागादिक परिणामोंसे पैदा हुए ज्ञानावरणादि कर्मोंके सयोगसे इस शरीरकी उत्पत्ति है । मृत्यु रूपी पवनके वेगसे यह शरीर वादलोंके समान शीघ्र विघट जाता है । इस शरीरकी शक्ति ही

क्या है ? यह नाशवान है । इससे स्नेह करना व्यर्थ है । जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे आयु घटती है । साधारण आदमियोंकी तो बात ही क्या है, पर्वतके समान दृढ़ राजा भी काल रूपी वज्रके घातसे चूर्ण हो जाते हैं । इस लोकमें बड़े महलोंके स्वामी राजा, प्राणोंसे प्यारी सुन्दर स्त्री, प्राण समान मित्र और पुत्र सब ही काल रूपी पवनसे सूखे पत्तोंकी तरह उड़ जाते हैं । मनुष्योंकी तो गतिही क्या, देवोंके इष्टका भी वियोग होता है । देखते-देखते ही प्राणियोंकी देह नष्ट हो जाती है । फिर भी यह मूढ़ मति जीव मृत्युसे नहीं डरता । कर्मके दृढ़ बन्धनोंमें बन्धा यह जीव ससारमें अनेक दुख भोगता है । जीवको एक इन्द्रीकी विषयासक्ति ही मौतके चुंगलमें फँसा देती है, फिर पुरुप तो पाच इन्द्रियोंके जीव हैं । उनको ससारमें भटकानेके तो अनेक साधन हैं ।

राजाने सोचा कि इन्द्रियोंसे मिलनेवाला सुख तृप्तिका कारण नहीं है । यह विषयोंका ईर्धन भोगाभिलाषाकी आगको भड़काता ही है, कम नहीं करता । विषय-भिलाषाको दबाने और इन्द्रियोंको जीतने से ही विषयाग्नि बुझती है । ऐसा सोचते-सोचते राजाका मन ससारसे विरक्त हो गया । राजा सुव्रतनाथने असार सुखको त्याग कर मोक्ष मार्गपर चलने का निश्चय किया । राजा मुनि सुव्रतनाथको अपने आप ही बोध प्राप्त हुआ ।

अब राजा मुनि सुव्रतनाथने अपने सुव्रत पुत्रका राज्याभिषेक किया । इधर सुव्रत राजसिंहासनपर बैठे और उधर मुनि सुव्रत नाथ ससार तजकर तपके लिए वनको चल पड़े । उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे अपने केशोंका लोच किया । अब उनका तप कल्याणक आरम्भ हो गया । उनके धोर तपसे कर्म मल कट गये । उन्होंने तेरह महीने तप किया । इसके पश्चात् उन्हे मगसिर सुदी पचमीके दिन केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ । इसे ही ज्ञान कल्याणक कहते हैं । केवल ज्ञानकी प्राप्तिसे वे समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष देखने लगे । इस शुभ अवसरपर सबने उनकी पूजा

की । अब वे सर्वज्ञ हो गये । तीर्थंकरोंके प्रवचन मण्डप को समव-सरण कहते हैं । उसमें सभी जीव-जन्तु आपसी वैर-भावको छोड़कर भगवानका कल्याणकारी उपदेश सुनते हैं ।

तीर्थंकर मुनि सुन्नतनाथके बड़े गणधरका नाम विशाखा था । उन्होंने भगवानसे धर्मोपदेश देनेकी प्रार्थना की और उन्होंने महाव्रत रूप मुनि धर्म और अणुन्नतरूप श्रावक (गृहस्थ) धर्मको बताया । ससारके जीवोंको अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और चोरी न करनेका उपदेश दिया । तीर्थंकर मुनिसुन्नत नाथ माघसुदी तेरसके दिन पिछले पहर सम्मेद गिर्खरसे मोक्ष गये ।

३

राजा वसु और पर्वत-नारद विवाद

मुनि सुव्रतनाथका पुत्र सुव्रत काम, क्रोध, लोभ और मद आदि को वशमे करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको साधता हुआ राज्य करने लगा । फिर वह अपने पुत्र दक्षको राज्य सौंप कर अपने पितासे जिन दीक्षा लेकर मोक्षको गया ।

राजा दक्षकी रानीका नाम इला था । उनके एलय पुत्र और मनोहरी पुत्रीने जन्म लिया । वे पुत्र और पुत्री महा रूपवान और गुणवान थे । पर राजा दक्ष जैन धर्मसे विमुख होकर मिथ्या मार्गपर चलने लगा । इससे रानी इला अपने पुत्र एलयको साथ लेकर देश-देशान्तरमे घूमती हुई एक जगह पहुँची । वहाँ उसने एला वर्धन नगर बसाया । एलयने भी अग देशमे ताम्रलिप्त शहर बसाया और नर्मदा नदीके किनारे महिष्पती नगरी बसायी । राजा दक्षके बसाये हुए ये दोनो नगर बड़े सुन्दर और प्रसिद्ध थे ।

राजा दक्ष अपने पुत्र कुणिमको राज्य सौंप कर तप करने बनमे चला गया । कुणिमने विदर्भ देशको जीता और नर्मदाके किनारे कुण्डलपुर नगर बसाया ।

इस प्रकार इस वशमे अनेक राजा हुए । फिर इसी वशमे एक राजा अभिचन्द्र हुआ । अभिचन्द्रने विद्याचलकी पीठ पीछे वेदीपुर नगर बसाया और सुक्तिमती नदीके किनारे सुक्तिमती पुरी बसाई । राजा अभिचन्द्रका विवाह उग्रवशी राजाकी राज-कुमारी वासुमती से हुआ था, जिससे वसु नामका पुत्र हुआ । राजा वसु बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ । उसके समयकी नीचे लिखी घटना भी प्रसिद्ध है ।

सुक्तिमती पुरीमे शास्त्रोंका पाठी एक प्रसिद्ध ब्राह्मण क्षीरकदव रहता था । उसकी पत्नीका नाम स्वस्तिमती था । वह शास्त्र पाठी ब्राह्मण बहुत से शिष्योंको विद्या पढ़ाता था । यो तो उसके बहुतसे शिष्य थे, परन्तु उनमें तीन शिष्य मुख्य थे, जिनके नाम राजपुत्र वसु, क्षीरकदवका पुत्र पर्वत और ब्राह्मण नारद । गुरुने इन तीनों शिष्योंको शास्त्रके रहस्यमें प्रवीण किया और इनको आरण्यक नामका शास्त्र भी पढ़ाया ।

उस समय वहाँ आकाशगामी चारण मुनि आकाशमें बिहार करते थे । तब उन गुरु-शिष्योंके पढ़ने की ध्वनि सुनकर मुनिने अपने एक बड़े ज्ञानी शिष्य मुनिसे पूछा, “इनमें एक गुरु है और तीन शिष्य हैं । इनमें से कौन स्वर्ग लोकको जायगे और कौन नरक जायगे ?” तब शिष्यने उत्तर दिया, “क्षीरकदव गुरु और नारद शिष्य स्वर्ग जायगे और राजपुत्र वसुदेव और अध्यापक पुत्र पर्वत नरक जायगे ।” मुनि तो तत्काल ही आगे चले गये पर गुरु क्षीरकदव मुनिके वचन सुनकर ससारसे भयभीत और विरक्त हो गया । गुरु क्षीरकदव अपने शिष्योंको घर जानेकी आज्ञा देकर स्वयम् उन मुनियोंको ढूँढ़ने वन चला गया ।

ब्राह्मणकी पत्नी स्वस्तिमतिने अपने पति क्षीरकदवके वापस न आनेपर चिन्तित होकर शिष्योंसे पतिके न आनेका कारण पूछा । शिष्योंने गुरुआनीको बताया कि गुरुजीने हमें घर जाने की आज्ञा देकर भेज दिया है और स्वयम् भी पीछे आते होगे । यह उत्तर सुनकर स्वस्तिमतीको तसल्ली हो गई । पर जब एक दिन-रात बीतने पर क्षीरकदव घर न लौटा, तब उसकी पत्नी समझ गई कि अबश्य ही उसके पतिने जिन दीक्षा लेली होगी । वह बड़ी चिन्तित हुई और रात भर रोती रही । प्रात काल उसने अपने बेटे पर्वत और नारदको क्षीरकदवको ढूँढ़ने वनकी ओर भेजा । वनमें फिन्ने-फिन्ने उन्होंने देखा कि क्षीरकदव महामुनिके निकट नामु वनकर यात्र्य पट्ट रहा है । गुरुका पुत्र पर्वत तो पिताको

साधु बना देखकर उलटे पाव माके पास आगया और उसे सब हाल कह सुनाया । परन्तु नारदने अति विनयसे मुनि महाराज और अपने गुरु क्षीरकदबको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की । फिर उसने मुनि महाराजसे कुछ व्रत लिये और उन्हे नमस्कार करके लौट आया । नारद अपनी शोकातुर गुरुआनीको धैर्य दंधाकर अपने स्थानपर चला गया । यह नारद बड़ा निर्मल चित्त था ।

कुछ समय पश्चात् राजा अभिचन्द्रने ससारसे विरक्त होकर अपने पुत्र वसुको राज्य देकर जिन मुनिकी दीक्षा लेली और तप करने बनमे चला गया । राजा वसु राजनीतिमे बड़ा निपुण था और वह बड़ी कुशलतासे राजकार्यको चलाने लगा । राजा वसु कुछ प्रपच्छी था । उसने स्फटिक मणिका एक ऊँचा सिंहासन बनवाया और उस पर बैठा हुआ राजा वसु ऐसा लगता था, मानो कि वह सत्यके प्रताप से पृथ्वीसे अधर बैठा हो । इससे उसकी कीर्ति ससारमे फैल गई कि राजा अपने धर्मके प्रसादसे पृथ्वीसे अधर विराजते हैं । स्फटिक मणिके सिंहासनका रहस्य किसीने नहीं जाना, उसके प्रपच्छको लोगोने सत्य समझा ।

राजा वसुके दो रानिया थीं, एक इक्ष्वाकुवशकी राजकुमारी थीं और दूसरी कुरुव शकी राजपुत्री । उनसे राजा वसुके दस पुत्र हुए, जो शास्त्र विद्यामे बड़े निपुण और राजप्रशासन कार्यमे बड़े कुशल थे । ये दसों पुत्र राजकार्यमे पिताका अच्छी तरह हाथ बटाते थे ।

एक दिन नारद गुरु प्रेम वश अपने शिष्यों सहित अपने गुरुके पुत्र पर्वत और गुरुआनी स्वस्तिमतीका सुख-समाचार जानने और कुशल-मगल पूछने उनके घर आया । पहले तो नारदने उसका और गुरुआनी स्वस्तिमतीका कुशल मगल पूछा, पर परस्पर कुछ बातचीतके बाद ही नारदने देख लिया कि पर्वतको अपनी विद्याका बड़ा अभिमान है । वह वेदार्थका भी व्याख्यान कर रहा

था । तभी वह नारदसे “अजैर्यष्टव्य” इस वेद वचनका अर्थ करने लगा । उसने कहा, ‘अजा वकरी का वेटा बकरा है । स्वर्गाभिलाषी द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य लोग उनका यज्ञ करे ।’

नारद उसके मुँहसे ऐसा अयोग्य तथा पापपूर्ण अर्थ सुनकर कहने लगा, “विद्वान् तथा भद्र पिताके पुत्र ऐसा अयोग्य, युक्ति-हीन तथा गास्त्रविरुद्ध अर्थ तूने कहा से सीखा? यह सम्प्रदाय विपरीत व्याख्या तेरे पास कहा से आई? मेरा और तुम्हारा गुरु तो एक ही था और उसने सदा हमें धर्मका उपदेश ही दिया । हमारे गुरु क्षीरकदव तो अज शब्दका अर्थ तीन वर्षकी वह शालि अर्थात् जो है, जो बोने से न उगे, करते थे और उसका होम करने को कहते थे । यही अर्थ बड़े पुरुष और विद्वान् सदा करते आये हैं । फिर तू यह विपरीत पापपूर्ण व्याख्यान कैसे करता है?”

नारदकी युक्तियुक्त तथा गास्त्रानुकूल वात सुनकर भी हठी तथा अभिमानी पर्वत अपने अर्थपर डटा रहा । जब दोनोंमें इस अर्थपर वाद-विवाद बढ़ गया, तो पर्वतने कहा, कि यदि इस विवादमें तू जीते और मैं हारू तो मैं अपनी जिह्वाको छेद दू गा । नारदने विवादमें न पड़नेको कहा, पर पर्वत नहीं माना । दोनोंमें यह निर्णय हुआ कि राजा वसुके सामने वे अपना-अपना पक्ष पेश करें और जो निर्णय वह दे, वह दोनोंको मान्य होगा ।

नारद तो अपने स्थानपर चला गया और पर्वतने सारी वात अपनों मासे कह सुनाई । स्वास्तिमती बड़ी विदूपी थी । वह अपने बेटेकी वात सुनकर बड़ी दुखी होकर उसकी निन्दा करती हुई कहने लगी, “तू विपरीत मार्गी है । तेरा पिता समस्त गास्त्रोंको जाननेवाला इस वाक्यका वही अर्थ करता था जो नारद करता है ।”

पर्वतने माकी वात न मानी । उसने गाको राजा वसुके पास जाकर गुम दक्षिणामें उसके पक्षमें निर्णय देनेको कहा । माँ भी प्रान् राजा वसुमें अपने बेटेका पक्ष लेने को कहने गई । राजा-

ने गुरुआनीका बड़ा आदर किया और आने का कारण पूछा । तब उसने पर्वत और नारदके विवादकी सब बात राजासे कह सुनाई और गुरु दक्षिणा मागी । स्वास्तिमतीने राजासे कहा, “राजन् । आप शास्त्रकी बात जानते हो । बात तो नारदकी सत्य है, परन्तु आप पर्वतका पक्ष लेकर उसके बचनको प्रमाणित करना, नारदके बचनको नहीं ।”

राजा वसुका बुरा होनहार था । उसने धर्म-अधर्म और न्याय-अन्यायपर दृष्टि न रखकर अपने कर्तव्यको भूलकर गुरुआनीको गुरुदक्षिणामे पर्वतका पक्ष लेने का बचन दिया ।

राजा वसुके दरबारमे पर्वत और नारद अपना विवाद लेकर राजाके निर्णयके लिए आये । राजा सिंहासनपर बैठा था । सभामे मन्त्रियोके अतिरिक्त बड़े-बड़े विद्वान, वेदपाठी ब्राह्मण और कमण्डल-जटा धारी तपस्वी बैठे थे । पर्वत और नारद राजाको आशीर्वाद देकर सभामे अपने स्थानपर बैठ गये । फिर ज्ञान और आयुमे बड़े विद्वान राजासे कहने लगे, “हे राजन् । नारद और पर्वत दोनों पण्डित और शब्द शास्त्रके जाननेवाले आज अपना विवाद लेकर आपके सामने आये हैं । कुछ गद्वोके अर्थपर इनका मतभेद और विवाद है । आप भी वेदोके अर्थके जाता हैं । आप सभी सम्प्रदायोको जाननेवाले हैं । इस लिए आप इसके पक्ष-विपक्षकी युक्तिया सुनकर अपना निर्णय दे, जिससे सबको सत्य बात मालूम हो जाय ।”

राजा वसु तो पहले से ही पर्वतका पक्षपाती था । इसलिए पर्वतने बड़े गर्वसे अपना पक्ष पेश किया । वह कहने लगा, “महाराज । वेदोमे अजका अर्थ बकरा है । ससारमे भी यही अर्थ प्रसिद्ध है । वेदोमे कहा है कि स्वर्गका अभिलापी जो “अग्निहोत्रं जुह्यात्” कहा है, उसका अर्थ भी “अग्नि मे होम करो है ।” इससे अनादिसे अजका होम है । यह वेदवाक्य है ।” फिर पर्वत कहने लगा, “पशुको अग्निमे होमने से महा दुख होता है—यह आशका नहीं करनी

चाहिये । मन्त्रके प्रभावसे पशुको पीड़ा नहीं होती । यज्ञसे प्रत्यक्ष सुखकी अवस्था होती है । इतना ही नहीं, जीव तो महा सूक्ष्म है । इसलिए वह अग्निमें नहीं पड़ता । मन्त्रोके प्रतापसे होममें जीव नहीं गिरता, जीव तो अमर है । देहके जो अग अग्निमें गिरते हैं, वे अपने-अपने देवताओंको जाते हैं । मन्त्रमें होम किये पशु स्वर्ग लोकके सुखको पाते हैं । जैसे यज्ञको करनेवाला बहुत काल स्वर्गमें सुख पाता है, वैसे ही ये पशु भी स्वर्गसुख भोगते हैं ।” पर्वत अपने पक्षमें युक्तियां देकर अपने स्थानपर बैठ गया ।

नारद भी बड़ा विद्वान्, श्रावकके व्रतोंको पालनेवाला और विचक्षण व्रात्युण था । वह समस्त सभा और राजाको सम्बोधन करके कहने लगा, “आप सब बुद्धिमान हैं । मेरी बात सावधान होकर सुने । पर्वतने अन्याय रूप जो बात कही है, उसे आपने सुना है । मैं उसका खण्डन करता हूँ । अज शब्दके अनेक अर्थ हैं । इसका एक अर्थ करना व्यर्थ है । जैसे हरि शब्दके अनेक अर्थ इन्द्र, नारायण, सिंह और मर्कट हैं, वैसे ही अज शब्दके भी कई अर्थ हैं । पर्वतने अज शब्दका जो बकरा अर्थ किया है, वह अर्थ यहा नहीं लगता । यहा अज शब्दका अर्थ वह तिवर्मा जी है, जो बीज अकुर गक्तिसे रहित हो और न उगे, उसे अज कहते हैं । उससे ही होम करने को कहा गया है । भगवानकी पूजाका नाम यज्ञ है और पूजामें जीवधारी सामग्री नहीं पड़ती, अचित्त सामग्री ही पड़ती है । इस विधानसे किया होम स्वर्ग सुखको देनेवाला होना है, दूसरा नहीं । भगवान वीतराग देव मुक्तिमार्गके उपदेशक भस्मारसे सबको पार करनेवाले हैं । उसके अनन्त नाम ब्रह्मा, विष्णु, ईश, मिद्ध और बुद्ध आदि हैं । उसके प्रसादसे सबको नुच होता है । यज्ञोंमें पशु होमने की बात तो दूर, आटेका पशु भी बनाकर उसकी होम न करना चाहिये । बुरे परिणामोंकी व्याप्ति भावोंसे पाप और अच्छे परिणामोंसे पुण्य होता है । और पर्वतने जो यह कहा कि मन्त्रके प्रभावमें पशुको दुःख नहीं होता,

यह भी ठीक नहीं है। दुखके बिना मृत्यु होता ही नहीं। जो मृत्यु है, वही दुख है।” इससे आगे फिर नारदने पर्वतकी इस युक्ति “आत्मा सूक्ष्म है, वह मरती नहीं,” का खण्डन करते हुए कहा, “पर्वतकी यह युक्ति भी गलत है। आत्मा अविनाशी और अमूर्तिक है। न सूक्ष्म है, न मोटी है। परन्तु शरीरके सम्बन्धसे आत्मा सूक्ष्म या स्थूल दोनों प्रकारकी होती है। जैसे दीपकका प्रकाश अपने स्थानके समान छोटा-बड़ा होता है, वैसे ही आत्मा अपने शरीरके समान छोटी-बड़ी होती है। चीवटीकी आत्मा और हाथी की आत्मा तो एक समान है, पर शरीरके अनुपातसे छोटी-बड़ी बन जाती है। आत्माके इस देहका वियोग ही उसका मरण है। इसलिए मन्त्र, तन्त्र, शस्त्र, विष और अग्नि आदिके योगसे इसकी देह छूटने से दुख ही है। पर्वतने यज्ञका फल स्वर्ग बताया है। जीव की हिंसासे स्वर्ग कैसे मिल सकता है? यदि हिंसा करनेवाले स्वर्ग जायगे, तो फिर नरक कौन जायगा? सुखकी प्राप्तिका कारण धर्म है। और धर्म दया रूप है। पगुयज्ञ करनेवाले को न दया है, न धर्म।”

इस तरह नारदने पर्वतकी सभी युक्तियोंका खण्डन कर दिया। सभामें दोनों विद्वानोंके वाद-विवादको सुनने और उसकी परीक्षा करनेवाले धुरधर विद्वान बैठे थे। उन्होंने राजा वसुसे पूछा, “हे राजन्! आपने क्षीरकदबसे इस वाक्यकी जो व्याख्या सुनी हो, उसके अनुसार अपना निर्णय दे।” पर वह मूर्ख दुष्ट बुद्धि पक्षपाती राजा वसु गुरुके सत्य वचनको जानते हुए भी कहने लगा “हे सभाके विद्वान सदस्यो! नारदने जो कहा है, वह तो युक्तिपूर्ण है, परन्तु पर्वतने जो कुछ कहा है, वह गुरुकी आज्ञाके अनुसार प्रमाण रूप है। राजाके मुखसे ऐसे पक्षपातपूर्ण निर्णयके निकलते ही राजाका स्फटिक सिंहासन पृथ्वीमें धस गया और राजा वसु पाताल में गड गया। सच है पापसे पतन ही होता है। ऐसा अन्यायपूर्ण निर्णय देने से राजा वसु सातवें नरकको गया। यदि ऐसा पक्षपाती अन्यायी राजा नरक न जाय, तो और कौन जाय? जनता भी

“हाय ! हाय ! और धिक्कार-धिक्कार” कहने लगी । उसने महा दुष्ट पर्वतको धिक्कार देकर नगरसे निकाल दिया । समस्त जनता-ने सत्यवादी निष्कपट नारदकी दिल खोल कर प्रशसा की ।

इसके बाद सभी विद्वान और नारद आदि अपने-अपने स्थानोंको चले गये ।

पण्डित पर्वत सुक्षितमती पुरीसे निकाले जाने के बाद अनेक स्थानोंमें धूमता-फिरता एक स्थानपर पहुचा । वह जनताके हाथों अपने निरादर और अपमानको न भूल सका । सयोगसे उसकी भेट महा काल नामके एक धुद्र देवसे हुई । इस देवके परिणामों और स्वभावमें निर्दयता और जीवोंसे द्वेष भरा हुआ था । उसका भी पतन हुआ था । जैसा वह था, वैसा ही उसे पर्वत मिल गया । उन दोनोंमें शीघ्र मित्रता हो गई । उन दोनोंने मिलकर हिसाका गास्त्र बनाकर हिसाका उपदेश दिया । इस हिसा पापके फलवरूप पर्वत सातवें नरकमें गया, जहा राजा बसु पहले ही पहुच चुका था । इस प्रकार दोनों वहा मिल गये । पापी पापका प्रत्यक्ष फल पाने हैं, फिर भी वे पापको नहीं छोड़ते । दूसरे आदमी भी उनसे कम गिर्धा प्राप्त करते हैं ।

नारद अपने धर्मकार्यके फलसे रवर्ग में गया । नारदके समान सबको धर्मके काममें सदा सावधान रहना चाहिये ।

राजा अधकवृष्टिके जन्म-जन्मान्तरकी कथा

पहले बताया गया था कि राजा वसुकी दो रानियोंसे उसके दस पुत्र हुए थे, जो राजकाजमे राजाको सहायता देते थे। इनमे दसवे पुत्रका नाम वृषभज था। वह मथुरामे जाकर राज्य करने लगा। इसके बगमे अनेक छोटे-बड़े राजा हुए। वे सब राजा वीसवे तीर्थकर मुनिमुव्रत नाथके तीर्थमे हुए। फिर इक्कीसवे तीर्थकर नमिनाथ हुए। उनके समयमे हरिवशमे राजा यदु बड़े प्रसिद्ध राजा हुए थे, और उसका वग जगतमे यदु वश नामसे विख्यात हुआ। इस राजाका पुत्र नरपति हुआ। उसके दो पुत्र गूर और सुवीर राजा हुए। वे दोनों भाई बड़े गूरवीर थे। बड़े भाई गूरने छोटे भाई सुवीरको मदुराका राज्य सौप कर स्वयम् कुसम्म्य देशमे शौर्यपुर नगर बसाया। राजा शूरके अन्धकवृष्टि आदि कई पुत्र हुए। और मदुराके राजा छोटे भाई सुवीरके भोजक वृष्टि आदि महा योद्धा पुत्र हुए। कुछ वर्षोंके पश्चात् राजा शूर अपने ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्टिको और राजा सुवीर अपने पुत्र भोजक वृष्टिको राज सौप कर एक महामुनि सुप्रतिष्ठित स्वामीके पास साधु बन गये। राजा अन्धक वृष्टिके घर मुभद्रा रानीसे दस पुत्र हुए, जिनमे से बड़े पुत्रका नाम समुद्रविजय था। राजा अन्धकवृष्टि-के दो राजकुमारिया कुन्ती और माद्री हुईं। राजा सुवीरके पुत्र भोजक वृष्टिके हा रानी पद्मावतीसे तीन पुत्र हुए। यह राजा वसु के दसवे पुत्र वृषभजका विस्तार कहा। इसी प्रकार राजा वसुके नौ बेटोंके वश फैले।

महा मुनि सुप्रतिष्ठित रमते-रमते शौर्यपुर नगरके उद्यानमे

एक पहाड़ीपर आविराजे । जब वे रातके समय वहां तप कर रहे थे, तब सुदर्गन नामके एक यक्ष देवने अपने पूर्व जन्मके वैरके कारण मुनि सुप्रतिष्ठितको आग, हिम और मेघपातसे बड़े कष्ट दिये, पर महा मुनिने उन सब कष्टोंको बड़ी शान्तिसे सहन कर लिया । इस तपसे उनके कर्मोंका विनाश हो गया और उन्हे केवल ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया । इसपर जगतमे बड़ा हर्ष हुआ ।

शौर्यपुरका राजा अन्धकवृष्टि सपरिवार केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित महा मुनिके दर्शनके लिए उद्यानमे आया और उनसे धर्म उपदेश सुना । अपने उपदेशमे उन्होंने मुनियो और गृहस्थोंके धर्मका स्वरूप बताया । फिर राजा अन्धकवृष्टिने उनसे अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तान्त पूछा । केवल ज्ञानी सुप्रतिष्ठित मुनि राजाके पूर्व जन्मोंका बड़ा रोचक हाल उनसे कहने लगे, “हे राजन् । अयोध्यामे राजा रत्नवीर राज करते थे । उसके राजमे सुरेन्द्रदत्त नामका एक सेठ था । यह कहानी बहुत पुरानी पहले नीर्यकर आदिनाथ-के वादकी और दूसरे नीर्थकर अजितनाथके जन्म लेने से पहले की है । सेठ सुरेन्द्रदत्तके धनका पार न था । वह जैन धर्मका पक्का अनुयायी था । उस सेठका मित्र रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण था । वह सेठ अप्टमी, चौदश, दूसरे पर्वों पर और वर्षकालके चातुर्मास मे पूजा आदि पर बड़ा खर्च करता था ।

“एक बार जब वह सेठ व्यापारके लिए विदेश गया, तो उमने अपने मित्र रुद्रदत्तको बारह वर्षके लिए पूजा आदि के खर्चके लिए प्रयोग्यत बन दे दिया । रुद्रदत्तने जूबे, और भोग-विलास आदि मे नब धन नप्ट कर दिया और सेठके कहे अनुसार पूजा आदि मे कुछ भी खर्च न किया । जब रुद्रदत्तने समस्त धनको नप्ट कर दिया तो वह अपने व्यसनोंको पूरा करने के लिए चोरीमे धन लाने लगा । कोनवालने उसे कई बार पकड़ा और छोड़ा । फिर

वह उल्कामुख बनमे जाकर डाकू-भीलोमे मिलकर उनके साथ बड़े डाके डालने लगा । उसने जनताको बडे कष्ट दिये । उसके डाकोसे सब जगह हाहाकार मच गया । अयोध्याके राजाके सेनापति अश्रेणिकने बहुतसे भील-डाकुओंको मार दिया, जिनमे वह रुद्रदत्त ब्राह्मण भी मारा गया । इस प्रकार सेनापतिने जनताको डाकुओंके कष्टसे छुटकारा दिलाया ।

“पूजाके लिए दिये गये मित्रके धनको व्यमनादि में नष्ट करने के पापके फलस्वरूप रुद्रदत्त मर कर सातवे नरकमे गया । नरकमे कष्ट भोगकर वहां से मरकर फिर अपने अनेक पापकर्मोंके फलस्वरूप पशुगतियोमे गया । एक पाप ही जीवको बडा कष्ट देता है, पर जब जीव अनेक महा पाप करता है, तो उनका कष्ट तो उसे बड़े काल तक भोगना पड़ता है ।

“रुद्रदत्तका जीव अपने पाप कर्मोंका फल भोगकर अपने किसी अच्छे कर्मके पुण्योदयसे हस्तिनापुरमे कापिष्ठवायन ब्राह्मण-के घरमे उसकी अनुमती स्त्रीसे गौतम नामका पुत्र हुआ । बाल्यावस्थामे ही गौतमके माता-पिता मर गये और उसने बडे कष्ट भेले । उसे खाने तक के लाले पड़ गये और वह भिक्षा माग कर अपना पेट भरने लगा । भिक्षाके लिए धूमते-धूमते एक दिन उसे नगरमे समुद्रदत्त नामके मुनि मिले । गौतम भी उनके पीछे-पीछे होलिया और उनके आश्रममे पहुच गया । गौतमने मुनि समुद्रदत्तसे हाथ जोड़ विनती की, ‘हे नाथ ! मुझे भी अपने जैसा बना लो और मेरा उद्धार करो ।’ मुनिको उस पर दया आगई और उसने यह समझकर कि अब उसके अच्छे दिन आये हैं, उसे भी मुनि-दीक्षा दे दी । गौतम अब जी-जानसे घोर तप करने लगा । गुरु समुद्रदत्त और शिष्य मुनि गौतमने अपने तपके फलसे स्वर्गमे जन्म लिया ।”

महामुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, “हे राजन् अंधकवृष्टि ! गौतममुनिका जीव तो तू है और मैं तेरे गुरु समुद्रदत्त मुनिका जीव हूँ ।”

अपने पहले जन्मोका वृत्तान्त सुनकर, राजा अन्धकवृष्टिने अपने दस पुत्रोंके पूर्व जन्मोकी बात भी सुप्रतिष्ठित मुनिसे पूछी ।

महामुनि मुप्रतिष्ठितने कहा, ‘हे राजन् ! अब तू अपने दस पुत्रोंके पूर्व जन्मको बात भी सुन । भद्रलपुर नगरमें राजा मेघरथ अपनी रानी सुभद्रा सहित रहता था । उसका दृढ़रथ पुत्र था । उसी नगर में धनदत्त सेठ भी अपनी पत्नी नन्दयशा सहित रहता था । सेठके दो पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठा थीं और नौ पुत्र थे ।

“एक दिन उस नगरमें एक मुनि स्वामी सुमन्दिर आ गये । उनके उपदेशके प्रभावसे राजा मेघरथ और सेठ धनदत्त अपने नौ बेटों सहित सब साधु बन गवे । मुनिके सधमें सुदर्शन आर्यिका भी थी । उससे रानी सुभद्रा और सेठकी दोनों बेटियों सुदर्शना और सुज्येष्ठाने भी दीक्षा ले ली । सेठानी नन्दयशा उस समय गर्भवती थी । इसलिए उसने दीक्षा न ली । उसके धनमित्र पुत्र हुआ । फिर वह भी साव्वी बन गई । एक दिन अपने नौ पुत्रोंको साखुवेश में ध्यान करते देखकर साव्वी नन्दयशाको बड़ी प्रसन्नता हुई । धर्म स्नेहसे उसने ऐसी भावना की, कि अगले जन्ममें भी ये मेरे पुत्र हो । सुदर्शना और सुज्येष्ठा दोनों मात्रियोंने भी उनको देखकर यही चाहा, कि अगले जन्ममें सब हमारे भाई हो । तप करने के बाद ये बारह जीव अर्थात् मा, दो पुत्रिया और नौ पुत्र एक ही स्थान पर जन्मे ।”

महामुनि मुप्रतिष्ठितने आगे कहा, “हे राजन् अन्धकवृष्टि ! फिर आगे जन्म लेने के पश्चात् नन्दयशाका जीव तो तेरी रानी सुभद्रा हुई और नन्दयशाकी दोनों पुत्रिया सुदर्शना और सुज्येष्ठा के जीव तेरी राजकन्याएँ बुन्ती और माद्री हुई और नन्दयशा के नौ पुत्रोंके जीव नेरे नमुद्रविजयादि नौ पुत्र हुए हैं ।”

उम प्रकार उन बेटे-बेटियोंके पूर्वजन्मकी बात सुनकर

राजा अंधकवृष्टिने उत्सुकतासे अपने दशवे पुत्र वसुदेवके पूर्वजन्मकी कथा मुनि सुप्रतिष्ठतसे पूछी ।

मुनि सुप्रतिष्ठित कहने लगे, “हे राजन् ! इस ससारमे मनुष्य देह पाना बड़ा कठिन है । वसुदेवका जीव मगध देशमे सालिग्राममे एक अति दरिद्री ब्राह्मणके घर पुत्र हुआ । उसका नाम नन्दिसेन रखा गया । जब वह गर्भ मे आया, उसके पिताका देहान्त हो गया और वात्यावस्थामे ही उसकी माकी मृत्यु हो गई । यह अनाथ हो गया । उसकी मावसीने उसको पाला । दुर्भाग्यवश आठ वर्षकी आयुमे उसकी मावसी भी चलती बनी । इस प्रकार उस वच्चेको थोड़ा-सा भी सुख न मिला । फिर वह बालक अपने मामाके घर राजगृहमे आ गया और उसकी मामीने उसका प्रतिपालन किया । अनाथ जीवनने इस लडकेका हाल-वेहाल कर दिया । महा मलीन और दुर्गंधपूर्ण शरीर । रुखे-सूखे विखरे बाल, मैले-कुचैले वस्त्र । उसके गाल पिचके-पिचके और आखे पीली-पीली अन्दरको धसी हुई । उसके मामाका नाम दमरक्त था । दमरक्तकी एक लड़की थी । जब यह लड़का नन्दिसेन और दमरक्तकी लड़की कुछ बड़े हुए, तो उस लडकेने अपने मामाकी लड़कीसे विवाह करने की बात कही । लड़कीको इस मलीन दुर्गंधपूर्ण लडकेसे पहले ही घृणा थी । विवाहकी बात सुनकर तो उसने उस लडकेको घरसे ही निकलवा दिया । उसके मनमे अपने जीवनसे बड़ी रुकानि हुई । अपने दूर्भाग्यकी आगसे जलता हुआ वह गिरकर आत्मघात करने के लिए वाभार पर्वतपर चढ गया ।

“वहा पर्वतपर एक महामुनि अपने शिष्य मुनियो सहित तप कर रहे थे । उन शिष्योमे शख और निर्नामिक दो मुनि थे । मुनिने शख और निर्नामिकको इस लडकेकी तरफ सकेत करते हुए कहा, “देखो, यह लड़का अगले जन्ममे तुम्हारा पिता होगा ।” इस पर शख मुनिने उसे गिरने और आत्महत्या करने से रोका और

धर्मका उपदेश दिया । फिर शख उसे अपने गुरुके पास ले गया । गुरुने उसे तसल्ली देते हुए निराशाको छोड़कर अपने जीवनको सुधारने का उपदेश दिया । गुरुके उपदेशको सुनकर इसने अपने जीवनको सुधारने की ठानी । इसने धर्म-अधर्मको सुनकर गुरुसे चरित्रपालनके व्रत लिये । नन्दिसेनने जैसा कठोर तप किया, वैसा तप कम ही आदमी कर सकते हैं । वह भूख-प्यास, गर्मी-सरदी, डास-मच्छरके और तरह-तरहके कष्ट सहने लगा । मुनि संघमें मुनिसे लेकर आचार्य तक जो अनेक पद धारी साधु थे, उन सबकी सेवा वह दिन रात करता । साधुओंकी सेवा-सुश्रुपा ही उसका कर्म बन गया । साधुओंकी इस सेवाको ही शास्त्रोंमें वैयावृत कहा गया है । इस वैयावृतको बड़ा तप माना गया है । रूग्न साधुओंकी सेवा करना आसान काम नहीं है । विना घृणा उनके मल-मूत्रको उठाना और धाव आदिको साफ करना भी वैयावृतमें आते हैं । सेवासे मेवा मिलती है । वैयावृत तपसे नन्दिसेनको महा लट्ठि प्राप्त हुई, अर्थात् जो कुछ वह सोचे वही उसे मिल जाय । लट्ठि प्राप्त होने पर भी नन्दिसेनने इस वैयावृतको न छोड़ा । इसके वैयावृत की चर्चा मध्यलोक और इन्द्रलोक तक में होने लगी । एक दिन इन्द्रने सभामें नन्दिसेनके वैयावृतकी बड़ी प्रशंसा की । इन्द्रने कहा कि जो गृहस्थ होकर दूसरोंकी हर प्रकार सेवा करता है, वह बड़ा है । और नन्दिसेन तो साधु होकर भी मुनि-साधुओंकी घूव सेवा करता है । इस लिए वह प्रशंसनीय है । नन्दिसेनकी प्रशंसा मुनकर एक देव उसकी परीक्षा करनेके लिए मध्य लोकसे नन्दिसेनके पास आया । देवने कहा, “हे मुनि नन्दिसेन ! मैं पीड़ासे ग्रस्त हूँ, रूग्न हूँ । मुझे रोगमुक्त करो । मुनि नन्दिसेनने गृहस्थोंको कहा कि इसको भोजनमें वढ़िया चावन, मूँगकी दाल, दूध और धी दो । वह रोगी देव उस भोजनको न पचा सका और आथ्रममें नन्दिसेनके निकट आकर उसने सब खाया-पिया बमल कर दिया । उसका समस्त धरीर गन्दा हो गया । पर नन्दिसेन मुनिने जरा भी घृणा या संकोच

किये बिना उसके समस्त शरीरको धोया और अपने हाथोंसे साफ किया । देवने देखा कि इन्द्रने जैसा कहा था, नन्दिसेन उससे भी बड़ा वैयावृत्ति है, सेवा धर्ममें प्रवीण है । देवने कहा, “हे ऋषीश्वर ! वैयावृत्तमें आप अद्वितीय हो । आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ ।”

“वह देव इस प्रकार मुनि नन्दिसेनकी प्रशसा और नमस्कार करके वापिस देवलोक चला गया ।

“नन्दिसेन धोर तप करके और अन्तमें छह महीने आहार आदि सब कुछ छोड़कर स्वर्गमें गया । वहां से आकर यह जीव तेरे हां मुभद्रा रानीसे तेरा दसवा पुत्र हुआ है ।”

राजा अन्धकवृष्टि इस प्रकार महा मुनि सुप्रतिष्ठितसे अपने बेटोंके जन्म-जन्मान्तरकी कथाएं सुनकर अपने राज भवनमें लौटा । उसके मनमें विरक्तिके भाव पैदा होगये । अपने वशके पूर्व-गामी राजाओंके समान उसने भी युवराज समुद्रविजयको राज सौंप दिया और वसुदेवको उसके सरक्षणमें छोड़ दिया । फिर राजाने महा मुनि सुप्रतिष्ठितके पास आकर उनसे दीक्षा ली और साधु बन गया । जिस प्रकार अन्धकवृष्टिने सौर्यपुरका राज त्यागा, वैसे ही उसके छोटे भाई भोजक वृष्टिने मयुराका राज्य उग्रसेनको सौंप कर मुनिके महान्नत धारण किये ।

राजा समुद्रविजय पटरानी शिव देवी सहित सौर्यपुरपर राज्य करने लगा । उसके राजमें सभी सुखी थे । वह अपने छोटे भाईयोंको सब प्रकार से योग्य बनाने लगा । छोटे भाई भी उससे बड़े प्रसन्न थे ।

वसुदेवका चरित्र

गौतम गणधर राजा श्रेणिको वसुदेवका चरित्र कहने लगे, “हे राजा श्रेणि ! सौर्यपुरमे राजा समुद्रविजयने राज करते समय अपने नौ छोटे भाईयोंमे से आठके विवाह कर दिये । वसुदेव का विवाह नहीं किया । वसुदेव गहरमे चारों तरफ रूप बदल-बदल कर धूमता रहता था । उसके रूप-सौन्दर्यकी कोई सीमा न थी । उसके साथी भी सभी रूपवान थे । वे सब जिधर जाते उधर ही स्त्री-पुरुष उन्हे देखते रह जाते । उनके इस तरह नगरमे धूमते रहने से जनताके घरोंके सब काम ठप्प हो गये, क्योंकि स्त्रियाँ और वालक अपने सभी कामोंको छोड़कर उन्हे देखने लगते । इस पर सौर्यपुरके कुछ मुखिया राजा समुद्रविजयके पास आकर निवेदन करने लगे, “हे राजन् ! आपके राजमे हम सभी प्रकारसे सुखी हैं । धन, धान्य और व्यापार आदिकी वृद्धि है । हमे किसी बातकी कमी नहीं है । पर हम आपसे अभय मागते हैं ।” राजाने सबसे बड़े मुखियासे विना सकोच और भयके अपनी बात कहने को कहा । तब सबसे बड़े मुखियाने कहा, “हे राजन् ! वसुदेव अति सुन्दर और रूपवान है । जब वह गहरमे धूमने निकलता है, तब हमारी स्त्रिया अपने सब कामोंको छोड़कर उसे देखने लगती हैं, घरके सब काम-काज चौपट हो गये हैं । कुछके तो मन भी चलायमान हो जाते हैं । वसुदेव मुच्चरित्रवान है, उसमे कोई दोष नहीं । पर जैसे मूर्यको किनीसे ट्रेप नहीं, पर उसकी गर्मीसे पित्तकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही यद्यपि कुमारमे कोई विकार नहीं है, पर उसके रूप-लावण्यके अतिशयसे स्त्रियोंका चित्त चलायमान होजाता है । अब आप जो

उचित समझे करे, जिससे कुमारको सुख मिले और नगरकी व्याकुलता मिटे ।”

“राजाने मुखियाओंको वसुदेवको समझाने का आश्वासन देंकर विदा कर दिया और फिर जब वसुदेव बड़े भाईके पास आया, तब राजाने उसे अपने खाने-पीने की सुध रखने और बाहर न घूमते रहने को समझाया । राजा उसे अपने साथ अपनी रानीके पास ले गया और महलके उद्यानमें ही घूमने को कहा । वसुदेवने भाईकी बात मानकर बाहर घूमना-फिरना बन्द कर दिया और महल तथा उद्यानमें रहकर आनन्द मनाने लगा ।

“एक दिन रानीकी कुब्जा नामकी एक दासी रानीके लिए सुगन्ध आदि लिये जा रही थी । वसुदेवने उससे वह सुगन्ध छीनली । तब वह क्रोधसे वसुदेवको ताना देती हुई कहने लगी, “तुम्हारी इन्हीं चेष्टाओंके कारण तो राजाने तुम्हे यहा महलमें बन्दी बना रखा है, तुम्हारा बाहर आना-जाना सब बन्द है । लोगोंकी गिकायतपर ही राजाने तुम्हे यहा बन्द कर रखा है ।” दासीकी यह बात सुनकर वसुदेव उदास होकर भाईसे छुटकारा पाने को तैयार होगया । वसुदेव एक नौकरको साथ लेकर छलसे रातके समय मन्त्र सिद्ध करने के बहाने घरसे निकल गया व एक मसान भूमिमें गया । वसुदेवने नौकरको तो एक जगह बिठा दिया और स्वयं मसानमें कुछ दूर जाकर बैठ गया । फिर उसने एक मृतकको अपने वस्त्र और आभूषण पहिना दिये और वसुदेवने उस मृतकको आगमें डाले दिया । वसुदेवने नौकरको सुनानेके लिए जोर-जोर से कहा, “राजा निष्कपट है, वह मेरे पिता समान है । वह सुख से रहे । नगरके लोग भी सुखी और सन्तुष्ट रहे । जो हमारे बन्दु हैं वे भी सुखी रहे । हम तो अग्निमें प्रवेश करते हैं ।” यह कहकर वसुदेवने दौड़कर नौकरको ऐसा दिखाया, मानो वह स्वयं अग्निमें प्रवेश कर रहा है । फिर वसुदेव वहा से छिप कर निकल गया । नौकरने समझा कि वसुदेव-

ने अग्निमे प्रवेश करके प्राण त्याग दिये । नौकर भागा-भागा शहर राजा समुद्रविजयके पास आया और सब हाल राजाको कह सुनाया । प्रात काल ही राजा अपने भाइयो, राजदरबारियो और शहरके लोगोको साथ लेकर रोते-रोते मसानमे वसुदेवकी चिताकी ओर आया । वहा भस्ममे वसुदेवके आभूषण आदि देख कर राजाने समझा कि वसुदेव अवश्य ही जल कर मर गया है । तब उसने बहुत रोते-रोते भाईकी अन्तिम क्रियाए की और पश्चाताप किया ।

“वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर पश्चिमकी ओर चल पड़ा । आगे जाकर स्वेदपुर नगर निवासी सुग्रीव नामके गधर्व विद्याके आचार्यसे सगीत कला सीखने लगा । सुग्रीव भी उसके रूपको देख-कर उसपर मोहित होकर उसे दिलसे सगीत विद्या सिखाने लगा । उसकी दो लड़किया सोमा और विजयसेना गधर्व विद्यामे बड़ी निपुण थी । उनके पिताकी यह प्रतिज्ञा थी, कि जो नवयुवक इन्हें गधर्व विद्यामें जीतेगा, उससे उनका विवाह करेगा । वसुदेवने दोनो लड़कियोंको सगीतमे पराजित करके उनसे विवाह किया और ससुरालमे ही वडे आनन्दसे रहने लगा । वसुदेवकी दूसरी पत्नी विजयसेनासे अकूर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । फिर वसुदेव वहासे अकेला ही विना किसीको कुछ कहे-सुने चला गया । वसुदेव शूरवीर और गुणवान था । उसे कही भी जाने मे डर न था ।

“धूमते-धूमते वह एक सरोवरके किनारे आया । सरोवरमे उसने खूब क्रीड़ाए की और किनारे बैठकर जल तरग और मृदंग बजाये । वाजोकी मधुर ध्वनि सुनकर एक जगली हाथी जाग उठा और उसने वसुदेवपर आक्रमण किया । परन्तु वसुदेवने उसे शीघ्र बगमें कर लिया और उसके कुम्भ स्थल पर जा बैठा ।

“तब वसुदेवके मनमे विचार आया, कि जंगलमे मेरे इस पराक्रमको कौन देखेगा ? यदि मैं यही वीरताका काम सौरपुरमें करना, तो मारे नगरमे मेरी प्रशसा होती । तभी दो विद्याधर वहाँ

आकर वसुदेवको हाथीके मस्तकपर से उठाकर ले उड़े । उन विद्याधरोंके नाम अचिमाली और वायुवेग थे । उन्होंने कुजरावर्ती नगरके बाहर एक बनमे अशोक वृक्षके नीचे वसुदेवको उतारा । फिर उन्होंने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, “स्वामिन्, यहाके राजा अशनिवेग विद्याधरकी आज्ञासे हम आपको यहा लाये हैं । उस राजाके एक सुन्दर पुत्री है । राजा उस पुत्रीका विवाह आपसे करेगा । यह कहकर एक विद्याधर तो वसुदेवके पास ही रह गया और दूसरा विद्याधर राजाको वसुदेवके लाने का समाचार सुनाने शहरमें चला गया । राजाके पास जाकर विद्याधरने वसुदेवके रूप, यौवन और वीरताकी प्रगति की । राजाने उस विद्याधरको यह काम करने और शुभ समाचार सुनाने पर बड़ा पुरस्कार देकर विदा किया और स्वयं बनमे जाकर वसुदेवको बड़े आदर-मानसे नगरमें लाया । एक दिन शुभ महृत्मे उसने वसुदेवसे अपनी श्यामा पुत्रीका विवाह कर दिया । विवाहके बाद वसुदेव और श्यामा बड़े आनन्दसे वही विवाहित जीवन बिताने लगे । श्यामाने यह सोचकर कि उसके पतिको वीणा सगीतसे बड़ा प्रेम है, उसने सप्तश तत्री वीणा बजाई, जिसे सुनकर वसुदेवने बहुत प्रसन्नतासे उसे कोई वर माँगनेको कहा । श्यामाने अपने पतिसे यह वर माँगा, कि दिन-रात कभी भी वह उससे अलग न रहे । श्यामाकी यह बात सुनकर चचल और घुमककड़ स्वभाववाले वसुदेवने आश्चर्यसे इसका कारण पूछा ।

श्यामाने पतिसे कहा, “हे प्राण प्यारे ! इस वर माँगने का एक कारण है । अगारक नामका एक वैरी है । वह मौका पाकर तुम्हें ले उड़ेगा । इस बातकी भी एक कथा है, जिसे आप सुनें । किन्नर-गीत नगरमें विद्याधरोंका राजा अचिमाली अपनी प्रभावती रानी सहित रहता था । उस राजाके दो पुत्र ज्वलनवेग और अशनिवेग थे । राजा बड़े पुत्रको राज्य और प्रज्ञप्ति विद्या और छोटे पुत्रको युवराज

पद देकर स्वामी अरिन्द मुनिसे दीक्षा लेकर साधु बन गया । राजा ज्वलनवेगके रानी विमलासे अगारक पुत्र हुआ और अग्निवेगके रानी सुप्रभाके मैं श्यामा पुत्री जन्मी । कुछ समय बाद राजा ज्वलनवेग अपने छोटे भाई अर्थात् मेरे पिता अशनिवेगको राज्य और अपने पुत्र अगारकको युवराज पद और प्रजप्ति विद्या देकर स्वयम् मुनि बन गया । अगारकको यह व्यवस्था पसन्द न आई । उसने युद्धमे मेरे पिताको जीतकर राज छीन लिया । मेरा पिता राजभ्रष्ट होकर जरावर्त पट्टनमे है । हे प्राणपति ! मेरा पिता बड़ा चिन्तित ऐसे रहने लगा, जैसे पिजरेमे पक्षी रहता है । एक दिन मेरा पिता कैलाग पर्वतपर गया जहा उन्हे अगिरि नामके त्रिकाल-दर्गी चारण मुनिके दर्गन हुए । उनको नमस्कार कर मेरे पिताने उनसे पूछा, “हे नाथ ! मेरा पूर्व राज्य स्थान मुझे कैसे हाथ आयेगा ?” तब मुनिने उससे कहा, “तेरी पुत्री श्यामाके पति द्वारा तुम्हे तुम्हारा राज्य प्राप्त होगा ।” फिर मेरे पिताने मुनि महाराजसे पूछा, “मेरी पुत्रीका पति कौन होगा और वह कहा है ?” तब साधुने उत्तर दिया, “जो युवक अलावर्त सरोवरके किनारे मस्त हाथीको बगमे करेगा, वह तेरी पुत्रीका पति होगा । मुनिका यह उत्तर सुनकर मेरे पिताने उस दिनसे दो विद्याधर मस्त हाथीको जीतनेवाले नव-युवकको लाने के लिए उस सरोवरके पास नियत किये । ये विद्याधर आपको देखने के बड़े अभिलाषी थे, इसलिए आपको देखते ही वे आपको ने आये और नव मनोरथ सिँड़ हो गये । मुनियोंके बचन कभी अन्यथा नहीं जाते । यह बात मेरे ताऊके लड़के और मेरे पिताके राज्यको छीननेवाले अगारकने भी अवश्य सुनी होगी । वह क्रोधमे अग्निके समान जल रहा है । वह बड़ा कपटी है और महा विद्याके बनपर उड़त है । आपको आकाश गामिनी विद्या जानी नहीं । मैं इस विद्याको जानती हूँ । इसलिए मेरे बिना अकेले मत रहना, बरना अंगारक मीका देखकर तुम्हे उड़ा ले जायगा ।” अपनी पत्नी श्यामाके ये बचन मुनकर राजा वसुदेवने उससे कहा

कि हम तुम्हारे विना कभी अकेले न रहेंगे । इसके पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी आनन्दसे सावधानतापूर्वक रहने लगे । वसुदेवने श्यामा-को गधर्व विद्या सिखाना भी आरम्भ कर दिया । होनहार बलवान होती है । एक रातको बहुत समय गये वसुदेव और श्यामा सो गये । उस समय शत्रु अगारकने आकर वसुदेवको श्यामाके पाससे उड़ाकर आकाशमे ऐसे ले उड़ा जैसे गरुड़ नागको ले उड़ता है । जब वसुदेवको चेतनता आई तो वह समझ गया कि उसे कोई आकाशमे उड़ाकर ले जा रहा है । वसुदेवने उससे उसका नाम और उड़ाकर लेजाने का कारण पूछा । वह समझ गया कि यह अगारक ही होगा । वसुदेवने उसे मारनेके लिए मुट्ठी बाधी, पर यह सोच कर उसे न मारा कि इससे तो दोनों नीचे गिर जायेगे । इतनेमे श्यामाकी आखे खुल गई । वह पतिको अपने पास न पाकर समस्त वात समझ गई । झट से वह एक हाथमे खडग और दूसरेमे ढाल लेकर अपनी आकाशगामिनी विद्याके बलसे अगारक और वसुदेवके पास पहुच गई । उस समय श्यामाका तेज, वीरता और पराक्रम देखने योग्य थे । उसने लल्कार कर कहा, “हे दुराचारी ! हे चोर ! निर्लज्ज ! निर्दयी विद्याधर ! तु खडा रह । तू मेरे जीते जी मेरे प्राणनाथको क्यो हरता है ? तू हमारा राज्य छीनकर भी तृप्त न हुआ । सदा हमे दुख देने मे उद्यमी रहा है । आज तुझे बहुत दिनोमे देखा है । अब मेरे आगे से जीते जी कैसे जायेगा ? मैं आज तुझे नहीं छोड़ूँगी । ऐसा कहकर वह म्यानसे तलवार निकाल उसके सिरपर आई । तब वह वैरी अपनी रक्षा करता हुआ कहने लगा, “हे श्यामा ! स्त्रीको मारने मे बड़ा पाप है । इसलिए पापिनी परे हट । प्रथम तो तुम स्त्री जाति हो, दूसरे मेरे चाचाकी बेटी हो । मैं तुम्हे कैसे मार सकता हूँ ? मेरे हाथ तुझे मारने को नहीं उठ सकते ।” इस पर श्यामा कड़ककर बोली, ‘कौन भाई, कौन बहन ? जो अपना जन्म हो, उसे मारने मे अपयग नहीं । सिंहनी और व्याघ्री भी स्त्री जातिकी हैं, परन्तु जब वे किसी सामन्तपर भी आक्रमण करती हैं, तो वह भी उनको

मारने को तैयार होजाता है। इसलिए तू वृथा ही न्यायकी बात कहता है। जो तेरेमे सामर्थ्य और शक्ति है, तो मेरेपर शस्त्र चला। तू हमारा वैरी है, मेरे पिताका शत्रु है और मेरे पतिका अपहर्ता है।” ऐसा कहकर श्यामाने उसका मार्ग रोक लिया। तब उसने श्यामापर तलवारसे वार किया। उन दोनोंमें वह युद्ध हुआ कि तलवारसे तलवार बजने पर आग निकलने लगी। उनके युद्धको देखकर वसुदेवने मुक्के मार-मार कर उसका हाल-बेहाल कर दिया। तब अगारकने वसुदेवको छोड़ दिया, पर श्यामाकी सखी श्याम लच्छ्याने उसे ऊपर ही सम्भाल लिया। वह सखी उसे श्यामके नगरमे ले जाना चाहती थी, पर इतनेमें आकाशमे देववाणी हुई, कि इस वसुदेवको इस क्षेत्रमे बहुत लाभ है, इसे यही रखो। तब श्याम लच्छ्याने अपनी विद्यासे उसको पृथ्वीपर उतारा।

वसुदेव चम्पापुरीके उद्यानमे अम्बुज सगम सरोवरमे पड़ा। उसमे से निकलकर वह किनारेपर आया। वहा उसने तीर्थ-कर वासपूज्यका चैत्यालय देखा, जिसकी प्रदक्षिणा देकर उसने चैत्यालयमे दर्गन किये। वहा प्रात काल एक ब्राह्मण मदिरमे पूजन करने आया। तब उससे वसुदेवने उस नगरीका नाम पूछा। ब्राह्मण-ने कहा, “यह अग देश है और यह उसकी प्रसिद्ध नगरी चम्पापुरी है। क्या तू इसे नहीं जानता? क्या तू आकाश से पड़ा है?” ऐसा उम ब्राह्मण ने उससे पूछा। इसपर वसुदेवने उसकी प्रगसा करते हुए कहा, “तूने तो ज्योतिप गास्त्र भी पढ़ा मालूम होता है। मैं तो सचमुच आकाशसे ही गिरा हूँ। दो विद्याधर कुमारियोंने मेरे स्पर्श मोहित होकर मुझे आकाशमे हरा। फिर उन दोनोंमें झगड़ा हो गया और मैं नीचे गिर पड़ा।”

“वहा से वसुदेव ब्राह्मणका भेष भर कर चम्पापुरीमे गया जो नग-रंगमे दूबी हुई थी। सभी लोग चीणा बजाते हुए डधर-उधर धूम रहे। और चम्पापुरी नवरंपुरी-सी लग रही थी। तब

वसुदेवने एक नगर निवासीसे लोगोंके बीणा बजाते धूमने का कारण पूछा । उस नगर निवासीने उत्तर दिया, “चारूदत्त नामका एक सेठ कुवेर समान धनी यहा रहता है । उसकी गधर्वसेना पुत्री गधर्व-विद्यामे अति प्रवीण है । वह अपने रूपके मदसे बहुत अभिमानिनी है । उसकी यह प्रतिज्ञा है कि जो पुरुष गधर्व-विद्यामे उसे जीत लेगा, वह उससे विवाह करेगी । इसलिए बहुत से गधर्व-विद्या विशेषज्ञ अनेक देशोंसे यहा आये हैं । ये सब बड़े-बड़े सेठों और राजाओंके पुत्र हैं । गधर्वसेना रूप-लावण्यके समुद्र समान और सबके मनोंको हरनेवाली है । यह हर महीने सगीत सभा लगाती है, जिसमें बहुत से बीणा बजानेवाले इसे जीतने के लिए इकट्ठे होते हैं और यह जयध्वजा लिये साक्षात् सरस्वती-सी सगीत की परीक्षा लेती है । आज की सभा समाप्त हो गई । अब महीने बाद सगीत सभा होगी ।” तब वसुदेवने उससे वहा के गधर्व-विद्याके गुरुका नाम पूछा । उसने उसका नाम सुग्रीव बताया । वसुदेवने जाकर सुग्रीव उपाध्यायसे गधर्वविद्या सिखाने की प्रार्थना की । वसुदेवका रूप-यौवन देखकर वह उपाध्याय उसे बड़े घरका भद्र नवयुवक समझकर उसपर दया करके उसे गधर्वविद्या सिखाने को राजी हो गया । यो तो वसुदेव स्वयं गधर्वविद्यामें पहले ही प्रवीण था, वह अनजान बनकर वेसुरी बीणा बजाने लगा, जिससे वहा के सभी दूसरे सगीतज्ञ हसने लगे । महीना बीतने पर सगीत सभाका दिन आया । वसुदेव भी उसमें भाग लेने गया । प्रतियोगितामें सभी लोग वसुदेवको उपस्थित देखकर चकित हो गये । उन्होंने इतना रूपवान् सुन्दर पुरुष पहले कभी नहीं देखा था । वहा सभामें बीणा बजानेवाले, वादित्र और नर्तक थे । फिर निर्मल प्रभायुक्त गधर्वसेना वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित सभामें ऐसे आईं जैसे वर्षा कृतुमें विजली मेघ मण्डलमें निकलती हैं । उसने साक्षात् गधर्व-विद्याके समान सभामें प्रवेश किया । जब वह गधर्वविद्यामें बहुत से सगीतज्ञोंको पराजित कर चूकी, तब वसुदेव अपनी वारी पर प्रति-

योगितामे भाग लेने के लिए श्रेष्ठ सिहासन या मचपर आ विराजा । उसके सामने जो भी वीणाए और वाजे गधर्वसेनाने रखे, वसुदेवने उन सबमे कोई न कोई दोष निकाल दिया । तब गधर्वसेनाने उसके सामने सुधोपा नामकी महा मनोहर देवोपनीत सप्तदशतन्त्री वीणा बजाने के लिए रखी । कुमारने उसकी परीक्षा की और हर्षित होकर कहा, “यह वीणा निर्दोष है । अब जो तू कहे और जो तेरी अभिलाषा हो, वही मैं इस वीणा पर गाऊँ और वही बजाऊँ । मेरे रूप और गुणोंसे यह वीणा मेरे वशमे है और मुझे विश्वास है, कि तू भी मेरे वशमे हो जायेगी । इसलिए है पण्डिते । कहिये कि मैं क्या बजाऊँ ?” गधर्वसेनाने कहा, “जिस दिन विष्णुकुमार मुनिने वलिको वाधा, उस दिन तुम्हरु और नारद गधर्व जातिके देवोंने वीणा बजाकर विष्णुकुमारकी स्तुति की । यदि वैसी वीणा बजाने की तुममे प्रवीणता है, तो बजाओ । यह कथा पुराणोमे प्रसिद्ध है । इसलिए उससे अच्छा बजाने का विषय बया होगा ?”

वाजे चार प्रकार के होते हैं, (१) तारवाले जैसे वीणा, सितार, सार्ग आदि, (२) मढे हुए जैसे ढोलक और तबला आदि, (३) कामीके वाजे जैसे मजीरे और नुपुर आदि और (४) फूँकके वाजे जैसे तुरही, वसरी आदि । ये चार प्रकारके वाजे प्राणजीवोंके श्रोतोंको तृत करते हैं और गधर्व गास्त्रके घरीर कहे गये हैं । स्वर, ताल और पद ये गधर्व के त्रिविध स्वरूप हैं । वसुदेव इन सब वाजोंको बजाने मे निपुण और गधर्वविद्यामे अति कुशल था । उग लिए जो स्वर जिम रथानके योग्य थे, वसुदेवने उन्हे वही पर लगाया और उसने गधर्वविद्याका विम्तार श्रोताओंके सामने गाया, जिम नुनपर मगी विम्मित और दग रह गये । गवने उसके वीणा बजाने की प्रगता कर्ने हुए कहा कि यह तो गधर्व जानिके देवोंमे मे नुनपर, नारद या किन्त्र देव ही है । ऐसी वीणा चक्रान्दवाला और कौन तो महता है ? फिर गधर्वसेनाने कहा,

“विष्णुकुमार स्वामीकी स्तुतिके लिए तु बहु और नारदने जैसी वीणा बजाई थी और गाया था वैसे ही आप बजाओ और गाओ ।” वसुदेवने उसी तरह वीणा बजाई और गाया । यह सुनकर गधर्व-सेना बहुत प्रसन्न और हृषित हुई । वह निरुत्तर हो गई । उसके मनकी चिर अभिलाषा पूरी हुई । जैसा वर वह चाहती थी, वसुदेव उससे भी अधिक गुण-रूप-यौवन सम्पन्न था । तीन लोक-में उसे वसुदेवसे अच्छा वर कहा मिलता ? अब गधर्वसेनाने जय-वजा वसुदेवके हाथमें दी, मानो वह अपने हृदयको ही वसुदेवको सौप रही हो । समस्त सभा वसुदेवकी प्रशंसाके गम्भीर नादसे गृज उठी । अब गधर्वसेनाने बड़े अनुरागसे वसुदेवके गलेमें वरमाला पहनाई, जैसे गधर्व देवागना गधर्व देवको वर रही हो ।

इसके पश्चात् सेठ चाहूदतने विधि अनुसार इन दोनोंका विवाह कर दिया । सुग्रीव और यशोग्रीव चम्पापुराओंके जो गधर्व-विद्याके दो प्रसिद्ध अव्यापक थे, उन दोनोंने भी सगीतमें निपुण अपनी कन्याएँ वसुदेवको व्याह दी । उन तीनों नव वधुओंके साथ वसुदेव बड़े आनन्दसे रहने लगा ।

छोटे से पापके कारण वसुदेव विद्याधरके द्वारा हरा गया और ऊपर से गिराया गया, पर पुण्योदयसे ही वह महा सरोवरमें गिरने पर भी वच निकला और तीन रानियोंका पति बना ।

विष्णु कुमार महात्म्य

राजा श्रेणिकने गौतम गणवरसे पूछा, “हे प्रभो ! गधर्व-सेनाने जो विष्णु कुमार स्वामीके बलिको बाधने की बात कही थी, वह कथा क्या है ?” गौतम गणवर कहने लगे, “विष्णु कुमारकी कथा सुनने योग्य है । मैं तुम्हे सुनाता हूँ । उज्जयनी नगरीमे राजा श्री धर्म और उसकी पटरानी श्रीमती राज करते थे । राजाके चार अति बुद्धिमान मन्त्री बलि, बृहस्पति नमुच्चि और प्रह्लाद थे । एक दिन समस्त शास्त्रोके पाठी अकम्पनाचार्य अपने सात सौ सयमी मुनियो सहित नगरके बाहर उपवनमे पधारे । नगरकी समस्त जनता उनके दर्शनोके लिए समुद्रके समान उमड पड़ी । यह देख कर राजाने मन्त्रियोसे इसका कारण पूछा । बलि मन्त्रीने बताया कि नगरके बाहर उपवनमे एक अज्ञानी यति आये हैं जिनके दर्जनको ये अज्ञानी लोग जा रहे हैं । राजा श्री धर्मने भी उन साधुओके दर्शनके लिए जाने की इच्छा प्रकट की । मन्त्रियोने दर्जनके लिए न जाने को बहुत कहा, पर राजा न माना और मन्त्रियोको साथ लेकर अकम्पनाचार्यके दर्शन-को गया और धर्मकी चर्चा करने लगा । पर आचार्यने पहले ही सब मुनियोको ममभा दिया था, कि इस नगरीमे दुर्जनोका अधिकार है, इस लिए तुम सब मौन रहना । आचार्यके आदेशानुसार सब मुनि मौन रहे और किसीने भी राजा या मन्त्रीकी चर्चाका उत्तर न दिया । राजा मन्त्रियो महित वापिस लौट आया ।

“सधके श्रुत भागर नामके एक मुनिने अकम्पनाचार्य-को यह आज्ञा न मुनी थी । वह शहरमे विहार करके लौट रहा

था । इस लिए राजाके सामने वे मन्त्री श्रुत सागर मुनिसे चर्चा करने लगे । उनकी सब चर्चा मिथ्या मार्गकी थी । इसपर उस मुनिने उन्हें धर्मके युक्तिपूर्ण सत्य स्वरूपको समझाने का प्रयत्न किया । फिर वह मुनि गुरु अकरपनाचार्यके पास लौट कर आया और उनसे समस्त वृत्तान्त कहा । गुरुने कहा कि तुमने उनसे विवाद करके अच्छा नहीं किया और इससे सघपर विपत्ति आयेगी । श्रुतसागर मुनि वापिस उसी स्थानपर जाकर ध्यानमें बैठ गया, जहां उससे मन्त्रियोंका विवाद हुआ था । रातको वे पापी मन्त्री उस मुनिको मारने आये । बनके देवने उन्हे कील दिया । प्रात जब लोगोंने इस घटनाका हाल सुना, तो उन्होंने उन मन्त्रियोंको बड़ा धिक्कारा । राजाने भी उन्हे दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ।

“चलते-चलते ये हस्तिनापुर आये । हस्तिनापुरमें उस समय राजा महापद्म चक्रवर्ती राज करता था । उसके आठ कन्याएं थीं, जिन्हे विद्याधर हर कर ले गये । पर उन्हे राजाके योद्धा सकुशल ले आये और वे साध्विया बन गईं । और वे आठों विद्याधर भी साधु बन गये । यह देखकर राजा महा पद्म अपने बड़े राजकुमार पद्मको राज देकर छोटे राजकुमार विष्णु कुमार सहित साधु बन गया ।

“विष्णु कुमार तप करते-करते अनेक ऋद्धियोंका स्वामी बन गया ।

“पर राजा पद्मका नया राज्य था । इधर-उधर से शत्रु उपद्रव करने लगे । उसके राज्यमें एक गढपति सिहवल अपने गढ़-की शक्तिके अभिमानसे उपद्रव करने लगा । राजा पद्मको इससे बड़ी चिन्ता हुई । इसी समय बलि आदि वे चारों मन्त्री राजा पद्म-के पास आगये और वे सिहवलको जीतकर और वाधकर राजा-के पास लाये । राजा उनसे बड़ा प्रसन्न हुआ । ये चारों मन्त्री देश-

कालको समझनेवाले और राजप्रशासनमें निपुण थे। वे राजा पद्मके प्रधान बन गये। जब वलि भिहवलको वाधकर लाया था, तब राजाने प्रसन्न होकर वलिसे एक वर मागनेको कहा। वलिने राजासे एक वचन धरोहरके तौर पर अपने पास रखने का वचन ले लिया कि जब मैं चाहूगा, तब ले लूँगा।

कुछ समय बीतने पर श्री अकम्पनाचार्य अपने साधु सघ महित हस्तिनापुरके उद्यानमें वपकि चतुर्मिमिके लिए पधारे। इनके आने का वृतान्त सुनकर चारो मन्त्री अपने पूर्व अपराधसे डरे और उन्हे आशका हुई कि कही ये मुनि हमारे पहले उपद्रवोका दृढ़ राजासे हमें न दिलवादे। पर यह आशका निराधार थी। पर वे उसके निराकरणका उपाय सोचने लगे। मन्त्री वलिने जाकर गजा पद्ममें अपना वर मागा कि मुझे सात दिनका राज देदो। राजा पद्म मन्त्री वलिको हस्तिनापुरका सात दिनका राज देकर स्वयम् वरमें अदृश्यके समान रहने लगा। जब वलि मन्त्रीसे राजा बन गया और उसने अकम्पनाचार्य और मुनियोपर उपद्रव करने की मोची। इस निए जहा मुनि ठहरे हुए थे, वहा उनके गिर्द यज्ञ आरम्भ कर दिया। इससे मुनियोको धुएका बड़ा कष्ट हुआ। यज्ञ-में आये लोगोंकी झूटी पतलो और मिट्टीके मटकने साधुओपर डाढ़वाए। एवं वे साधु उपसर्गोंके सहनेवाले थे, वे उनको मनुष्यकृत उपसर्ग जान ध्यानमें बैठ गये। उन्होंने मनमें यही निश्चय किया, कि नदि इस उपसर्गमें बचेगे तो आहार-पानी लेंगे, वग्ना अनशन और समाधिमरण।

“जब नाव नष्ट नहित अकम्पनाचार्यपर हस्तिनापुरमें यह उपद्रव हो गया था तब विष्णु कुमार मुनिके गुण अपने रघु महित मिथिलापुरीम विनाश नहीं थे। वे महा दिव्यज्ञानी गृह दया कर सकने सके कि अकम्पनाचार्य आदि जाति की मुनियोपर भयकर उपद्रव हो रहा है। मुझसे यह जात नुसकन पृष्ठदन्त नामक धूत्यक

श्रावकने व्याकुल होकर उपद्रवका स्थान और उसे दूर करने का उपाय पूछा । इस पर गुरुने कहा कि उपद्रव हस्तिनापुरमे होरहा है और बताया कि मुनि विष्णु कुमारको विक्रियाकृद्वि—गरीरको इच्छानुसार छोटा-बड़ा करने की गवित प्राप्त हो गई है । सो उसके प्रभावसे वह उपद्रव दूर होगा । यह शवित इन्द्रमे भी नहीं हैं । वह पुष्पदन्त ध्रुत्लक श्रावक भी विद्याधर था, पर ब्रत लेते समय उसने अपनी लौकिक विद्याको तज दिया था, परन्तु धर्मके निमित उसको उपयोग करने की छूट रखी हुई थी । इसलिए उस पुष्पदन्त ध्रुल्लकने तत्काल विष्णु कुमार मुनिके पास जाकर गुरुका कहा सब वृतान्त बताया । मुनि विष्णु कुमारको अपनी विक्रियाकृद्वि प्राप्तिका पता भी न था । तब उसने परीक्षाके लिए अपनी भुजा पसारी । उसकी भुजा इतनी लम्बी हो गई कि कही भी न अटकी । तब विष्णुकुमार स्वामीने अपनी विक्रियाकृद्विकी प्राप्तिको जाना ।

तत्काल विष्णु कुमार मुनि अपने भाई राजा पदमके पास गया । राजा पदमने उसका बड़ा आदर-मान किया । विष्णु कुमार ने कहा, ‘‘हे राजन् ! आपने यह क्या किया कि आपके राज्य मे मुनियोपर उपद्रव हो रहा है । कुरुवशमे ऐसा राजा कभी नहीं हुआ, जिसके राजमे भक्तजनोपर उपद्रव हुआ हो । पृथ्वी पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि दुर्जन पापी लोग तपस्वियोपर उपसर्ग करे और राजा उस उपद्रव को न मेटे । वह राजा किस कामका ? जलती अग्नि महा प्रपण्ड है, वह भी जलसे बुझाती है । पर जब जल ही से अग्नि प्रज्वलित हो, तो आग कैसे बुझे ? विना आज्ञाका राजा वृक्षके ढूठके समान है । हे पदम ! इससे तू आप उठकर इस दुराचारी वलिको मना कर । यह तेरा मन्त्री भी पशु समान है, क्योंकि वह सब जीवोपर समभाव रखनेवाले साधुओंसे भी द्वेष रखता है । ये साधु जलके समान शीतल स्वभाववाले हैं, परन्तु जब जल तपता है, तो वह अग्निके समान जलानेवाला बन जाता है ! ऐसे ही ये शीतल स्वभावी साधु कोप करे तो आगके समान

भस्म कर दे । ये महाधीर और सामर्थ्यवान है । इनमे त्रिलोकको उठानेकी शक्ति है । यदि साधु कदाचित क्रोध करे तो प्रलयकी अग्नि के समान भस्म कर दे । इससे बलि आदि मत्रियोका नाश न होने से पहले उन्हें कुमार्गसे हटा, देर मत कर ।”

“तब राजा पद्मने मुनि विष्णुकुमारसे कहा, ‘हे प्रभो ! मैंने सात दिनका राज्य बलिको दे रखा है, इसलिए अब मेरा वश नहीं चलता । आप ही जाकर उसे समझाओ । वह आपकी आज्ञा मानेगा ।’” इसपर मुनि विष्णुकुमार वावनेका रूप बनाकर बलि-के पास गया और कहने लगा, “तुमने थोड़े दिन जीनेके लिए चार दिनका राज पाकर ऐसा पाप क्यों किया ? उन तपोनिष्ठ महा पुरुषोंने तेरा क्या अनिष्ट किया ? ये तो सबका हित चाहते हैं । जो तपस्वी मन, वचन और कायासे महातप करे, उनसे कौन द्वेष करता है ? इससे तुम उनका उपसर्ग दूर करो । देर न करो । जो काम तुमने किया है, उसे छोड़ो । बलिने उत्तर दिया, “यदि ये मेरे राज्यसे चले जाये, तो यह उपसर्ग टल सकता है, अन्यथा नहीं ।” इस पर वामन रूप विष्णुकुमारने उत्तर दिया, “ये तपस्वी योगारूढ़ हैं । चतुर्मासमे गमन नहीं करते । ये व्रती साधु शरीरका त्याग तो कर देते हैं, परन्तु अपना व्रत भग नहीं करते । इसलिए तुम यह करो कि मैं वामन हू, मेरे पावसे मापी तीन पग पृथ्वी उनके रहनेको दे दो । मेरी इतनी याचना तो मान लो । बलिने विष्णुकुमारकी यह बात मान ली और कहा कि उस तीन पग पृथ्वीके सिवाय एक पैर भी अधिक न विचरे । यदि वे तीन पैर पृथ्वीसे बाहर विचरेंगे तो मैं उन्हें मारूगा । उस अविनयी, कपटी, सर्प समान महा दुष्ट अभाववाले बलिको वशमें करने के लिए विक्रियाऋद्धिके धारक वामन मुनि विष्णुकुमार अपनी विक्रियाऋद्धिका रूप उसे दिखाने लगे । पहले उन्होंने अपने शरीरको इतना ऊचा किया कि वह आकाश से छूते लगा । किर उसके तीनों पैरोमें नमम्त पृथ्वी आकाश और देवर्यांग तक आगये । उन पर समस्त जगतमें, “यह क्या है ? यह

क्या है?" की ध्वनि गूज उठी। देवोने तरह-तरह के बाजे बजाकर गान करके मुनि विष्णु कुमारकी स्तुति की और हाथ जोड़कर अपनी ऋद्धिको सकोचने की प्रार्थना की। मुनि विष्णु कुमारने अपने शरीरको सकोचा और मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। देवतागण बलिको बाँधकर दूर डाल आये। देवोने धोषा, सुधोपा और महाधोषा वीणाए ससारको दी। इस प्रकार विष्णु कुमार मुनि अकम्पनाचार्य और साधुओंका उपसर्ग दूर करके साधुप्रेमके कर्तव्य-को पूरा करके अपने गुरुके पास गये और समस्त वृतान्त कह सुनाया। विक्रियाऋद्धिको काममे लाने का गुरुसे प्रायश्चित्त लेकर तब विष्णु कुमारने घोर तप किया और केवल ज्ञानी हुए। फिर वे मोक्ष गये।

मुनि विष्णु कुमारकी कथा साधुकी अतुल्य शक्ति और सकटमे फसे साधुओंके कष्ट निवारणकी कथा है।

चारूदत्त चरित्र

गधर्व सेनाके साथ अपने श्वमुर सेठ चारूदत्तके पास रहते हुए वसुदेवने सेठकी विपुल धन-सम्पत्तिसे विस्मित होकर पूछा “हे पूज्य ! राजाओंको भी दुर्लभ इतनी विपुल धन-सम्पत्ति आपने कैसे प्राप्त की ? जो भाग्य पुरुषार्थ आपमे है वह कैसे प्रकट हुआ और यह विद्याघरकी पुत्री गधर्व सेना आपके पास कैसे आई ? — ये सब बातें जानना चाहता हूँ ।”

सेठ चारूदत्तने कहा, “हे धीर ! यह तुमने अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हे सब कुछ बताता हूँ । इस चम्पापुरीमे सेठोंका एक महा भानुदत्त प्रसिद्ध सेठ और उसकी धर्मपत्नी सुभद्रा रहते थे । दोनों सम्यग्दर्गनके धारक अणुव्रतके पालक वडे सुख-चैन से अपना जीवन बिता रहे थे । यो उन्हे न किसी बातकी वमी थी और न कोई चिन्ता, पर सेठानीके कोई पुत्र न था । वह सोचने लगी, मेरे मव कुछ है परन्तु ये सब एक पुत्रके बिना अच्छे नहीं लगते । गृहस्थका साक्षात् फल पुत्र है और हम उससे वचित हैं । पुत्र अभिलापाने वह धर्म, पूजा और दान आदि मे अधिक लग गई । एक दिन एक मुनिसे सुभद्राने पुत्र होने के बारे मे पूछा । उग अविज्ञानी मुनिने सेठानीपर अति दया कर बताया कि तेरे शीघ्र ही अनि ऐष्ट एक पुत्र होगा । मुनि तो यह वरदान देकर वहाँमे चले गये । कुछ नमय पश्चात् सेठानीके मैं पुत्र हुआ और मेरा नाम चारूदत्त रखा गया । मेरे जन्मपर वरमे वडा उन्मव मनाया गया । जब मैं बड़ा हुआ, तो मुझे धर्मके व्रत दिनाये गये और मुझे मव रक्षाए गिराई गई । मेरे पाच मिन वराह, गोमुख, हरि-

सिंह, तपोन्तक और मूर्खभूमि थे। एक दिन हम सब मित्र खेलने-तैरनेके लिए रेत्नमालनी नदी पर गये। वहाँ नदीके पुलमें एक विद्याधर और उसकी विद्याधरी क्रीड़ा कर रहे थे। मैं तो उन्हें देखकर आगे बढ़ गया, पीछेसे उनका कोई शत्रु विद्याधर वहाँ आ पहुँचा। उसने उस विद्याधरको कील दिया। और उसके पासही तलवार और ढाल लेकर लाल आखे किये खड़ा रहा। वह अब विद्याधर हम सब को देखकर विद्याधरीको लेकर वहाँ से चलता बना। तब उस बधे हुए विद्याधरने मुझे सकेतसे तीन गडी हुई औपधिया बताई, जिनसे मैंने उस बिद्याधरकी कीलन समाप्त की, उसे चलाया और उसके घाव अच्छे किये। बन्धनयुक्त और घाव रहित वह विद्याधर तलवार और ढाल हाथों में लेकर अपने शत्रु विद्याधर पर झपटा और लड़कर अपनी स्त्री को उससे छुड़ाकर ले आया। अपनी स्त्री सहित मेरे पास आकर वह विद्याधर मुझसे प्रसन्नतातूर्वक कहने लगा ‘आपने मुझे मरते को बचाकर प्राणदान किया, इसलिए जो आपकी आज्ञा हो, मैं आपकी वही सेवा करूँ ।’

वसुदेव सेठ चारूदत्त आत्मकथा बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। तभी सेठ चारूदत्तने उस विद्याधरकी कथा, जैसी उसने सेठको बताई थी वसुदेवको सुनाने लगे। चारूदत्त वसुदेव से कहने लगे “विद्याधर ने बताया था, कि वह वैताड़े पर्वतकी दक्षिण श्रैणी शिव मन्दिर शहरके राजा महेन्द्र, विक्रम का पुत्र अमितगति था। उसके दो मित्र भूमि सिंह और गोरमुख विद्याधर थे। एक दिन अमितगति अपने दोनों मित्रोंके साथ हिमवत पर्वत परे गया। वहाँ पर्वत पर हिरण्यरोम नामका तपस्वी अपनी सुकुमारिका पुत्रके साथ रहता था। वह सुकुमारिका सरसोंके फूलके समान अंति सुकुमार अगोवाली थी वह उस तापस कन्याको देखकर उसपर अनुरक्त हो गया। तब उसके पिता राजा महेन्द्र विक्रमने तपस्वी से योचना करके अमितगति का विवाह सुकुमारिका से कर दिया। उसका मित्र भूमिसिंह उसकी पत्नी सुकुमारिकाको प्राप्त करनेकी अभि-

लाषा करने लगा, और अमितगतिको उसके मनकी बात का पता भी न लगा। वह बेखबर उसके साथ धूमता रहा। आज जब अमित-गति अपनी स्त्री सहित चम्पापुरी के बन में धूम रहा था। तब कुमित्र भूमिसिंह उसे कीलकर सुकुमारिकाको ले भागा। मेरी सहायतासे अमितगतिने उस बन्धनसे छुटकारा पाया और अपनी स्त्री पाई, इसलिए वह मुझसे बड़ा प्रसन्न हुआ।”

चारूदत ने आगे बताया — “अमितगति विद्याधर मेरे उपकार का बड़ा आभारी था। उसने मुझे पुत्र के समान प्यार किया और सेवा करने को कहा।” तब मैंने उसे कहा — “आप बड़े हो, विद्याधर हो, आपके दर्जन मनुष्यों को दुर्लभ हैं, पर मुझे सुलभ हुए। इससे बड़ा और क्या लाभ होगा? आप मेरी चिन्ता न करें। आप मुझे अपना पुत्र समझें।”

सेठ चारूदतने बसुदेवको बताया कि वह अमितगति विद्याधर उसका नाम, पता और गोत्र आदि पूछ कर अपनी पत्नी सुकुमारिका सहित अपने स्थानको चला गया और मैं चम्पापुरीमें अपने घर चला आया। और मैंने अपने मामा सर्वार्थकी सुमित्रा पत्नीसे जन्मी मित्रवती नामकी पुत्रीसे विवाह किया। परन्तु मैं निरन्तर शास्त्र पढ़नेमें लगा रहता था, इसलिए अपनी पत्नीसे मेरी बातचीत ही नहीं ही पाती थी। तब मेरी सास ने मेरी माको उलाहना दिया कि उस का पुत्र पढ़ा-लिखा मूर्ख है, वह स्त्री-चर्चा ही नहीं जानता। इस पर मेरी माने मेरे वासनासक्त चचा चारूदत्तको मुझे कामसक्त बनानेका उपाय करने को कहा। मेरा चचा मुझे गणिकाओं की मुख्या कलिंगसेनाकी पुत्री वसन्तसेनाके घर ने गया। वसन्तसेना भीन्दर्य, रूप, योवन वसन्तको भी मात करनी थी और गाने, बजाने और नृत्य आदि में अति प्रवीण थी। उसके नृत्यमण्डपमें शृगार विद्यामें निपुण और रसिया अनेक नोंग बैठे थे। मैं भी अपने चचा चारूदत्तके साथ वहां जा बैठा। वसन्तसेनाका नृत्य आम दुखा। वह अपने हाथों और मुखसे

शृगार आदि कर नवरसो और भाव-विभाव और अनुभावके भेदो को बताने लगी । सबको नृत्य दिखाती हुई वह मेरे सामने विशेष रूपसे हर्ष और अनुरागसे अप्सराके समान नृत्य दिखाने लगी । वह मुझपर मोहित होगई । अपनी मा कर्लिंगसेनाके पास जाकर उसने उससे कहा कि मुझे चारूदत से मिलाओ । मैं उसके बिना किसी औरको अपना पति न बनाऊँगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है । कर्लिंग सेनाने आदरसन्मानसे चारूदत्तको वशमे कर लिया और फिर उसके साथ मुझे भी अन्दर अपने भवनमे ले गई । उसने हम दोनोंको बड़े आदरसे आसन दिया । कर्लिंगसेनाने रुद्रदत्तसे जुएमे उत्तरासन जीतकर मेरे साथ जुआ खेलना आरम्भ किया । इस पर बसन्त सेनाने माको जुएसे हटाकर स्वय मुझसे जुआ खेलना आरम्भ किया, मैं उसके रूप तथा चारुर्य पर मुग्ध सा बहुत देर उससे जुआ खेलता रहा । मुझे जोरकी प्यास लगी । पर उसने ऐसा मोहिनी चूर्ण डालकर मुझे पानी पिलाया कि मुझे भ्रम हो गया मैं उसपर अनुरक्त हो गया और उसकी माने उसका हाथ मुझे पकड़ाया । मैं फिर बसन्तसेनाके पास बारह वर्ष तक रहा, मा-बाप-पत्नीको सर्वथा भूल गया । मेरे सभी अच्छे सस्कार जाते रहे । मैंने वहा १२वर्ष मे सोलह करोड दीनार उनको भेटकर दिये । जब मेरे घरमे धन न रहा, तब मैं मित्र समान अपनी स्त्री के आभूषण वहा ले जाने लगा । इस कर्लिंग सेनाने अपनी लड़की बसन्त सेनाको मुझ दीन-हीनको छोड़नेको कहा । माने बेटीको बहुत समझाया कि मुझे छोड़ कर अब वह किसी दूसरे धनी आदमीको अपने प्रेम पाशमे फसाये । पर इस बातसे दुखी बसन्त सेनाने एक यही बात कही, “हे माता ! यह तुम क्या बात कह रही हो ? यह चारूदत्त मेरी कुमारावस्था का पति है । उसकी सेवा करते हुए मुझे बारह वर्ष हो गये । उसने भी हमारे लिए अपना सब धन खर्च कर दिया और दूसरा आदमी चाहे कुवेर समान धनी हो, उसे मैं प्रेम नहीं कर सकती । चारूदत्त-के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती । तुम महाकृतधन

हो, जो उमके किरोड़ो दीनार घर मे आने पर भी उसे त्यांगनेको कहती हो समस्त कलाओके जाननेवाले नवयुवक और धर्मात्मा पतिका त्याग करना मेरे लिए असम्भव है ।”

“पर कर्लिंगसेना अपनी वेटीका हित कब चाहने वाली थी ? वह तो धनकी भूखी थी । वह पतिता मुझे बसन्त सेनासे अलग-अलग रखने लगी और एक रात को नीदमे मुझे घरसे बाहर डाल दिया । जब मेरी आखे खुली, तब मैं अपने घर गया । मेरा पिता भानुदय तो मुनि हो गया था । मेरी मा पतिके वियोग और मेरे व्यसनी हो जानेपर बड़ी दुखी थी और मेरी पत्नीके दुखकी तो कोई हृदय न थी । वे दोनो मुझे देखकर टेन्टे कर रोने लगी । तब मैंने उन्हे धैर्य बधाया । फिर मैं अपनी स्त्री के कुछ आभूषणो से कुछ पूजी जमा करके अपने मामाके साथ उगीरावर्त नामके देशमे व्यापारके लिए गया ।”

चारुदत्त वसुदेवसे अपनी आगेकी कथा कहने लगे, “उगीरावर्त देशमे हमने कपास मोल ली । जब मैं अपने मामा के साथ ताम्रलिप्तपुर को जा रहा था, तब दैर्योग से कपास आग लगनेसे राख होगड़ । तब मैं मामा को छोड़कर एक धोड़पर सर्वार होकर पूर्व दिशाकी ओर गया था, पर मार्गमे वह धोड़ा भी मर गया । तब मैं पितयुग नगरमे गया सुरेन्द्रदत्त जहा मेरे पिताका मित्र था । उसने मुझे प्रेमसे अपने पास कई दिन सुखसे रखा । फिर मैं वहा से नमुन्द्रमे नाव द्वारा व्यापारके लिए गया । जो छहवार समुद्र प्रवेश किया । भातवी बार मेरा जहाज फट गया । मेरा द किरोड़ का बन नव नमुद्रमे ढूँव गया । मैं एक लकड़पर समुद्र पार करके चिनारे पर राजपुर नगर मे गया । वहां एक तापस परिव्रजाके नेष्ठमें था । वह मुझे चायनका लोभ देकर बनमे ले गया । उसने मैं चम्पें बाधकर एक गहरे अधे कुएमें उतारा । मैं वहा रस उड़ा करने लगा । वहा पहले ही एक दूसरा आदमी उस तापस

का उतारा कुए मे पड़ा था । उसने मुझे उसका समस्त रहस्य रहस्य बताया कि वह भी उज्जयिनीका धनी सेठ था और उसका भी जहाज समुद्रमे फट गया था और लकड़ियों पर चढ़कर इस बनमे आनिकला था । मैं भी इस तापसके चुगलमे फस गया था । देखो, मैं हाड़का पिंजरा रह गया हूँ । उसने मुझे गोहकी पूँछ पकड़कर कुए से बाहर निकलने का उपाय बताया । मैंने भी उसे अपना नाम, पता, स्थान और वृत्तात बताये । मैंने उसे धर्मका उपदेश दिया । उससे जीव दया, सत्य, चोरी न करने और परिग्रह परिणामके व्रत लिये । फिर मैं उसके बताये हुए उपायसे गोहकी पूँछ पकड़कर कुएसे बाहर निकला । मेरा समस्त शरीर कुएकी दीवारसे छिल गया । बाहर निकलते ही मुझे एक भयकर काल समान जगली भैसा दिखाई दिया । उसे देखकर मैं एक गुफामे घुसा । वहाँ एक अजगर साप सोया हुआ था । भैसे और अजगरमे विषय युद्ध हुआ और मैं अच्छा मौका देख वहाँसे बच निकला । उस बनसे बचकर मैं प्रत्येक गाँव मे आया । वहा दैवयोगसे मुझे मेरा चाचा रुद्रदत्त मिला । उसने मुझे धैर्य बधाया और खानापानी दिया ।”

चारूदत्त वसुदेव को इससे आगे की बात सुनाने लगे, रुद्रदत्त ने स्वर्णदीप उसके साथ चलकर खूब धन लाने की बात मुझे कही । हम दोनों एरावती नदीके उत्तर की ओर गिरिकूट पहाड़ीको उलाघ कर वेत्रवनमे होते हुए टकण देशमे पहुचे । रुद्रदत्तने दो तेज चालवाले बकरे मोल लिये, जिन पर चढ़कर हम अति विषय मार्ग को चलकर पहाड़ीकी चोटीपर पहुचे । तब पापी रुद्रदत्तने वहासे स्वर्णदीप पहुंचनेकी विधि यह बताई, कि इन दोनों बकरोंको मार कर इनकी खालोमे हम प्रवेश करे । यहासे बड़ी-बड़ी चोच और पजेवाले भारण्डव पक्षी उन खालोंको मासके लोभसे द्वीप ले उड़ेगे । मैंने रुद्रदत्तको ऐसी हत्या करनेसे मना किया, पर वह न माना । मेरी आख बचाकर उसने अपने बकरेको मारकर

उसकी खाल तैयारकी । मारते समय मैंने उस बकरे को जमोकाट-मन्त्र दिया । रुद्रदत्त ने मेरे हाथमें तलवार देकर मुझे उस खालमें डाल दिया और दूसरी खालमें तलवार लेकर वह स्वयं बैठ गया । भारण्डव पक्षी हम दोनोंको लेकर उड़ गये । जो पक्षी मुझे ले जा रहा था, सयोगसे वह काना था । वह स्वर्णद्वीप न जाकर मुझे रत्नद्वीप ले गया । उस रत्नद्वीपमें रत्नोंकी किरने जगमगा रही थी । वहाँ एक जैन मन्दिर था और उसमें एक मुनि थे । मैंने मन्दिरकी प्रतिमाके दर्शन किये और मुनिकी वन्दना की ।

चारूदत्तने आगे कहा, “जब मुनिका ध्यान समाप्त हुआ, तब मुनिने मुझे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद देकर मुझे मेरा नाम लेकर सम्बोधित करते हुए मेरी कुशल और मेरे वहा जानेका कारण पूछा और विना किसीकी सहायता मैं वहा कैसे पहुंचा ?” “तब चारूदत्त ने नमस्कार करते हुए अपनी कुशल बताते हुए सारचर्य पूछा—“हे प्रभो ! आपने मुझे पहले कहा देखा है ।” इस पर मुनिने मुझे बताया, “चम्पापुरीके उद्यानमें मेरे शत्रुने मुझे कीला था और तुमने मुझे उससे छुड़ाया था । मैं अमितगति विद्याधर हूँ । मेरा पिता मुझे गज्य देकर मुनि हो गया । मैं राज करने लगा । मेरी रानिया विजयमेना और मनोरमा थी । विजय सेनाके तो गधर्वसेना पुत्री हुई और मनोरमाके सिहयठ और वराहग्रीव दो पुत्र हुए । मैं बड़े नज़र मार निययगबो राज्य देकर और दूसरे छोटे राजकुमार वराहग्रीवको युवराज बनाकर अपने मुनि पितासे जैन साधुकी दीक्षा ले ली । हे चारूदत्त अब तुम बनाओ कि समुद्र के बीच इस कुम्भकण्ठक द्वीपमें उम कलींक पहाड़ीपर तुम कैसे पहुंचे ?” मैंने मुनिको अपनी दुर्गन्धुर नियति समन्त कथा मुनाई । नभी दो विद्यावर आकाशसे उत्तर दर वहा हमारे पान नीचे आये । वे उस मुनिके पुत्र ही थे । मुनि ने उन्होंने बताया कि मैंने पहले तुम्हें भी बताया था कि पानदलने ही मुझे उम शक्तिमें बचाया था । आज यह यहा थाया है । उम दर दोनों विद्याधर उठे प्रेमने मेरे पाग बैठ गए ।

चारूदत्त ने आगे बताया—“इतने में वहा दो देव आये । उन्होंने शिष्टाचारके विरुद्ध पहले मुझे नमस्कार किया और मुनिको यह रीति-क्रम भग था । सो मैंने दोनो विद्याधरो और दोनो देवोंसे इसका कारण पूछा । उन देवोंने बताया कि हम दोनोंको जिनधर्म-के उपदेश देनेके कारण चारूदत्त ही हमारे साक्षात् गुरु हैं । तब विद्याधरने उसकी कथा को पूछा । पहले बकरे का जो जीव देव हो गया था, वह कहने लगा, “हे विद्याधर ! वाराणसी में सोमशर्मा और उसकी पत्नी सोमिला रहते थे । वह ब्राह्मण वेद व्याकरण और पुराण आदि का विद्वान था । उसकी दो पुत्रिया भद्रा और सुलसा थी । दूसरी पुत्री सुलसा भी व्याकरणादि शास्त्रकी पारगामी थी । ये दोनो विवाह न करके परिव्राजिकाए बन गई । उनकी विद्वता और तप प्रसिद्ध हो गये । उन दोनो वहनोंने अनेक वादियों को जीता । याज्ञवल्क नामका एक प्रसिद्ध परिव्राजक धूमता-धूमता उन दोनों को विवाद में जीतनेकी इच्छासे वाराणसीमेआया । दोनो वहनोंमें सुलसा को अपनी विद्वता पर अधिक गर्व था, इसलिए उसने पण्डितोंकी सभाके बीच प्रतिज्ञा की, कि वह इस परिव्राजकसे विवाद करके उसे भी जीतेगी । जो वात सुलसा कहती, याज्ञवल्क उसका ही खण्डन करके अपने पक्ष स्थापित कर देता । फल यह हुआ कि सुलसा हार गई । याज्ञवल्कने सुलसाका हाथ पकड़कर कुचेष्टाए करनी आरम्भ की । सुलसाने उसे बहुत मना किया, पर उसने एक न सुनी । सुलसाके याज्ञवल्कसे एक पुत्र हुआ । उस नवजात शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे डालकर वे दोनो पापी चलते बने । बड़ी वहन भद्राने उस ऊचे मुहके शिशुको पीपलके वृक्षके नीचे पड़ा देखकर समझ लिया कि वह उसकी छोटी वहन सुलसाका पुत्र है । भद्राने उसे उठा लिया और उसका अच्छी तरह पालन-पोषण किया । भद्राने उस ऊचे का नाम पिप्पलाद रखा । यह बालक बड़ा होने पर बहुतसे शास्त्रोंका पारगामी विद्वान बना । एक दिन उसने भद्रासे पूछा, “हे माता, मेरा पिप्पलाद नाम क्यों

रखा और मेरा पिता जीवित है कि नहीं ?” इस पर भद्राने उसे उसके मा-वाप की और उसके जन्म की सारी कथा बताई और कहा कि वह उसकी बड़ी माऊसी है। उसने ही उसे एक धायको लगाकर पाला है। शूलके समान चुभने वाली यह बात सुनकर पिप्पलाद बड़ा कुछ हुआ और अपने पिता याज्ञवल्कके पास गया। पिप्पलाद ने विवादमें पिता को जीता। फिर उसने अपने सातापिता की विनयपूर्वक सेवा-श्रुषा करके शान्त किया। पिप्पलादने अपना पथ चलाया और वे मा-वाप उसके गिर्ज्य बृन्द गये। वह देव कहने लगा कि मैं भी पिप्पलादका शिष्य था और उसके हिसा मार्ग को पुष्ट करके नरक-नरक में घूमा। छहबार वकरेका जन्म पाया और यज्ञो में होमा गया। सातवीं बार भी मैंने टकन नामके देशमें वकरे का जन्म लिया। चारुदत्तने मुझे धर्मका उपदेश दिया, पमोकार मन्त्र सिखाया। उसी धर्मके प्रभावसे मैं देव बना हूँ। चारुदत्त मेरा गुरु है। इसलिए मैंने उसे मुनिसे पहले प्रणाम किया है।”

तब दूसरे देव ने बताया—“मैं उसी वणिक पुत्र का जीव हूँ, जिसे रमायनके लोभी तापस परिव्रजबने धोखेसे कुएमें डाल दिया था और जिसने चारुदत्तको वहा कुएसे गोह की पूछ पकड़कर बचने का उपाय बताया था। कुएं में चारुदत्तने मुझे धर्मका उपदेश और अहिंसा आदि के ब्रत दिये थे। उनके फलस्वरूप ही मैं देव बना हूँ और इनीलिए मैंने ‘पहले चारुदत्तको और पीछे मुनिको नमन्नार किया है।’

फिर उन दोनों देवोंने पापमें दूर्वते प्राणियों को धर्मका उपदेश दिकर बचानेवालोंके महान् उपकारका हाल बताया। उन्होंने कहा कि जो प्राणी अपने उपकारको भूल जाय, उस जैसा कृतधनके नमान दूसरा जोहे निन्दय नहीं है। जो पराय उपकार को भूल जाय, तो उसके बदलेम अवगुण वर्ते, उग नमान दूसरा कोई दूरानार्थी नहीं। पराये थोड़े मैं उपकारकों भी मदा बड़ा मानना चाहिये।

यदि उसका प्रति उपकार न भी कर सके, तो सदा उसके उपकार को याद रखें, और उसके प्रति सदा अति अच्छे भाव रखें और उससे गर्व न करें। यही कुलवन्त पुरुषोंका कर्तव्य है।” यह कह कर उन दोनों देवोंने विद्याधरोंके सामने अपनी विभूति और ऐश्वर्य दिखाये।

चारूदत्तने वसुदेवको बताया कि उन देवोंने मुझे अग्निमेन जलने वाले वस्त्र और अनुपम आभूषण पहिनाये, कृतप वृक्षोंकी माला दी, और देवलोकके सुगंध मेरे अगपर लगा। तब उन देवोंने चारूदत्त से कहा, “हे स्वामिन ! अब जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा ही हम करें। कहो तो अभी आपको अपार धन देकर चम्पापुरी ले चले।” चारूदत्तने उन्हे वहासे अपने स्थानको जाने और याप करने पर उसके पास आनेको कहा। इस पर उन्होंने चारूदत्तकी आज्ञा स्वीकार कर पहले मुनिको और फिर चारूदत्तको नमस्कार कर वहाँसे प्रस्थान किया।

चारूदत्तने वसुदेवको इससे आगे कहा, “फिर मुनिको प्रणाम कर मैं उन दोनों विद्याधरोंके साथ आकाश-मार्गसे उनके शहर शिव मन्दिरमें आगया। वहाँ उन विद्याधरोंने मुझे बड़े आदर-मान और सुखसे कई दिन रखा। शहरके सभी लोग मेरे यशका गान करके मेरी प्रशंसामें कह रहे थे, कि इस नगरीके स्वामीका मैं ही प्राण बचानेवाला हूँ। फिर १२ दिन गन्धर्व सेनाकी मा और भाईने मुझे गधर्व सेना दिखाई और कहा, “इसके पिता अमितगति मुनिने बताया था कि चारूदत्तके घर यदु पुत्र वसुदेव गधर्व विद्यामें इसे जीतकर विवाहेगा। अमितगति तो मुनि हो गये इसलिए इस लड़की को तुम अपने साथ ले जाओ। और इस काम को पूरा करो।” मैंने उनकी बात मान ली और उन्होंने दासियों सहित वह लड़की गधर्व सेना मुझे सौंप दी। उसके दोनों भाई बहुत से रन-सम्पदा और बड़ी सेना लेकर मेरे साथ चम्पापुरी आनेको तैयार हो गये। तब मैंने उन दोनों देवोंको याद किया। क्षण मात्रमें वे हँस विमान

तथा निधि लेकर वहा आ उपस्थित हुए। वे देव हम सबको चम्पापुरी मेरे महल मे लाये। सब नवनिधि और रत्न आदिसे मेर घरको भरपूर कर वे देव मुझे नमस्कार कर वापस चले गये। मैं अपनी माता, मामा, धर्मपत्नी और कुटुम्बियोंसे बड़े प्रेमसे मिला। घरमें हृष्टकी लहर दौड़ गई। मैंने देखा कि कलिंग सेना गणिका की पुत्री पतिव्रता वसन्त सेना की मेरे परदेश जानेके पश्चात अपनी मा का घर छोड़कर आषिकासे श्राविकाके व्रत लेकर मेरी मा के निकट आकर रहने लगी। वसन्त सेनाने मेरी मा और धर्मपत्नीकी हृदयसे इतनी सेवा की कि वे उससे अति प्रसन्न हुईं। जगतमें वसन्त सेनाका बड़ा यश हुआ। मैं भी यह तमाम बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मैंने वसन्त सेनाको अगीकार किया। वेद्या पुत्री होकर भी उसने शीलधर्म को निवाहा। वसन्त सेना भी मुझे पाकर हर्षसे गदगद होगई। अब मैं निधि के प्रताप से दीन-अनाथोंको मुँह मागा दान देकर तृप्त करता हूँ। इसे किमिच्छा दान कहते हैं अर्थात् जिसकी जो इच्छा हो वही मेरेसे ले जाय।”

आगे चारूदत्तने वसुदेवको अपने विपुल तथा अक्षय धनके वारे मे बताया,— “तुमने इस धनके वारे मे पूछा, सो यह देवोंका दिया हुआ है और इस गन्धर्व सेनाका विवाह तुमसे किया है तुम्हारे लिए ही यह विजयार्द्धसे यहा हाई है। इसके भाग्य धन्य हैं जो उसने तुम जैसा पति पाया। मुझे इसकी बड़ी चिन्ता थी। वह चिन्ता अब दूर हो गई। अब मैं निच्चिन्त हो तप करूँगा।

गन्धर्व मेना और चारूदत्तकी सम्पूर्ण कथा सुनकर वसुदेव वडा प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा, “धन्य है ! इस निष्कपट और उदार पुरुष को, जिसने अपने अच्छे-कुरे जीवनकी समस्त कथा को मुझे नुना दिया। धन्य है इसके पुण्य, पुरुषार्थ और वैभवको। फिर वसुदेवने भी अपनी गव कथा चारूदत्तको। नुनाई कि राजा अंधक दृष्टिया पुत्र और ममुद्र का विजय का छोटा भाई वह वसुदेव के से परगे निरन्त। योंगे पक-दृमरेकी रहम्य पूर्ण कथा मुन कर बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए।

वसुदेव का नीलंयशासे विवाह

राजा वसुदेव गधर्वसेना सहित चम्पापुरीमें बडे आनन्द-मगलसे दिन बिताने लगे। फागुन की अष्टान्हिका का पर्व आया। समस्त जनताके हृदयोमें धर्मका उल्लास था। चम्पापुरी तीर्थकर वासपूज्यके पांचों कल्याणकोका पवित्र तीर्थ है। यों तो हर समय ही दूर-दूर से यात्री वहा पूजा करने आते हैं, पर पर्वके दिनोमें विशेष भीड़ और चहल-पहल रहती है। भगवान् वासपूज्यका मन्दिर नगर से बाहर है। यात्री तरह-तरहकी सवारियोमें बैठ कर वहा दर्शन-पूजनको आते हैं। राजा वसुदेव और रानी गाधर्व सेना पूजन-सामग्री लेकर बडे भक्तिभावसे घोड़ियों के रथ पर सवार होकर मन्दिरके लिए चले। राजाके आगे-आगे बडे-बडे योद्धा जारहे थे।

यदुपति राजा वसुदेवने एक कन्याको भील कन्याके भेपमें नृत्य करते देखा। वह कन्या नीलकमलके पुष्प समान व्यामसुन्दर और अद्भुत वस्त्र पहने ऐसे लगती थी जैसे वह वर्षाकी विभूति है और उसके आभूपण विजली से चमक रहे हैं। अपने होठोंकी लालिमा, कमल समान चरणों और सुन्दर नेत्रोंसे वह शरद की लक्ष्मीसी ही लग रही थी। वह अतिरूपवती लड़की जिनेन्द्र भगवान् की भक्तिमें लीन नृत्य करती हुई तीर्थकर वासपूज्यके पच कल्याणकोका यज्ञ गारही थी। उस नृत्यकारिनी की वादित्रमण्डली और वाजे आदि समयानुसार थे। वह बडे हाव-भावसे नृत्य और अभिनय कर रही थी। राजा वसुदेवकी उसपर जो दृष्टि पड़ी वही अटक गई। उसने अपने रूप और चतुराई से राजा वसुदेवके मनको मोह लिया। वह भी राजा पर मुराद हो गई। उस लड़कीका नाम नीलमयगा था।

रानी गधर्वसेनाने यह देखकर ईर्ष्या से कुपित हो आखे कुछ सकोच-
कर सारथीको आदेश दिया—“यहा वहुत देर हो गई है, अब आगे
वढो।” रानीका आदेश पाते ही सारथीने घोड़ियोको आगे बढ़ाया
और सब मन्दिरके द्वार पर पहुंच गये।

राजा-रानीने मन्दिरकी प्रदक्षिणा कर उसके भीतर ‘नमो
जय, नमो जय’ कहते हुए प्रवेश किया। वहा तीर्थकर वसुदेवकी
प्रतिमा विराजमान थी। पहले राजा-रानी ने दूध, दही, धी, ईख-
रस और जलके पचामृत नहवन पाठ गाते हुए मूर्तिका अभिषेक
किया। फिर उन्होने अष्टद्रव्योंसे जिनपतिकी बड़ी श्रद्धासे पूजा
की। पूजाके पश्चात् साष्टाग दण्डवत् करके वे मूर्तिके सामने बैठकर
पवित्र णमोकार मन्त्रका जाप करने लगे। पवित्र चित्तसे फिर
उन्होने अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीके कहे धर्मकी मगली कही।
फिर राजा-रानीने सामायक किया। सामायकके समयमें उन्होने
शत्रु-मित्र, सुखःदुख जीवन-मरण और लाभ-हानि आदि सबके प्रति
समताभाव होने की भावना की। सामायक करके उन्होने ऋषभ
देवसे महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थकरोंकी स्तुति पढ़ी। इस
तरह राजा वसुदेव और गधर्व सेनाने महाभक्तिसे प्रभुके पूजा स्तवनसे
दृष्टिन हो अन्तिम प्रणाम किया। मन्दिरकी प्रदक्षिणा करके वापस
अपने महलमें लौट आये।

गधर्वसेनाने जबसे उन नृथकारिनीको देखा था, उसके मन
में ईर्ष्या हो गई। उसकी आखे टेढ़ी-टेढ़ी होरही थी। भीहे तनी
हुई थी। वह मान मारे मानिनी बनी हुई थी। राजासे खिल्ल
थी। राजा वनुदेव उसके मुख और आँखोंको देखकर भव समझ
गया। राजा वनुदेव नर्म पड़ गया। वह जानता था कि पनि नमा,
ओर प्रिया का कोइ गया। गधर्वसेना वनुदेवके नम्र होनेसे वहुत
प्रगल्प दृष्टि, उसके मान का लोप हो गया। पर वान यहा समाप्त
न हुई।

जबसे उस नृत्यकारिनीने वसुदेवको देखा था, वह वडी बेचैन थी। उसे दिनमे चैन न रातको नीद। वह इसी उधेड़-बुन मे थी कि किस प्रकार अपने प्रिय राजाको पाये। अन्तमे उसने एक वृद्ध विद्याधरीको रांजा वसुदेवके पास अपना मनोर्थ सिद्ध करनेको भेजा।

साक्षात् विद्यासी वृद्धा ललाटमे तिलक लगाकर राजाके महलमे आई और एकान्तमे राजासे मिली और उसे आशीर्वाद दिया। इधर-उधरकी बाते करनेके बाद उस वृद्धाने नीलयशाके वशका परिचय देते हुए कहा—“हे राजन्! इस समय असित पर्वत नामके नगरमे मातगवगका अतिप्रतापी राजा प्रहसित राज करता है। उसकी रानीका नाम हिरण्यवती है, जो सब विद्याथोसे परिपूर्ण है। और मेरा पुत्र सिहदंष्ट्र है, जिसकी स्त्री का नाम नीलाजना है। उनकी पुत्री नीलयशा है। यह लड़की उज्ज्वल यशवाली, कुलवती, शीलवन्ती, कलावन्ती और गुणवन्ती है। तीर्थकर वासपूज्य के मन्दिर के बाहर नृत्य करते समय उसने आपको जबसे देखा है, वह आपपर अनुरक्ता होगई है और आपके विरहमे अति व्याकुल है। वह न स्नान करती है, न कुछ खाती-पीती है और न बोलती है। उसकी इस दशा को देखकर उसके कुटुम्बके सभी स्त्री-पुरुष व्याकुल हैं। उसके माता-पिता भी चिन्तित हैं। उन्होने कुल विद्याधरीसे पूछा कि इस लड़कीके मनमे क्या है? राजा वसुदेव ने उत्सुकता से पूछा—“कुल विद्याधरीने क्या बताया?” वृद्धाने कहा “कुल विद्याधरी ने सब हाल बताया और आपका वृत्तान्त कहा।” तब हम सब ने निश्चय किया कि यह यादवेश्वरके दर्शनोकी अभिलाषावती है। मैं आपको लेने आई हू। मैं उसकी दाढ़ी हू। हे राजन्! निमित्तज्ञानीने बताया है कि वह वियोगिनी है। इसलिए आप शीघ्र चलो और उसे विवाहो।” वृद्धाकी मीठी-मीठी मनभाती बातोसे राजा वासुदेवके हृदयमे नीलयशा के प्रति अनुराग तेज होगया। वह नीलयशाके पास जानेका अभिलाषी हो गया, परन्तु

वह तत्काल चम्पापुरीसे जाना नहीं चाहता था । वसुदेवने वृद्धा विद्याधरीसे कहा, “हे माता ! मैं अवश्य आऊ गा, तुम इसमे सन्देह मत करो । तुम जाकर मेरे वचनोसे उसे धैर्य वधाओ ।” वह वृद्धा राजाको आशीस देकर तुरन्त आने को कहकर चली गई । उसने जाकर नीलयगाको धैर्य वधाया ।

रातको राजा वसुदेव और गंधर्वसेना महलमे सो रहे थे । राजा प्रहसित की रानी हिरण्यवती विद्याधरी वेताल कन्याका भय-कर रूप वनाकर उनके महलमे आई । उसने वसुदेवको पकड़ कर खीचा । राजा जाग उठा, उसने हृषि मुटिठ्योसे हिरण्यवतीको खूब कूटा, पर उसने राजाको न छोड़ा । वह गलीके मार्गसे राजाको गमगान भूमिमे ले गई । वहाँ गमगानमे राजाने बहुतसी विद्याधरियोको देखा । तब वह हिरण्यवती विद्याधरी खिलखिलाकर हमी और कहने लगी—“मैं हिरण्यवती हूँ और वेताल विद्या से तुम्हे यहा लाई हूँ । यहा नीलयगा भी आपकी प्रतीक्षा कर रही है । मैं आप दोनोंकी अभिलापा पूरी करूँगी । फिर उसने नीलयगाको कहा—“तेग प्राण वर्तम आगया है । अपने हाथोसे इसका पल्ला दूँ । फिर उसने नीलयगाके हाथमे राजा वसुदेवका हाथ पकड़ाया । हाथसे हाथ ढूँते ही, दोनों आनन्द विभोर हो उठे । फिर वे दोनों मनके भाथ नगर्मे आगये । नीलयगाके पिताने उनका स्वागत किया । समर्पन यहरमे उत्सव सा हो गया । फिर एक दिन शुभ-नक्षत्रमे राजाने वसुदेव और नीलयगाका विवाह कर दिया । वे वर-वतु आनन्द पूर्वक रहने लगे ।

वसुदेव के और विवाह

एक दिन वसुदेव अपनी ससुराल महलमे बैठे हुए थे । उन्होने महा कोलाहल सुना । पास ही जो द्वारपालनी थी, वसुदेवने उससे उस कोलाहलका कारण पूछा । द्वारपालिनी कहने लगी—“मैं सब वृत्तान्त जानती हूँ । सो आप सुनें । इस विजमार्द्धगिरि मे एक शकटामुख शहर है, जिसका राजा विद्याधरोका अधीश्वर नीलवान् है । राजाके नीलनाम का पुत्र और नीलाजना पुत्री है । आपके श्वसुर सिंहदण्ड का विवाह नीलाजना से ही हुआ था । सिंहदण्ड और नीलाजना के नीलयशा पुत्री हुई, जिसका विवाह आप से हुआ । परन्तु सिंहदण्ड और नीलके आपस मे यह वचन था कि “यदि एकके पुत्र हो और दूसरेके पुत्री हो तो, उनके आपसमे विवाह हो ।” नीलके यहा पुत्र नीलकठ हुआ और आपके श्वसुर के पुत्री नीलयशा हुई । आपस के बचनोके अनुसार उन दोनोका विवाह होना चाहिये था, पर नीलयशाके जन्म समय मुनियोसे उसके वरके बारेमे पूछने पर वृहस्पति नामके एक साधुने बताया कि इसका पति वसुदेव होगा । इससे सिंहदण्ड ने नीलयशा का विवाह आपसे किया ।”

इस पर वसुदेव ने पूछा—“इस कोलाहलसे इस कथाका क्या सम्बन्ध है ?” द्वारपालिनी कहने लगी—“वही तो मैं बता रही हूँ । आज राजा नील अपने पुत्र नीलकण्ठके लिए आपसे जो नीलयशा व्याही है, उसे माग रहा है और कह रहा है कि अपना वचन याद करो और उसे पूरा करो । राजा नीलने अपने पुत्र नील-कंठ सहित राजदरबारमे आपके श्वसुरसे विवाद किया । परन्तु

आपके ऋवुसुर सिहदप्टने न्यायसे उन्हें जीत लिया । इस पर ही विद्याधर लोग कोलाहल कर रहे हैं ।”

यह सुनकर राजा वसुदेव कुछ मुस्कराया ।

गर्द ऋतुमे राजा वसुदेव और नीलयशा बडे सुख-चैनसे दाम्पत्य जीवन विता रहे थे । एक दिन वे पति-पत्नी हीमत पर्वत-पर घूमनेके लिए ऐसे निकले जैसे मेघ विजलीके साथ आकाशमे चलता है । पर्वतके सुन्दर वनमे वृक्षोकी गोभा देखते-देखते नीलयशा पति-से कुछ धरणोके लिए विकुड़ गई । उस समय राजा नीलका पुत्र नीलकठ मायासे मोरका रूप बनाकर नीलयशाके पास आया और वह पापी नीलयशाको कन्धेपर चढ़ाकर आकाशमे ले उड़ा । वसुदेव नीलयशाके विकुड़नेपर बडा विद्वल और दुखी होकर उसे बनमे हूँटने लगा, पर नील यशा उसे न मिलनी थी, न मिली । घूमते-घूमते रात हो गई । राजाने रात ग्वालोके यहां विताई, जिन्होंने उसे ठन्डा जल और अच्छा भोजन दिया ।

प्रानःकाल वसुदेव चलता-चलता दक्षिण दिशामे गिरतट यहरमे पहुचा । वेदपाठी ब्राह्मणोके वेदाध्ययनके शब्द से समस्त यहर और सब दिग्याए गूँज रही थी । बडे कीरुकसे राजा वसुदेवने एक मनुष्यसे पूछा कि क्या कोई दानी ब्राह्मणोको महादान दे रहा है, जो यहा इतने वेदपाठी ब्राह्मण इकट्ठे हुए हैं । उस मनुष्यने बताया कि इम यहर मे विश्वदेव नामके ब्राह्मणके यहा क्षत्रिय नाम-की वर्षपनीसे मनोहर और वेदविद्यामे प्रवीण एक विवाह योग्य अति सुन्दर कन्या सोमधी है । निमित जानियो ने बता रखा है कि जो वेदपाठी इसे वेदविद्यामे जीतेगा वही इसको व्याहेगा । इसलिए सोमधी को वेदविद्या मे जीतनेके लिये वे मब वेदपाठी ब्राह्मण यहां इकट्ठे हुए हैं ।”

यदुपनि यमुनेव उम मुन्दरी सोमधीका यश मुनकर उसे वेदविद्या मे जीतने को प्राप्तुर हो उठा । पर वेदविद्या उसे आती न

थी। इसलिए मालूम करके वह उस नगरमें सहा विवेकी ब्राह्मणविद्या के वेत्ता ब्रह्मदत्त अव्यापकके पास वेदविद्या पढ़ने गया। पहले तो ब्रह्मदत्त अव्यापकने उसे जैनधर्म के अनुसार भगवान् ऋषभदेवसे प्रारम्भ होनेवाली वेदविद्याके बारेमें बताया और फिर उसने ब्राह्मणोंके अनुसार वेदविद्या की उत्पत्ति बताई। राजा वसुदेवने ब्रह्मदत्त अव्यापकसे शीघ्र ही सब वेदविद्याएं सीख ली और सोमश्रीको विवादमें जीतकर उससे विवाह किया। वसुदेव और सोमश्रीका परस्परमें खूब स्नेह वहा और वे दोनों बड़े आनन्दसे रहने लगे। सोमश्री राजा वसुदेव की सगति से जिनराजकी महाभक्त बन गई।

वसुदेवकी विद्याएं सीखनेमें बड़ी रुचि थी। वह हरवात शीघ्र सीख लेता था। इन्द्रशर्मा व्यक्तिके उपदेशसे वसुदेव उद्यानमें रातको विद्या साधने लगा। कुछ धूर्तोंने उसे देखा और पालकीमें बिठाकर पिछली रातमें दूर जा डाला। वहासे चलता-चलता वह तिलक वस्तुक नगरमें पहुंचा। वसुदेव उद्यानमें भगवानके मन्दिरके समीप सो रहा था कि राक्षसीविद्याका साधक नरमासभक्षक वहा आपहुंचा। उसने वसुदेवको जगाकर कहा कि वह भूखा शेर है और शेरके मुहमें वह अपने आपही आगया है। महाशूरवीर वसुदेव और उसमें मुक्तोका भयकर युद्ध हुआ। वसुदेवने उसे पछाड़कर पाव तले दबा लिया। उस नरभक्षीने उससे प्राणदान मागे। वसुदेवने उससे फिर उस नगरमें न आने और वहासे चले जानेका वचन लेकर दया करके छोड़ दिया। वह कूरनरभक्षी वहासे दूर चला गया।

दिन निकलनेपर शहरके लोगोंने यह जानकर कि उस दुराचारी नरभक्षकको इस नवागन्तुक ने मारा है, वे वसुदेवको रथमें चढ़ाकर गहरमें ले गये। वहा शहरकी बहुत सी कुलवन्ती रूपवन्ती लड़कियों से उसका विवाह होगया।

वसुदेवने वहाके लोगों से पूछा कि यह नरमासका भक्षक दुष्ट कौन है और यह किस तरह नरभक्षी बना? तब नगरके कुछ

बडे-बूढ़ोंने बमुदेवसे कहा—“कर्लिंगदेशमें काचनपुर गहरमें राजा जितगत्रु था । वह अखण्ड आज्ञावाला और प्रजाका पालक था । उसके राज्यमें जीवमात्रकी हिंसा न होती थी । समस्त देशमें सबके लिए अभयदानकी आज्ञा थी, किसी जीवको कोई भय न था । राजाका पुत्र सौदास महापापी और मासभक्षक था । राजाने उसको बहुत धिक्कारा, पर वह सबसे छुपकर महलमें मास खाने लगा । महलमें एक दिन इसके लिए बने हुए मांसको बिलाव ले गया । तब रसोइये ने गहरसे बाहर जाकर एक मरेहुए बालकका मास बनाकर सौदासको खिलाया । उस स्वादिष्ट मासको खाकर सौदास बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने रसोइयेसे पूछा, सच-सच बताओ यह मास किसका है ? मैंने अनेक जीवोंके मास खाया है, परन्तु इसका सौवाभाग भी स्वाद उनमें न था । डरो मत, जो बात हो, वही कहो ।” रसोइयेने उसे बताया कि यह बालकका मास है । तब सौदासने उसे नित्य वैसाही मास पकानेको कहा । रसोइयेने राजकुमारको समझाया कि उसके पिताके राजमें यह काम नहीं हो सकता और राजकुमार और रसोइया दोनों मारे जायगे । पर वह राजकुमार न माना और चोरी-चिप्पे मृत बालक मगा-मगा कर खाने लगा । कुछ समय पश्चात् राजा जितगत्रु परलोक सिधारे और राजकुमार सौदास सिंहासन पर बैठा । अब राजकुमार और रसोइयेकी बन आई । रसोइयेने रसोइमें बच्चोंको लड्डू बाटे । किसी-न-किसी बालकको मारकर रसोइया राजकुमारके लिए मास बनाने लगा । इससे शहरमें बच्चोंकी हानि होने लगी । किसी प्रकार शहरके लोग इस रहस्य को जान गये और उन्होंने राजाको देशसे निकाल दिया । अब सौदास दिनमें तो बनमें रहता था पर रातको व्याघ्रके समान यहा आता था और जिनी न जिनी मनुष्यको खा जाता था । वह पापी लोगोंका नाशक किसीमें भी जीता न गया । आप महाशक्तिवान हैं, आपने उमे भगाकर हमारा बड़ा उपकार किया है ।”

जहरके लोग वसुदेवको वस्त्राभूषण और पुष्पमालाएं देकर उसको पूजने लगे ।

इसके पश्चात् वसुदेवने अचल ग्राममें समुद्रके एक बड़े व्यापारीकी लड़की बनमाला से विवाह किया । फिर राजा वसुदेव ने वेदसामपुर के राजा कपिलश्रुतको युद्धमें जीत कर उसकी राजकुमारी कपिला से विवाह किया । वसुदेवके यहा उससे कपिल नामका प्रसिद्ध पुत्र हुआ । वहा रहते हुए कपिलके भाई और अपने साले अश्रुमत से वसुदेवकी बड़ी प्रीति हो गई । एक दिन वसुदेव बनमें हाथी पकड़ने गया था । वहा नीलयशाका ममेराभाई-नीलकण्ठ विद्याधर जो नीलयशा न मिलने के कारण इनका शत्रु बन गया था, गध हस्तिका रूप धारण करके बनमें से वसुदेवको ले उड़ा । महायोद्धा वसुदेवने उस नीलकण्ठ मायामय हाथीको मुक्के मारे । इस पर उस हाथीने वसुदेवको ऊपरसे एक उद्यानमें एक सरोवरमें डाल दिया । वसुदेव बिना किसी व्याकुलताके सरोवरसे निकलकर गुहानामा पुरी में गया ।

गुहापुरीमें धनुर्विद्यामें प्रवीग पद्मावती राजकन्या थी । उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो उसे धनुर्विद्यामें जीतेगा वह उससे विवाह करेगी । वसुदेवने पद्मावतीको भी धनुर्विद्यामें जीतकर व्याहा । फिर वसुदेवने जयपुरके राजाको जीतकर उसकी पुत्रीसे विवाह किया ।

इसके पश्चात् वसुदेव अपने साले अश्रुमतके साथ भद्रलपुर गया । वहाके राजा पौण्ड्रके चारूहासिनी पुत्री थी । वह औषधियोके प्रभावसे पुरुषका रूप बना लेती थी । वसुदेवने उसे भी व्याहा । उससे सपौद्र पुत्र हुआ । एक रातको वासुदेव चारूहासिनी और पुत्र समेत सो रहे थे, कि अगारक विद्याधर हसका रूप बनाकर वसुदेव को ले उड़ा । वसुदेव और अगारक की लडाई हुई और अगारकने वसुदेवको आकाशसे गगामे डाल दिया ।

वहासे निकलकर प्रात् वसुदेव इलावर्द्धन नगर गया, जहाएक महाजनकी दुकानपर विश्राम करने बैठ गया। महाजनने भी सत्कारपूर्वक उसे बैठनेको आसन बिछा दिया। उस समय महाजन-को इतना लाभ हुआ, कि वह उसे पुण्यधिकारी समझकर अपने घर ले गया और उससे अपनी लड़की रत्नावती का विवाह कर दिया। ये वहा बड़े सुखसे रहने लगे।

इलावर्द्धनमे रहते हुए वसुदेव एक दिन महापुर शहरमे इन्द्रध्वज पूजा देखने गया। वहाँ उसने नगरके बाहर बहुत से महल देखे। वसुदेवने किसीसे पूछा कि वहा इतने महल क्यों बनाये गये हैं। तब उसने वसुदेवको बताया कि वहाके राजा सोमदत्तने अपनी राजकुमारीके स्वयंवर में आनेवाले राजकुमारोंके लिए ये मन्दिर बनवाये थे। पर वह राजकुमारी किसी कारण ससारसे विरक्त हो गई और आयिका बन गई। सब राजकुमार वापस चले गये। वसुदेवने उस बालब्रह्मचारिणी राजकुमारीको “धन्य धन्य” कहा।

वसुदेव बैठे-बैठे इन्द्रध्वज पूजा देख रहे थे कि राजा सोमदत्तकी रानी भी वहा इन्द्र-ध्वज पूजा देखकर महलको वापिस जा रही थी। उसी समय एक मस्त हाथी अपने बधन का थम्भ उच्चाङ्कर साधात मृत्युका स्वरूप बनकर मनुष्योंको मारता-मारता बहा आया। वहा बड़ा कोलाहल मच गया। स्त्रियोंके समूह डरसे उधन-उधर भागने लगे। एक लड़की हाथीके भयसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। यह दंगकार वसुदेव हाथीके सामने आडटा और सबकी रक्षा दरके उनने हाथीको बगामे कर लिया। वसुदेवने उस मूर्छित पड़ी जन्माऊं धैर्य देखा कर उठाया। वसुदेवके मुखदायक कर-स्पर्श और दर्शन ने वह नदकी नजा सी गई और विच्छिन्न हो गई। वसुदेव तो अपने स्वान दो वापिस चला गया और उसकी धाय और निकिया उस नदी को अन्त पुर ने गई।

उस नदीका नाम नोमध्री था। उसके पिताका नाम राजा

सोमदत्त, माताका नाम पूर्णचन्द्रा और भाईका नाम भूरिश्वा था। उसके स्वयम्बरमें अनेक राजा बुलाये गये। रातके समय सोमश्री अपने महल में बैठी सोच रही थी कि उसका पति कौन होगा। उसी समय उसे जाति-स्मरण हुआ। अर्थात् अपने पूर्व जन्मकी याद आ गई और उसे स्मरण हुआ कि इस जन्ममें भी उसके पूर्वजन्मका पति ही उसका पति वह व्यक्ति होगा जो उसे मस्तहाथी से बचायगा। सोमश्रीने यह समस्त बात अपने पिता सोमदत्तसे एक द्वारपालिनीसे कहलाई। राजाने द्वारपालिनीको वसुदेव का समस्त बात बताते और सोमश्री से विवाह करके लाने के लिए भेजा। इस बातको सुनकर वसुदेव बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने सोमश्रीसे विवाह किया।

वसुदेव और सोमश्री सुख से काल बिताने लगे। पर उनका यह सुखी जीवन बहुत दिन तक न चल सका। एक रात जब वसुदेव और सोमश्री सोरहे थे, एक विद्याधर सोमश्री को लेकर उड़ गया और अपनी बहन वेगवती विद्याधरी को सोमश्रीके स्थानपर छोड़ गया। जब राजा वसुदेव जागे तब सोमश्रीको वहां न पाकर व्याकुल होकर ‘सोमश्री, सोमश्री’ पुकारने लगे। सोमश्रीको रूपधारिणी विद्याधरी वेगवती बोली—“मैं आपकी अनुचरी आपकी सेवामें हूँ।” सोमश्रीके रूपमें वेगवतीको देखकर वसुदेवको वह साक्षात् सोमश्री ही लगी। तब वसुदेवने उससे पूछा, “हे प्रिये! तुम वाहर क्यों गई थी?” तब वह मायाचारिनी विद्याधरी सोमश्री के सट्टग बोलती हुई कहने लगी, “हे प्रभो!, मुझे महल में गरमी लगी इसलिए मैं बाहर चली गई थी।”

वेगवती विद्याधरी बड़ी कुशल और चतुर थी। उसने वसुदेवको सेवासे मोह लिया। वह वसुदेवके सोनेपर सोती और उसके जागनेसे पहले जाग उठती। वसुदेवको विद्याधरीके रहस्यका गुमान भी न हुआ। पर एक दिन वसुदेव किसी कारण पहले जाग उठा उसने अपनी पत्नी सोमश्री की शक्ति सूरत और रूप न देखे, वल्कि

वेगवती का और ही रूप देखा । तब वसुदेवने तुरन्त उसे जगाकर पूछा,—“सच वता तू कौन है और यहा इस तरह सोमश्री की तरह रहने का क्या प्रयोजन है ?”

इस पर उस मायाचारिनी विद्याधरी वेगवतीने प्रणामकर उत्तर दिया, ‘हे प्रभो !’ विजयार्द्धगिर की दक्षिण श्रेणीमें एक सुरनाथ नगर है । उसका राजा चित्तवेग विद्याधर है । उसकी रानी का नाम अगारवती है । उसके मानसवेग पुत्र और मैं वेगवती बेटी हूँ । एक दिन राजा चित्तवेग अपने लड़के मानसवेगको राजदेकर तप करनेके लिए वन में जाकर मुनि हो गया । मेरे भाई मानसवेगने आपकी रानी सोमश्रीको हरलिया और उसे अपने नगरमें ले गया । सोमश्री बड़ी पतिव्रता अपने शीलमें अखण्ड है । मेरे भाई ने मुझे सोमश्रीको प्रसन्न करने और उसे मानसवेगके प्रति अनुरक्त करनेके लिए उसके पास छोड़ा । पर मैं उस गीलवती म्त्रीको डिगानेमें असफल रही और अन्त में उमकी सखी वन गई । मैं उमके गील और सत्यके बग होगई । उसने मुझे सब वृतान्त कहने का आपके पास भेजा है । मैं कुंवारी और नवयुवती तो थी ही, आपवा न्प देखकर आपपर मोहित हो गई । चित्त की विनित्र गति है । यदि आप मुझे वेगवतीके न्पमें देखते, तो मुझे म्यर्झ न करते । इननिए मैंने न्यूय ही आपको वर लिया । मैं वहे कुलकी बेटी और कुवारी हूँ । अब आप मेरे पति और मैं आपकी पत्नी हूँ । जैसे आप नोमश्रीके पति हो, वैसे ही मेरे भी पति हो । ऐसा कहूँकर वेगवती विनष्ट होगई और आवें नीचे करली । फिर उसने सोमश्री के हृणां पूरा वृतान्त बनाया ।

नमन वान मुन कर यदुपति वहे गिन्न हुए, वयोकि सोमश्रीका प्रपञ्चरण और वेगवतीका अदत्तादान अर्थात् विनापिदात् आना दोनों त्री वाने अयोग्य और बुरी हुईं । पर अब क्या वन नाना था ? अब वेगवती अपने व्याली न्प में बनुदेव के साथ अग्निरेण फर्नी न्पमें रहते रहीं ।

वसन्त ऋतु आई । एक दिन कुमार वसुदेव और वेगवती महलमे सो रहे थे, तब वेगवतीका भाई दुष्ट मानसवेग जो सोमश्री-को हरले गया था सोते हुए वसुदेवको भी ले उड़ा । जब वसुदेवकी आखे खुली और उसने समस्त बात समझी, तब मानसवेगको मुक्के मार मार कर कम्पायमान कर दिया । मानसवेगने वसुदेवको नीचे फेंक दिया । वह गगामे जा पड़ा । वहा एक विद्याधर विद्या साध रहा था । सयोगसे वसुदेव उसके कधेपर आपडा । वसुदेवके प्रतापसे उसकी विद्या सिद्ध हो गई । उस विद्याधरने वसुदेवको प्रणाम किया और अपने नगरको चला गया ।

वहासे विद्याधरोंकी कन्या वसुदेवको विजयार्द्धमे नभस्थल नगरमे ले गई । वहा विद्याधर ही विद्याधर थे ।, वहा वसुदेवका बडे गाजेबाजेसे स्वागत किया गया, उसे फूलमालाए पहनाई गई । वहा वसुदेवका सास मदनवेगा राजकुमारी से विवाह हुआ । वे दोनो सुखसे रहने लगे । मदनवेगाने वसुदेवको इतना प्रसन्न किया कि एक दिन वसुदेवने उसे कोई वर मागनेको कहा । मदनवेगाने कहा कि उसका पिता शत्रुके बधन मे है, कृपा कर उसे छुड़ा दो ।

वसुदेव और त्रिशिंखर युद्ध

मदनवेगाने राजा वनुदेवसे वर मांगा था कि उसके पिता-को जत्रुके वन्धनसे छुड़ाओ । वसुदेव ने मदनवेगाके भाई अपने साले दधिमुखसे पूछा “तुम्हारा पिता किस तरह वन्धन में है और वह कैसे छूट सकता है ?” तब दधिमुखने वसुदेवको यह वृतान्त बताया “हे कुमार ! नभि विद्याधरके वशमें अनेक राजा हुए हैं । कई पीडियोंके पञ्चात् अरिजयपुरका स्वामी मेघनाथ हुआ । उसकी पद्मश्री कन्या थी । किसी निमित्तज्ञानीने राजाको बताया कि इस लड़कीका पति चक्रवर्ती होगा । नभस्तिलक नगरके राजा वज्रपाणिने मेघनाथसे पद्मश्रीको अनेक बार विवाहके लिए मागा, पर राजा मेघनाथने अपनी लड़कीका विवाह उससे न किया । इस पर वज्रपाणिने क्रोधमें आकर राजा मेघनाथसे युद्ध किया, पर वह विजय प्राप्त न कर सका और अपने नगरको छला गया । फिर राजा मेघनाथने केवली भगवानकी पूजा करके, उनसे पूछा—हे, प्रभो ! मैंगी पुत्रीका पति कौन होगा ?” उस पर केवलीकी ध्वनिमें अव्याहृति कि हर्मिननापुरके कुन्तव्यियोके राजा कात्यवीर्य महावद्वाननं कामयेनुकेन्द्रियमारदिया था और यमदग्निके पुत्र यमनजके समान कूर परशुरामने पिताके वैरी कात्यवीर्यको मार कर बदला लिया । इनना ही नहीं, परशुरामने रुद्र दार कोशमें धृत्रियोका नाश किया । जिम समय परशुरामने रात्यवीर्यको मारा, उस नमय कात्यवीर्यकी पत्नी गन्ती-तारा गन्तव्या थी । वह छृपदर निकल गई और वन में वाणिक नाम्बर नाम्बरों के बन्धमें याणके लिए गई । वहाँ वह निर्भय रुद्र रामे लगी और युद्ध भर्तीने पञ्चान् नागराजानीने युभ नक्षत्र-

मेरे आठवें चक्रवर्तीको जन्म दिया वही परशुराम को मारेगा। कौशिक तपस्वीके आश्रममेरानीताराने इस चक्रवर्तीको भूमिगृह मेरजन्म दिया था, इसलिए यह सुभूमि कहलाया। सुभूमि की माताको सदा यह भय रहता था कि कहीं परशुराम इस बालकको न मार दे, इसलिए उसने बड़ी सावधानीसे बालक को पाला। केवलीने राजा मेघनाथको बताया कि थोड़े ही समय मेरवह चक्रवर्ती सुभूमि तुम्हारी पुत्री पद्मश्रीका पति होगा। केवलीने यह भी बताया कि वह चक्रवर्ती इस समय तपस्वी के आश्रम मेरहै।

परशुराम क्षत्रियोंके लिए यमराजके समान था। सात बार उसने पृथ्वीको क्षत्रीरहित किया और आप उसका एकछत्र महाप्रतापी राजा बनकर उसका भोग किया है। सयोगकी बात है, कि ज्यो-ज्यो सुभूमि बड़ा हो रहा था, त्यो-त्यो परशुरामके घरमे अनेक उत्पात हो रहे थे। इस पर परशुरामने निमित्तज्ञानियोंसे इसका कारण पूछा। उन्होंने उसे बताया, “किसी स्थानमे तेरा शत्रु बड़ा हो रहा है।” इस पर परशुरामने पूछा कि उसे कैसे मालूम करू। इस पर निमित्तज्ञानियोंने उसे बताया “तुमने क्षत्रियोंके बड़े समूह मारे हैं। जिसके भोजन करने पर मरे हुए क्षत्रियोंकी दाढ़े दूध बन जाय, वही तुम्हारा शत्रु होगा।” परशुरामने अपना शत्रु जाननेके लिए क्षत्रियोंकी दाढ़े इकट्ठी कराई और दानगालामे रखवाई। जब भोजन करने वाले आते थे, परशुराम उनको डाढ़ोसे भरे पात्र दिखाता, पर किसीके देखनेसे कुछ न हुआ।

मेघनाथ केवली से यह बात सुनकर उन्हे नमस्कार कर तपस्वीके आश्रममे गया और वहाँ सुभूमिको देखा। इस समय सुभूमि शस्त्र और गास्त्र सबसे प्रवीण और अपने प्रतापसे सूर्यके समान बहुत देवीपत्मान दिखाई दे रहा था। मेघनाथ सुभूमिको देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और एकान्त मेरउससे समस्त बात कही। और बताया—“तुम ही परशुराम शत्रुको नाश करने वाले हो। अब तुम उद्यम करो।” मेघनाथ और सुभूमि क्षत्रियशत्रु-

परशुरामके घरमे आये । वहा दानगालाके अधिकारियोने सुभूमि-
को आसन पर विठाकर क्षत्रियोकी दाढे दिखाई । सुभूमिके प्रभाव-
से वे दूध वनगये । इसपर भोजनशालाके अधिकारियोने तुरन्त
जाकर परशुरामको बताया कि तुम्हे मारनेवाला प्रकट हो गया है ।
परशुराम ब्रटसे हाथमे अपना फरसा लेकर सुभूमिको मारने आया ।
सुभूमिके हाथमे भोजनका जो थाल था, वह मुदर्शन चक्र बन गया ।
और सुभूमिने उससे परशुरामको मार दिया ।

तब मेघनाथ विद्याधरने अपनी पुत्री पद्मश्रीका विवाह
मुग्निसे किया । क्षमा और मित्रताभाव न होनेसे कार्त्यवीर्य
द्वारा जमदग्नि, परशुराम द्वारा कार्त्यवीर्य और बहुतसे क्षत्री और
सुभूमि द्वारा परशुराम मारे गये । यदि ये क्षमासे काम लेते और
मवके प्रति द्वेषभाव के स्थान पर मित्रताभाव रखते, तो न यह
जन्मता वहती और न व्यर्थ इतने गूरवीर ही मारे जाते ।”

राजा वसुदेवको मदनवेगाके भाई दधिमुखने बताया—“इसी
वथमे उसका पिता विद्युदवेग राजा हुआ । एक दिन विद्युदवेगने
अवधज्ञानी मुनिसे पूछा—“भगवन् ! मेरी पुत्री मदनवेगाका पति
कौन होगा ?” नव मुनि ने उससे कहा—“गगामे चण्डवेग नामका
विद्याधर विद्या साध रहा है । रातके समय जो आदमी चण्डवेग
के कथेपर चढ़ेगा उससे चण्डवेगकी विद्या सिद्ध होगी और वही
तेगी पुत्री मदनवेगाका पति भी होगा ।” मुनिकी यह बात सुनकर मेरे
पिताने गगाके किनारे आपको गगामे चण्डवेगके कन्धो पर
पाठनेपर आपसे मदनवेगा विवाहकी । पर नमस्तिलक नगरके धनी-
गाजा त्रिनिगर विद्याधरने अपने वेणेकेलिए मदनवेगा को मागा,
परन्तु मेरे पिताने यह बात न मानी । नव त्रिनिगरने युद्धमे मेरे-
पितातो पराकर केदगानेमे डान दिया । अब आप अपने द्वयमुखको
खुलाने का उपाय कर । सुभूमि चक्रवर्णनि हमारे वडोपर छूपा
कर त्रिनिगर के नेतृ यश दिये थे, आप उनको लेकर द्वयुओंको
मिने, आमे माँ दधिमुख ने अपने द्वयमुख विद्युदवेगा के बन्दी

होनेकी समस्त बात सुनकर राजा वसुदेव श्वसुरको छुडानेकेलिए त्रिशिखरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया । दधिमुख और चण्डवेगने वसुदेवको अनेक प्रकारके शक्तिशाली महाघातक दिव्यअस्त्र दिये, जैसे ब्रह्मयथ आग बरसाने वाला अग्नेयअस्त्र, बरुणाअस्त्र जो जोर की वर्षा करे, और वायु चलानेवाला अस्त्र दिये । बाधनेवाले अस्त्र और बन्धन छुड़वानेवाले अस्त्र भी वसुदेवको दिये गये । वसुदेव अनेक प्रकारकी सेना तैयार कर श्वसुर परिवारके अनेक योद्धाओंको साथ लेकर त्रिशिखरसे युद्ध करनेको तैयार हो गया ।

अपने ऊपर आक्रमण होनेकी सम्भावनाका समाचार पाकर त्रिशिखरने अपने नगरसे चलकर नभस्थलपर चढाई कर दी । राजा-वसुदेव यह बात सुनकर बड़ा हर्षित हुआ कि शत्रु स्वयं ही विना बुलाये उनपर चढ़ आया । इधरसे वसुदेव श्वसुर कुलकी सेनाको लेकर त्रिशिखरसे लडनेको उसके सामने जा डटा । राजा वसुदेव तेज घोड़ोके रथ पर सवार था । और उनका साला दधिमुख स्वयं उनका सारथी बना । दोनों तरफ प्यादे, घुड़सवार और हाथी-सवार शूरवीर योद्धा थे । शस्त्रों की चमक के सामने सूर्यकी-किरणे मन्द पड़ गईं । हाथी घोड़ोके पावकी गर्दसे आकाश आच्छादित होगया । मारुवाजोंकी ध्वनिसे आकाश गूंज उठा ।

दोनों सेनाओंमें लडाई आरम्भ हो गई । शुरू में साधारण-शस्त्र चलाए गए । वाणोंसे अपने सामनेके योद्धाओंके वक्तरवन्द छेदे गए, हृदय भेदे गए, सिर काटे गए, पर उनके चढ़मा समान उज्ज्वल यशको न भेदा जा सका । सुभट्टोंने अपने सिर तो देक्किए, पर अपने यशको न जाने दिया । तलवारोंकी मारसे बड़े योद्धा रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हुए, पर उन्होंने न तो पीठ दिखाई और न अपने प्रताप को ही जाने दिया । शस्त्रोंकी मारसे महाज्ञानी शूरवीरोंकी आखे भ्रम में पड़गई, परन्तु उनके मनमें भ्रम पैदा न हुआ ।

राजा वसुदेवके साथी योद्धा चण्डवेगने त्रिशिखरके कई '

गूर्खीर पुत्रोको मारकर खेत किया। पहले साधारण शस्त्रोसे युद्ध हुआ, पर जब उनसे लडाई समाप्त न हुई, तो दोनों तरफसे दिव्य अस्त्रोसे युद्ध होने लगा। पहले राजा वसुदेवने त्रिगिखरपर आगनेय अर्थात् आग लगाने वाला अस्त्र छोड़ा। त्रिशिखरने उसके मुकावलेमें वारुणअस्त्र चलाया, जिसने पानीकी वह वर्षाकी कि ममम्न आग कुझ गई। त्रिगिखरने वसुदेवपर मोहनी अस्त्र चलाकर उसे मोहित किया। उसके प्रभावको दूर करनेके लिए वसुदेवने चित्तप्रसादअस्त्र चलाया, जिससे मोहनी समाप्त हो गई। इस प्रकार अस्त्र पर अस्त्र पर चले अन्तमें वसुदेवने माहेन्द्र अस्त्र चलाया और त्रिगिखरके सिरको छेद दिया, शत्रु राजा त्रिगिखरका मरना था कि उसकी सेनामें भगदड मच गई। और राजा वसुदेव की विजय हुई।

तब राजा वसुदेवने अपने गूरखीर योद्धाओंके साथ त्रिशिखरग्नी राजधानी नमस्तिलकमें प्रवेश किया और वहासे अपने श्वन्तुर विद्युवेगको वन्धनसे मुक्त किया। इस विजय और दीन्तापूर्ण कामसे वसुदेवके यज्ञको चार चाद लग गये और वह वहानमें इसरे राजाओंको जीतकर अधिपति बन गया।

राजा वसुदेव : वेगवती मिलन

त्रिशिखरको पराजित करनेके पश्चात् वसुदेव रानी मदन-वेगाके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे । उनके यहा महारूपवान् और अतिवली एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अनाव्रत था । यह पुत्र महाविवेकी और बुद्धिमान हुआ ।

एक दिन सब विद्याधर अपनी स्त्रियों सहित सिद्धकूट चैत्यालयकी बन्दनाके लिए गए । राजा वसुदेव भी मदनवेगाके साथ वहा गया । वहा विद्याधरोंने बड़े भवितभावसे प्रभुकी पूजाकी और अनेक शृगार करके अपने-अपने स्तम्भोंसे लग कर बैठ गए । वे विद्याधर भिन्न-भिन्न जातियोंकेथे । उनके रूप-रग और शृगार आदिको देखकर वसुदेवने मदनवेगासे उन विद्याधरोंका परिचय पूछा । तब मदनवेगाने वहा उपस्थित सभी विद्याधरोंकी जातिया बताई ।

कुछ देरके पश्चात् सभी विद्याधर अपने-अपने स्थानोंको लौट गए । वसुदेव भी मदनवेगा सहित वापस आगया । एक दिन वसुदेवने मदनवेगाको वेगवती नाम लेकर पुकारा । राजा वसुदेवकी-रानी वेगवतीका वर्णन पहले बताया जा चुका है । मदनवेगा वेगवतीका नाम सुनकर ईर्ष्यसे कुद्ध होकर घर में बैठ गई और राजा के पास न गई । उसी समय राजा त्रिशिखरकी विधवा स्त्री सूर्यनखा ने मदनवेगा का रूपबनाकर छलसे राजा वसुदेवसे 'हा' कहा । पर उसी समय सूर्पनखा को आकाश में वसुदेवका शत्रु मानसवेग दिखाई दिया । सूर्पनखाने यह जानकर कि यह वसुदेवका मारने वाला शत्रु है, वसुदेवको उसे सौंप कर वह उड़ गई । और मानसवेगने उनको आकाशसे नीचे डाला और वह तिनकोके ढेरपर पड़ा और उसे कोई चोट न लगी ।

वसुदेवने वहा लोगोंके मुहसे जरासधका यत्तगान सुना और उसे मानूम हुआ कि यह राजगृह नगरहै। वह नगर में गया और वहा जुएमें एक किरोड़ दीनार जीते और उनमें से एक कौड़ी भी अपने पास न रखकर सब दान कर दी। उस समय किसी निमित्त-जानीने जरासधको बताया कि जो आदमी ऐसा उदार दानी होगा, उसका पुत्र तुम्हारा धातक होगा। यह सुन कर जरासधने चूनक्रीड़ाके स्थानमें अपने नौकर विठाए, जिन्होने वसुदेवको एक खालमें डानकर पहाड़से नीचे डाला, ताकि वह तत्काल मर जाय। तभी वसुदेवकी पत्नी वेगवती वहा आपहुंची और उसे खाल समेत लेचली। तब वसुदेवने जाना कि यह वेगवती है और चिन्तित हुआ कि जैसे पक्षी सेठ चार्दत्तको ले उड़े थे, वैसे ही मुझको भी ले जा रहे हैं और मुझे कटोकी कमी न रहेगी। उसने सोचा “सार में वन्धुजन, भोगसम्पदा और शरीरकी काति सब दुखदायक हैं। परतु प्राणी इस बातको समझता नहीं। आदमी जो पुण्य-पाप करता है, उनके फलको भोगनेवाला यह प्राणी स्वय अकेला ही है, उसमें दूसरा कोई उसका साजीदार नहीं है, यह आदमी अकेला जन्म लेता है और अकेना मरना है। कोई इसका माथी नहीं है। फिर भी यह जीव वृथा कुटुम्बका अनुराग करता है। न यह किसीका है और न कोई इसका है। वास्तव में वे धीर पुष्प मुखी हैं, जिन्होने आत्म-कल्याण किया है और जो भमस्तु भोगोपभोगको त्यागकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होते हैं। हम मरीचे आदमी भोग-तृष्णा सूपी लहरमें दूबे हुए पापकर्म करनेवाले सार ममूद्रमें बागवार झकोले खाते हैं। यह भगान्गमद्र दुन्ह स्प जल में भग है, इसमें मुख नामको भी नहीं है।”

उस नहीं गोचना हुआ ममुद्रविजय का बोर भाई वसुदेव शेषवरीने न्यान पर पहुंच, जहाँ उसमें वसुदेवको न्यानमें बाहर निकाला। विन्दमें दुर्गा वेगवती अपने पनि वन्देवने बहुत गगय है परन्तु मिलार्द प्रद्युम्न कर रहे ने लगी। तब वसुदेवने उने

प्यार से छातीसे लगाया और विछड़े हुए पति-पत्नी मिलकर बहुत सुखी हुए। वसुदेवने उससे पिछली सब बाते पूछी। वह कहने लगी—“जब आपको गत्रु ले उड़ा, तब मैंने पहाड़ की दोनों श्रेणियों में सब बनो और नगरोंमें आपको ढूढ़ा। फिर समस्त भारत क्षेत्रमें तलाश किया, पर कहीं आपको न पाया। तब ढूँढते-ढूँढते मैंने आपको मदनवेगाके पास देखा। पर मैंने यह नहीं चाहा कि आपको उससे अलग करूँ। फिर त्रिशिखर की विधवा सूर्पनखा ने आपको हरा, क्योंकि आपने उसके पतिको युद्धमें मारा था। वह आपको मारना चाहती थी, पर उसने आपको आपके गत्रु मानसवेगको सौंप दिया। उसने आपको आकाश से नीचे डाल दिया और आपको जरासिन्धके सेवको ने खालसे बन्द करके पहाड़ से नीचे डाल दिया। वहासे मैं आपको ले आई। अब हम हीमन्त पर्वत पर हैं और यहा पचनन्द तीर्थ हैं।

वसुदेवने वेगवतीसे सब वृत्तान्त सुनकर बड़ा आश्चर्य किया। उन दोनों को साथ रहते थोड़े दिनही हुए थे कि एक दिन राजा वसुदेव हीमन्त पर्वतपर अपनी इच्छासे घूम रहे थे। वहा उसने किसी विद्याधरकी एक रूपवती कन्या नागपाशसे दृढ़ वधी देखी। तब राजा वसुदेवने बहुत दया करके उसे नागपाशके बधनसे छुड़ाया। लड़कीने कृतज्ञता भावसे उसे नमस्कार करके कहा “हे नाथ, आपकी कृपा से मुझे विद्यासिद्ध हुई है, इसलिए आप मेरे पति हो। मैं गगनवल्लभनगर में राजा विद्युदप्ति के वग में एक राजाकी बालचन्द्रा राजकुमारी हूँ। मैं नदीके किनारे पर विद्यासिद्ध कर रही थी कि एक विद्याधरने मुझे नागपाश से बाध दिया। उससे आपने मुझे अब छुड़ाया है। पहले हमारे वगमें केतुमती नामकी एक राजकुमारी भी इसीभाति विद्या सिद्ध करती हुई किसी विद्याधरके द्वारा नागपाश में बाधी गई थी, जिसे पुण्डरीक नामके अर्द्धचक्री पात्रवे नारायणने बधनमुक्त किया था। वह केतुमती पुण्डरीक की धर्मपत्नी हुई। वैसे ही मैं भी आपकी पत्नी

अवश्य होऊगी । हे नाथ ! जो विद्या मैंने सिद्ध की है, वह देवोंको भी प्राप्त होनी दुर्लभ है । इसलिए आप इसे स्वीकार करे ।” पर वसुदेवने वह विद्या स्वयं न लेकर उसे बेगवतीको देनेका आदेश दिया । इस आदेशको पाकर वालचन्द्रा आकाश मार्गसे बेगवतीको अभने नगर गगनबलभ मे ले आई और उसे अपनी विद्या देकर निःचित हुई ।

रानी रामदत्ता का न्याय

श्रीगौतम गणधरसे राजा श्रेणिकने पूछा “हे प्रभो ! विद्युदष्ट् विद्याधर कौन था और उसकी क्या कथा है ?” तब गौतम गणधरने कहा—“गगन वल्लभ नगरमें नमिवशमें विद्युदष्ट् पराक्रमी राजा था । एक दिन पश्चिम विदेहसे एक मुनिको लाकर उसने उसको बड़ा कष्ट दिया ।” इस पर राजा श्रेणिकने मुनिको कष्ट देनेका कारण पूछा ।

श्रीगौतम गणधरने कहा—“इस जम्बवटीपमें पश्चिम विदेहमें गधमालिनी देशमें वीतशोका नगरमें राजा वैजयत रहता था । उसकी रानी सर्वश्री लक्ष्मीके समाग महामनोज्ञ रूपवान थी । राजा के दो पुत्र सजयत और जयत थे । एक बार तीर्थकर स्वयम्भु विहार करते-करते वीतशोका पुरी आये । राजा वैजयन्तने दोनों पुत्रों सहित तीर्थकरका उपदेश सुना और साधु बनकर उनके साथ घूमने लगा । वह मोक्ष पा गया । छोटा पुत्र जयत भी पिताके तपको देखकर मुनि बन गया । तप करके उसने देव जन्म पाया । बड़ा राज-कुमार सजयत भी मुनि बन कर वीतशोका पुरीके समीप शमशानमें सात दिनका कठोर तप करने लगा । एक दिन विद्याधर विद्युदष्ट् अपनी स्त्रियो सहित भद्रशाल बनमें घूमफिर कर गगन वल्लभ नगर को लौट रहा था । सजयत मुनिको देखते ही वह पूर्वजन्मकी शत्रुताके कारण मुनिसे क्रुद्ध होगया और अपनी विद्याके बलसे उसे उठा लिया । उस विद्याधर के सजयत को विजयार्द्ध की दक्षिण-श्रेणीके पास वरुणागिरि के पास हरिष्वती चण्डवेगा, गजवती, कुसुमवती और सुषर्णवती पात्र नदियोंके सगमपर मुनिको रातमें छोड़ा । विद्याधर घर जाकर प्रात काल बहुतसे विद्याधरोंको इकट्ठा

करके कहने लगा—“आज रातमें मुझे एक स्वप्न आया है कि एक राक्षस हम सबको नष्ट करने आया है। इसलिए आप इकट्ठे होकर उसे मार डालो।” ऐसा कहकर वह विद्युदष्ट्र विद्याधर सब विद्याधरोंको सजयत मुनिके पास ले जाकर उसे कष्ट देने लगा। मुनियों पर जब कष्ट आता है, वे योगसे समाधि लगा लेते हैं। कष्ट टल जाय तो अच्छा, वरना वे उस कष्टको शातिसे भेलते हुए प्राण त्याग देते हैं। सजयत मुनिने इस कष्ट में प्राण देकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इसी समय अन्तकृत केवली हुए थे। उनकी पूजाके लिए धरणीन्द्र देव आया। पर जब उसने विद्याधरोंके द्वारा सजयत मुनिको कष्ट दिये जानेकी बात सुनी, तो वह उनसे बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने उनको नागपाशमें बाध कर, उनकी विद्या छीन ली और उन्हे समुद्रमें डुवानेको तैयार हो गया। उस समय सातवें—स्वर्ग का स्वामी लान्तवेन्द्र आकर धरणीन्द्र से कहने लगा, तुम इतने जीवोंकी हिंसा मत करो। तुम्हारी, मेरी, विद्याधर विद्युदंष्ट्र और मुनि सजयत उन चारों में परस्पर गतुता है और ये ससारमें भ्रमण कर रहे हैं। यह कहानी लान्तवेन्द्र देव धरणीन्द्र से इस प्रकारमें कहने लगे।

“इम भरत द्वेरामें प्रसिद्ध शक देश सिद्धपुर नगरमें सिंह-सेन राजा और उसकी रामदत्ता रानी रहते थे। राजा और रानी नमन्न कलाओंमें निपुण थे। उनके यहां निपुणमती नामकी धाय बड़ी निपुण थी। राजा मिहमेन का पुरोहित श्रीभूति था। उस पुरोहितने अपने आपको नव्यवादी और निर्लोभी प्रसिद्ध कर रखा था। पर था वान्नव में वह बड़ा भूया, महालोभी और ठग। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था। दुष्ट श्रीभूतिने जगतको ठगनेके लिए नगरके चारों ओर पाठ्यानाएँ अर्थात् धरोहरधर खोले। जगत में श्रीभूति-के नामकी न्याति थी, इनलिए उसके विद्यामसे दूर-दूर से आकर पोग उसके पाग घरोहर रखते थे।”

धरणीन्द्र ने पूछा, “फिर क्या हुआ ?” लान्तवेन्द्र देवने उसे आगे बताया, “पद्मखण्ड नगरके सुमित्र वनियेने सिंहपुरमें आकर श्रीभूति पुरोहितकी माडशालामें पाच बहुमूल्य रत्न धरोहर रखे । फिर वह सुमित्रदत्त वणिक व्यपारकी तृष्णासे प्रेरित होकर जहाजमें समुद्र यात्रा पर गया, परन्तु दैवयोगसे उसका जहाज फट गया और उसका सब माल झूब गया, परन्तु सौभाग्यवश सुमित्रदत्त बच गया । उसने सिंहपुर आकर श्रीभूति पुरोहित से अपन बहुमूल्य पाच रत्न लौटानेको कहा । पर वह पुरोहित तो महा ठग और भूठा था । उसने धरोहर से इन्कार कर दिया और सुमित्रदत्त वणिक को वहाँ से खेद दिया । नगर में पुरोहित तो सत्यवादी प्रसिद्ध था ही, सबको उसकी बात का विश्वास था । किसी ने भी उसे झूठी न कहा, उलटा सब वणिकमें ही दोष निकालने लगे । इतना ही नहीं, चालाक पुरोहित श्रीभूति ने उस वणिकके बारेमें यह प्रसिद्ध कर दिया, कि समुद्रमें जहाज झूबनेके कारण यह वरडाता, कुछ-कुछ बहकता है । फल यह हुआ कि जहा कहीं सुमित्रदत्त जाकर अपनी बात कह कर न्यायकी माग करता, वहीं सब लोग पुरोहितकी बोली बोलते और वणिकको भूठा कहकर धिक्कार देते । कहीं भी उसे न्याय न मिला ।”

धरणीन्द्र देव ने बहुत चकित होकर पूछा, फिर उस सुमित्र-दत्त वणिकने क्या किया ?”

इस पर लान्तवेन्द्रने धरणीन्द्र देव को आगे बताया, “जब सुमित्रदत्त सब जगह न्याय न मिलनेसे निराश होगया, तब उस दरध हृदय वणिकने अन्तमें राजाके हा दुहाई देने की सोची । वह राजभवनके समीप एक ऊचे वृक्षपर चढ़ कर जोर-जोरसे पुकारने लगा, राजा सिंहसेन महा दयावान और न्यायी है । रानी रामदत्ता बड़ी दयावन्ती है । इस नगरके सभी लोग भी भले हैं । मेरी बात सुनो और न्याय करो । इसी महीनेके कृष्ण पक्षमें मैंने श्रीभूतिको ईमानदार और सत्यवादी समझकर अपने पाच बहु मूल्य रत्न धरोहर रखे थे । पर वह महा लोभी पुरोहित मेरे रत्न देना नहीं

चाहता, उलटा मुझे ही झूठा बताता है।” इस प्रकार सुमित्रदत्त को प्रातः दुपहर और सायकाल पुकारते-पुकारते कई दिन बीत गये, पर किसीने उसकी बात पर ध्यान न दिया। एक दिन रानीको उस पर दया आगई और वह राजा से कहने लगी, “हे महाराज, पृथ्वी पर सबल और निर्बल सभी हैं। यदि राजा न्याय न करे, तो निर्बलोंकी बलवानोंसे कैसे रक्षा हो? इस दुर्बल वणिकके रत्न पुरोहितने ठगे हैं, आप न्यायवान और दयावान हैं, इस लिए इसके रत्न दिलवा दीजिये।” पर राजाने रानीसे श्रीभूति पुरोहितकी बात दुहराते हुए कहा कि जहाज फट जानेसे धनके नष्ट होनेके कारण यह पागल सा हो गया है। वृथा चिल्ला रहा है। रानीने कहा, “महाराज! जो बैठा होता है, वह कभी कुछ कभी कुछ कहता है। परन्तु यह तो सदा एक ही बात कहता है। एक तो इस का समुद्रमें धन गया, दूसरे पुरोहितने इसके रत्न दबा लिए, इसलिए यह बहुत दुखी है। आप इसका न्याय करे। रानीके कहनेपर राजाने एकान्त में श्रीभूति पुरोहितसे रत्नों के बारे में पूछा, पर वह साफ नहीं गया। तब राजाने रानीको ही न्याय करने का काम सींपा। रानी बड़ी चतुर थी। उसने राजा से कहा कि आप श्रीभूति पुरोहित को जूँड़े में लगाले, और वह न्याय का सब काम कर देंगी।

रानी रामदत्ताने अपनी चतुर धाम निपुणमती को पुरोहित की स्त्री श्रीदन्ता के पास पांचों रत्न लानेको भेजा, पर उसने अपने पतिको आदेश अनुसार उसे यह कहकर कि वह उसे क्या जाने, उसे रन्न न दिये। तब रानी ने पुरोहितका जनेऊ जूँड़ेमें जीता और धाम को जनेऊ देकर पुरोहितनी के पास रत्न लेने भेजा। पर फिर भी उसने रन्न न दिये। अब अन्त में रानी ने पुरोहित की नाम श्री अंगूष्ठी जूँड़े में जीत कर धामको नियानीके तौर पर देकर पुरोहितनीसे रन्न लाने भेजा। उग बार धाम रत्न नानेमें सफल हो गई। उसने रन्न रानी को दिये लांबे रानी ने राजा को दे दिये।

फिर राजाने उन रत्नोंको दूसरे रत्नमें मिलाकर उस सुमित्रादत्त वणिक से अपने रत्न पहचानने को कहा । सुमित्रादत्त ने उनमेंसे अपने रत्न तुरन्त पहचान लिये । इस पर राजा उससे बड़ा प्रसन्न हुआ, उसका बड़ा मान आदर किया और उसे राजामान्य बनाया । राजाने उस दुष्ट ठग पुरोहित श्रीभूति को तीन दण्डों में से एक दण्ड स्वीकार करनेको कहा । या तो वह अपना सब धन दण्डमें राजाको दे या गोवर के तीन थाल खाये या पहलवान की मुट्ठीके प्रहार सहे । श्रीभूति पुरोहितने अन्तिम दण्ड पाना स्वीकार किया । परन्तु पहलवानके मुक्कोंसे उसकी मृत्यु हो गई और उसने बुरे विचारोंके फलस्वरूप मरकर राजाके भण्डार में गधमादन जातिके सापका जन्म लिया और राजाका द्वोही बन गया । राजा सिंह सेन ने श्रीभूति पुरोहितके स्थानपर एक और ब्राह्मण धम्पिल-को राजपुरोहित नियुक्त किया । पर वह नया पुरोहित भी अनर्थ करनेमें लग गया ।

पाचरत्नों का स्वामी वणिक सुमित्रदत्त अपने पदमखण्ड नगर लौट आया । वह जैन धर्म का पवका अनुयायी बन गया और उसने बहुत धन कमाया । उसने यह इच्छा भी की कि मर कर वह रामदत्ता रानीका राजकुमार हो । पर उसकी पत्नी सुमित्रदत्ताको उसकी इच्छा से विरोध था, इसलिए वह मर कर दूसरे जन्ममें व्याघ्री हुई । जब वह वणिक सुमित्रदत्त एकदिन साधुओंके दर्शनके लिए पर्वत पर गया, वहा उस व्याघ्रीने उसको मार कर खा लिया और वह वणिक रानी रामदत्ताके हां सिंहचन्द्र नामका पुत्र जन्मा । रानीको सिंह चन्द्रसे बड़ा प्रेम था । रानीके हां दूसरा पुत्र पूर्णचन्द्र पैदा हुआ । ये दोनों राजकुमार सूर्य-चन्द्रके समान चमकने लगे । एक दिन राजा सिंह सेन अपने भण्डारमें गया । वहा श्रीभूति पुरोहितके जीव साप ने उसको डस लिया । विष दूर करनेके लिए गरुडन्त्रके जाननेवाले गरुडदत्तको बुलाया गया । उसने अपने मन्त्र-बलसे गध मादन जातिके सब सापोंको वहा बुलाया । गरुडदत्तने

अपराधी सापके अतिरिक्त सभी दूसरे सापोको वहासे जानेका आदेश दिया । अपराधी साप वहा रह गया । गरुडदत्तने उस सांप को कहा, “हे दुष्ट ! तू अपना विष शीघ्र खीच या अग्निमे प्रवेश कर ।” पर राजा सिहसेन के प्राणोके हर्ता उस सापने अग्निमे प्रवेश करना तो स्वीकार किया, पर राजाका विष न खीचा । अग्निमे भस्म होकर उस सापने चमरी मृगका जन्म लिया और राजा सिहसेत मर कर गल्लकी बन मे हाथी हुआ और वह धम्पिल राजपुरोहित उसी बन मे बन्दर हुआ ।

राजा सिहसेन की सापके डसने से मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा पुत्र सिह चन्द्र राजा सिहासन पर बैठा और पूर्णचन्द्र युवराज बना । दोनो भाई समस्त प्रजा को मुख से पालने लगे । यह सब कथा लान्तवेन्द्र देवने घरणीन्द्र को सुनाई ।

गजा सिहसेन का श्वसुर और रानी रामदत्ताके पिता पोदनपुर के राजा सुपूर्ण था और उसकी रानी का नाम हिरण्यवती था । वे दोनो राजा रानी जैन धर्मके बहुत भक्त थे । राजा सुपूर्ण मुनि राहुमद्र से दीक्षा लेकर मुनि बन गया और रानी हिरण्यवती भी मध्यकी एक माध्वीके पाम आर्यिका बन गई । रामदत्ता की माता आर्यिका ने अपने पति मुनि से राजा सिहसेन और वणिक नुस्मिधन वी कथा मुनी । उसे मुनि से यह जानकर बडा आश्चर्य हुआ कि गजा मिह सेनकी मृत्युके बाद जब सिहचन्द्र राजा बन गया, तब भी पुत्र मोह को छोड़कर रामदत्ताको बैराग्य न हुआ इन्तिग्र वह अपनी पुत्री विधवा रानी रामदत्ता को सम्बोधने और यैगम्य नार्ग अपनानेको कहने गई । रानी भी सा बी बन गई और निह चन्द्रने भी नगान्मे विश्वन होल्ल स्वामी राहुमद्रसे मुनि दीक्षा ले ली । अब उन्होंना भाई पूर्ण चन्द्र राजा बन गया । दूसरी अपने प्राक्कर्मने नव शशुओंको वशमे कर लिया, पर उस रामदत्त और इनके नात्न होने के आग्न विषय भोगो मे लीत दी गया ।

संजवंतस्वामी

जन्म जन्म के सम्बन्ध

मुनि सिंह चन्द्रने तप करते-करते चारण ऋद्धि पाई और उन्हे अवधिज्ञान हो गया। तब आर्यिका रामदत्ताने स्वामी सिंह चन्द्रको नमस्कार करके अपने, अपनी माता और अपने पुत्रके पूर्व जन्मोकी कथा पूछी।

स्वामी सिंह चन्द्रने उनके पूर्व जन्मो की यह रोचक कथा सुनाई —

“इस भरत क्षेत्रमे कौशल देशमे वर्द्धक शहरमे मृगायण ब्राह्मण था। उसकी दो पुत्रिया मधुरा और वारुणी थी। वारुणी इतनी रूपवती और मदमई थी कि अविवेकी लोग उसे देखते ही विह्वल हो जाते थे। मरने के पश्चात् ब्राह्मण मृगायणके जीवने अयोध्या नगरमे राजा अतिबलकी रानी श्रीमतीके पुत्रीका जन्म लिया और उसका नाम हिरण्यवती रखा गया। वह हिरण्यवती इस जन्ममे तेरी मा थी और पूर्वसे जन्ममे तेरा पिता था। और ब्राह्मण मृगायणकी बड़ी बेटी मधुरा, मरने के पश्चात् रामदत्ता हमारी मा हुई और छोटी बेटी वारुणी मर कर उसी बन मे बन्दर हुआ। उसने क्रोधसे कुर्कट सापको मार दिया। वह साप जो वास्तवमे श्रीमूतिका जीव था मरनेके बाद तीसरे नर्कमे गयी। और जगराजके दातोको हाथीदात और मोती शृगालपत भीलने थनमित्र वणिकको वेचे, जिन्हे उसने राजा पूर्ण चन्द्रको वेच दिया। वह राजा वणिकसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। राजाने हाथी दातका सिंहासन बनवाया और मोतियोका हार बनवाया। राजा पूर्ण चन्द्र उस

सिहासन पर बैठता है और हारको पहनता है । हे माता ! ससार की विचित्रता और कर्मोंका फल देखो । कौन कहा से कहां जन्म लेता है ।” आर्यिका रामदत्ता स्वामी सिह चद्रसे यह समस्त वृत्तात् मुनकर महाप्रमादी राजा पूर्ण चन्द्र के पास आई और उसे धर्मोपदेश देकर श्रावकके व्रत दिये ।

मृत्युके पश्चात् राजा पूर्णचन्द्र का जीव उसी स्वर्गमे देव पैदा हुआ जहा राजा सिह सेव का जीव गज की योनि से दान, पूजा, तप और शीलके पालनसे गया था । रामदत्ता आर्यिका भी व्रतो के प्रभावसे उसी स्वर्गमे सूर्यप्रभ नामका देव हुई और सिह चन्द्र मुनि अहिमन्द्र देव हुआ ।

रानी रामदत्ताका जीव सूर्य प्रभ देव वहासे विच्छार्द्ध की दक्षिण श्रेणी मे धारिणी तिलक्र नगरमे अतिवल राजा की सुलक्षण गनी के श्रीधरा पुत्री हुई । इस सूर्य प्रभ देवके जीवका स्त्री योनि-मे जन्म लेनेका कारण था, कि उसने देव योनिमे मायाचार किया था, और मिथ्या विश्वास किया था । यह श्रीधरा राजकुमारी अलकापुरीके राजा मुदर्यनमे व्याही गई और पूर्णचन्द्रका जीव देव-गतिमे श्रीधरगके उदरसे यथोवरा राजकुमारी जन्मी । इसका विवाह उनर श्रेणीमे प्रभाकर पुरके राजा सूर्यवित्तसे हुआ । रानी रामदत्ता के पनि राजा मिह सेन का जीव अनेक जन्मों के वाद उसके रघिमवेग पुत्र हुआ । नमारकी कितनी विचित्र गति है, कि राजा गिह भेनका पुत्र पूर्णचन्द्र यथोवरग विद्याधरी वनी और उसके राजा ता जीव पुत्र हुआ । उन प्रकार पुत्रसे माता वन गई और जो रानी रामदत्ता राजा मिह-सेन नी पन्नी थी, वह रघिमवेगके स्वप्नमे श्रीधरा नाम ती नानी वन गई । यह कर्मों की विचित्रता है ।

राजा नूरगियतं ने धर्मने पुन रघिमवेग को राज्य देकर मुनि अहिमन्द्रतिने दीक्षा देकर मोक्षप्राप्ति के लिए महाव्रत लिये । रघिम-वेगर्णी भागा यसांधर ३४८ नानी श्रीधरा भी महा मात्त्वी गुणवत्ती-मे दीक्षा दरह आयिता दन गई । एक दिन राजा रघिमवेग-

सिद्धकूट चैत्यालयके दर्शन करने गया वहा हरिचन्द्र मुनिसे धर्म सुनकर उसने मुनि दीक्षा लेली और वह महाव्रत पालने लगा। वह काचव नाम की गुपा मे रहने लगा।

एक दिन उस मुनि की माता और नानी दोनों आर्यिकाएं उसके दर्शन करने गुफामे गईं और मुनिके पास बैठो गईं सयोग वश श्रीभूति पुरोहितका जीव साप, चमरी मृग, कुर्कट सर्प और नारकी जीव बनकर जन्म लेता हुआ इसी गुफामे अजगर हुआ और वह वहा उन तीनों मुनि रश्मिवेग, मा साध्वी यशोधरा और नानी साध्वी श्रीधराको निगल गया। मुनि तो मर कर आठवे स्वर्गमे अर्कप्रभ देव हुआ और अजगर मर कर चौथे नरकमे गया।

यह जन्म-जन्मके सम्बन्धों की कथा यही समाप्त न हुई। आगे पाच रत्नोवाले वणिक सुमित्रदत्त राजा सिहसेन और रानी रामदत्ताके जन्म जन्मान्तरकी कथा बनाई जाती है।

चक्रपुर नगरमे राजा अपराजित और उसकी रानी सुन्दरी रहते थे। उनके घरमे सुमित्रदत्त मर कर रामदत्ताका पुत्र सिह-मुनि व्रत पालन करके देव अहिमिन्द्र होकर पुत्र हुआ और उसका नाम चक्रायुध रखा गया। चक्रायुधकी पत्नीका नाम चित्रमाला था। राजा सिहसेनका जीव गज, देव, विद्याधर रश्मिवेग और फिर देव होता हुआ चक्रायुधके पुत्रके रूपमे जन्मा। उसका नाम वज्रायुद्ध रखा गया।

पृथ्वीतिलक नगरमे राजा प्रियकर और उसकी रानी अन्तिवेगा रहते थे। उनके हा रानी रामदत्ताका जीव पहिले श्रीधरा आर्यिका हुई, फिर स्वर्गका देव होकर राजा प्रियकरकी पुत्रीके रूपमे जन्मा। उसका नाम रत्नमाला रखा गया। और उसका विवाह वज्रायुद्धसे किया गया और उनके घरमे यशोधरा आर्यिका-का जीव रत्नायुध नाम का पुत्र हुआ।

राजा चक्रायुद्ध अपने पुत्र वज्रायुद्धको राज देकर और वह

अपने पुत्र रत्नायुधको राजा देकर वारी-वारीसे मुनि हो गये । यह रत्नायुद्ध वास्तवमें पूर्णचन्द्रका ही जीव था । रत्नायुध भूठे धर्म विवासके कारण मदोन्मत्त रहता था । इस राजा रत्नायुधका एक अतिष्पारा हाथी मेघनिनाद था । यह हाथी एक दिन जलसे नहानेके लिए नदी पर गया । वहा एक मुनिके दर्शन करते ही उसे अपने पूर्व जन्मोका स्मरण हो गया और उसने श्रावकके व्रत धारण किये । व्रतोके कारण यह हाथी अयोग्य खाना-पानी न लेता था ।

हाथीके खाना-पानी न लेनेपर राजा न समझ सका कि क्या कारण है । उसने वज्रदत्त मुनिसे कारण पूछा तब मुनिने कहा —

“एक चित्रकार नामक नगरमें राजा प्रीतिभद्र और उसकी रानी मुन्दरी रहते थे । उनके पुत्रका नाम प्रीतकर था । राजाके मन्त्रीका नाम चित्रवुद्धि, मन्त्रीकी धर्म पत्नीका नाम कमला और उनके पुत्र का नाम विचित्रपति था । राजा का पुत्र प्रीतकर और मन्त्रीका पुत्र विचित्रपति दोनों ही स्वामी श्रुत सागरसे तप का फल मुनकर नरण थवस्थामें ही मुनि हो गये । ये दोनों अनेक प्रकारके वटोरनप करते हुए और निर्वाण क्षेत्रोके दर्शन करते हुए अयोध्यार्जी आये । मन्त्रीका भाई पुत्र नगरमें शोजन करने गया । वहा अति मुन्दरी वुद्धि मेना नामकी एक वेश्याको देखते ही कर्मयोगसे वह निर्वन्द्ज झट्ट हो गया । पर वेश्याने यह जानकर कि वह निर्धन है, उन्हें मंत्रीकार न किया ।

अयोध्याका राजा नदीमित्र वडा दुराचारी और मासमधी पा । विनियमनि गावुने झट्ट होने ही, सावु वेश छोट दिया और राजाकी नीरनी कर्मी । मन्त्रीका वेदा मासके व्यजन बनानेमें चाह दृश्यता था । राजाने उभये मानोगे प्रगत्त होकर उसे पुरम्भार माननेहो ता । तब विचित्रपति ने वह वुद्धि मेना मारी । उस ग्रामपती वेदाचारा नेवन करने वह मासाचारी मरार सानवें नरकमें गया । ग्रामने निरान कर मगान्में दार्शनार जन्म लेना दृश्य उनका

जीवन यह हाथी बना और साधुके दर्शनसे इसे अपने पूर्वले कर्मोंका स्मरण हुआ और अब वह अपने पाप कर्मोंकी निन्दा करके कर्म-पालन करके शात है। मुनिके मुखसे अपने हाथीके पूर्व जन्मोका हाल सुनकर राजा रत्नायुध और उसका हाथी मेघनिनाद मिथ्या विश्वासोको त्याग कर श्रावक धर्मको पालने लगे।

“अजगरका जीव चौथे नरक गया था। वहासे निकलकर दारूण भीलकी सी मन्दी से अतिदारूण पुत्र हुआ। और राजा सिहसेन का जीव बज्रायुद्ध मुनि प्रिपगुखड बनमें ध्यानमें विराज रहा था, कि उनको इस महापापी अतिदारूण भीलने कष्ट दिया। मुनि तो कष्ट सहकर मर कर मोक्ष गया, पर वह भील अतिदारूण मरकर सातवे नरकमें गया और वहा उसने मुनि हत्याके पापके कारण भयकर दुख सहे। बज्रायुद्ध की रानी रत्नमाला अपने पुत्र रत्नायुद्धके मोहवश आर्यिका न हो सकी। और रत्नायुध और रत्नधारा दोनो मान्वेटा अणुव्रतोके पालनेके फलस्वरूप सोलहवे स्वर्गमें देव हुए।

“घातकी खण्ड दीपमें पूर्व मेरुसे पश्चिमविदेह में गन्धिला देशमें अयोध्या पुरी है। अयोध्याके राजा अरहदास की दो धर्म पत्निया सुव्रता और जिनदत्ता थी। उन दोनो रानियोके बै सोलहवे स्वर्ग के देवता रत्नायुध और रत्नमाला के जीव क्रमशः सुव्रताके वीतमय बलभद्र हुआ और रानी जिनदत्ताके विभीषण वामुदेव हुआ। छोटा पुत्र विभीषण तो पहले नरकमें गया और बड़ा भाई वीतभय मुनि अनिवृत्तिके पास तप करके स्वर्गमें इन्द्र हुआ। वह मैं हूँ और मेरा नाम आदित्यप्रभ है। मैंने पहले नरकमें विभीषणके जीवको बहुत समझाया। उसने सम्यक्त प्राप्त किया। वह नरकसे निकलकर जम्बूद्वीपके विदेहमें गधमालिनी देशमें विजयार्द्ध गिरिमें राजा श्रीधर्मा की रानी श्रीदत्तासे श्रीदाम पुत्र हुआ, जिसे मैंने उपदेश दिया। फिर वह श्रीदाम अनन्तमति स्वामीसे साधुके व्रत लेकर मरने के पश्चात् पात्रवे स्वर्गमें इन्द्र हुआ। और भील का

जीव नरक से निकलकर वहां साप हुआ । वह मर कर पहले नरकमें गया । वहांसे निकलकर तिरयच गतिमें बहुत बार जन्म लेता हुआ दुखी रहा । फिर उसने एरावती नदीके किनारे भूतरमण वनमें माली तपस्वीकी स्त्री कनककेसी से मृगश्रग नामका तापस पुत्र हुआ । यह मृगश्रप मृगके समान मूर्ख पचाजित तप करने लगा । एक दिन मृगश्रगनै चन्द्रप्रभ विद्याधरको आकाशमें जाते देखकर मनमें सोचा कि मैं भी तपके प्रभावसे विद्याधरोंकी विभूति पाऊँ । परिणाम यह हुआ कि मृगश्रग मर गया और उसका जीव वज्रदण्ड विद्याधर और उसकी स्त्री विद्युत प्रभाके हा विद्युदण्ड नाम का विद्याधर हुआ । और वज्रायुध मुनिका जीव सर्वार्थ सिद्धि गया और वहांसे सजयत मुनि बना । और तू मनेन्द्र वहांसे सजयतका भाई जयत हुआ और मरकर तू धरणेन्द्र हुआ ।

श्रीभूति पुरोहित जिसको सिहसेनने एक जन्ममें मारा था । उसने बहुत जन्मों में वैर का बदला लिया । राजा सिहसेन गजके जन्म के वैर छोड़कर सजयन्तके जन्ममें सिद्ध हुआ । और तू वैरके योगमें वारन्वार जन्म लेरहा है । इससे हे धरणेन्द्र । तू वैर की बृद्धि को छोड़ दे । यह वैर भावना आवागमनको बढ़ानेवाली है । इन्हिन् त्रिभिन्नी से वैर मत कर, और मिथ्यात्व छोड़ दे ।"

उम प्रकार आदित्यप्रभ देवने धरणेन्द्र को समझाया । धरणेन्द्रने वैरका न्याग कर दिया और सम्यक्त्व ग्रहण किया । धरणेन्द्रने विद्याधरोंको जीवनशान तो दिया, पर उनकी विद्या नहीं उन पर दी जिसने वे पञ्चदं पक्षीके समान होगये । विद्याहीन विद्याधरोंने धरणेन्द्र में विनाई करके पूछा "हे देव ! हमें विद्याकी मिहि क्ये हो ?" उनपर धरणेन्द्रने उन्हें वत्तायाकि तुम नव विद्याएँ नैजम्यमानी विद्याल प्रनिमा हिमवन्न पर्वतपर न्यापित करो और प्रतिमा ते नरणों के पाम तप करो । इनमें तुम्हे चिरकालमें विद्या रीं मिहि रोगी पर विश्वदाता की समानगी तीन विद्याएँ मिल न देंगी । विद्यापर्वते धरणेन्द्रको नमस्कार किया और उसके

आदेशानुसार हिमवन्त पर्वतपर सजयंत स्वामी की स्वर्ण रत्नमई प्रतिमा स्थापित की ।

लातवेन्द्रका स्वर्गसे मथुरामे राजा रत्नवीर्यकी रानी मेघ-मालाके मेरु नामका पुत्र हुआ । उसे ही राजाकी दूसरी रानी अमित प्रभाके धुरणेन्द्रका जीव मन्दर नाम का पुत्र हुआ । दोनो भाई मेरु और मन्दर तरुण अवस्थामे ही ससारको त्याग कर श्रेयास जाथ तीर्थकर के शिष्य हुए । बड़ा भाई मेरु केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गया और छोटा भाई मन्दर गणधर हुआ ।

यह सजयत स्वामीके चरित्रकी प्रसिद्ध कथा है ।

राजकुमार मृगध्वज और मैंसा

थ्री गीतम गणधर राजा थ्रेणिक से कहने लगे, “हे थ्रेणिक, अब मैं तुम्हे वेगवतीसे अनग होनेके बाद का हाल सुनाता हूँ। वेगवतीके वियोग मे दुखी वसुदेव वन-वन घूमता हुआ, तापसियों-के आश्रम मे पहुँचा। वे तापस राजकथा, युद्धकथा और कामकथा मे आमक्त थे। यदुपति वसुदेव उनसे कहने लगे, आप कैसे तापस हैं, जो इन विषयोंकी चर्चा करते हो? ये धर्मकी कथाए नहीं हैं। तपस्वी तो तप करते हैं, मौन रहते हैं और मोक्षमार्गपर चलते हैं। ये कथाये तुम्हारे योग्य नहीं हैं।” इस पर उन तापसोंने कहा, “हे यदुपुरुष! हम नवदीक्षित हैं। इसलिए चित्तकी वृत्ति चलती है और मौन रहा नहीं जाता।”

फिर उन्होंने वसुदेवको अपने तपस्वी वननेकी यह कथा नुनाई—

“यहाँ श्रीवास्ती नगरीका पराक्रमी राजा ऐणीपुत्र था और उसकी एक पुत्री प्रियग मुन्दरी थी। वह बहुत सुन्दर थी। जब वह विवाह योग्य हुई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्भर रचाया। उस स्वयम्भरमे हम नव बटे-बटे गजा बुनाये गये। पर उस राजकन्याने स्वयम्भर में किनीको भी न चुना। उसपर हम राजा ओने दूष प्रकृत्या रिया और कुद्र होकर राजा ऐणीपुत्र ने युद्ध करते हों नंदार द्वारा गये। परन्तु जिस प्रकार एक मूर्य हजारों मनुष्यों के देशोंगे मरुभूमि रक्खता है, वैसे ही उस एक राजा ऐणीपुत्र ने एक महाराजे युद्धमे शोध दी क्षमित और परास्त कर दिया। कुछ

स्वाभिमानी राजा तो रणमें लडते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए, पर हम जैसे कुछ राजा युद्धसे भागकर बनमें आ चैठे और तापस बन गये। पर हमं धर्मका स्वरूप नहीं जानते, इसलिए आप हमें धर्मका उपदेश दे ।”

“राजा वसुदेवने उन्हे मुनिधर्म और श्रावक धर्मका उपदेश दिया और कहा कि यह दोनों प्रकारका धर्म ही मनुष्यके लिए कल्याणकारक है। राजा वसुदेवके धर्मोपदेशसे वे आपसमें सन्तुष्ट होकर अपनी यथाशक्ति व्रत लेकर अपने-अपने स्थानको छले गये।

राजा वसुदेव प्रियगसुन्दरी का हाल सुनकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीवास्ती नगरी गया। उसने नगरीके बाहरी उद्यानमें कामदेवके मन्दिरके अगले भागमें स्वर्णका तीन पावका कृत्रिम भैसा देखा। इस विचित्र भैसेको देखकर जब वसुदेवने किसीसे उस भैसे का हाल पूछा, तब एक वृद्ध पुरुषने वसुदेवको बताया, “हे आर्य ! इसी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी राजा ‘जितभ्रतु’ का पुत्र मृगध्वज और सेठ कामदत्त रहते थे। एक दिन सेठ कामदत्त गोशाला देखने आया। तब एक दीन-हीन छोटासा भैसा सेठके पावपर आ पड़ा। तब सेठ कामदत्तने अपने ग्वालेसे पूछा कि यह क्या बात है। तब ग्वालेने उत्तर दिया, “जिस दिन यह भैसा जन्मा, उसी दिन वह मेरे पाव पड़ा, जिससे मुझे इसपर बड़ी दया आयी। मैंने वनमें एक मुनिको नमस्कार करके पूछा, “हे प्रभो ! इस भैसेपर मेरी अति करुणा का कारण बताइए।” मुनिने उत्तर दिया, “तेरी भैसके पेटसे इस भैसेने पाच बार जन्म लिया और तूने पाचों बार मारा। छठी बार इस भैसके पेटसे इसने फिर जन्म लिया, तब तुम्हें देखकर इसे अपने पिछले जन्मोका स्मरण हुआ और इससे डरकर तेरे पाव पड़ता है कि तू अब मुझे मत मार !” मुनिकी यह बात सुनकर मैंने इसे पुत्र समान पाला। अब भी यह जीने के लिए तुम्हारे पाव पड़ता है। वालेके यह वचन सुनकरे सेठ कामदत्त दया करके भैसेको नगरमें

ले आया। और राजासे उसे अभय दान दिलाया। पर राजा जितगत्रुके पुत्र मृगध्वजने पूर्व जन्मके बैरसे भैसेका एक पाव तोड़ डाला। राजा राजकुमार मृगध्वज के निर्दयतापूर्ण कामसे बड़ा क्रुद्ध हुआ और उनने राजकुमारको मारनेकी आज्ञा की। राजाकी इस आज्ञा को सुनकर समस्त दरवारियों में चिन्ता पैदाहो गयी। पर राजाका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् था। वह छल और चतुराईसे राजकुमार को बनमे लेगया। राजकुमारने बनमे एक मुनिके दर्शन किये और उनके उपदेशको सुनकर ससारसे विरक्त होकर मुनिदीक्षा लेली। इधर वह भैसा पाव टूटनेके बाद अठारहवें दिन शुभ भाव करता हुआ मर गया। राजकुमार मृगध्वज भी मुनि बननेके पश्चात् वाईसवे दिन अतिशुभ ध्यानके प्रभावसे केवली हुआ। सभी देव, मनुष्य, चारो योनियोके जीव और राजा जितगत्रु भी केवलीके दर्गन-पूजन के लिए आये।

तब राजाने राजकुमार मृगध्वज और भैसेके बैरका कारण पूछा। केवली मृगध्वजने उत्तर दिया “पहले नारायण त्रिपृष्ठका शत्रु अलकापुरी का राजा अश्वग्रीव विद्याधरोका राजा और पहला प्रतिनारायण था। राजा अश्वग्रीव का मन्त्री हरिस्मश्रु प्रसिद्ध तर्कंयासन्नी पड़ित था। पर था वह एकान्तवासी और परलोकको न मानने वाला। वह प्रत्यक्ष दिखने वाली बातको ही प्रमाण मानता था, परोक्ष बातको प्रमाण नहीं मानता था। वह जीवके दृष्टिगोचर न होनेके कारण उसे भी न मानता था। वह पाप-पुण्य तथा परलोकको भी न मानता था। उसका कथन था कि यह देव, नारकी, मनुष्य और दूसरे जीवोंका विकल्प अज्ञानियों ने उठा रखा है। उमर्गी मानता थी कि जब परलोक हैं ही नहीं, तब उसके लिए न्यम पालना दूसा ही भोगोका नाश करना है। उसे कुक्षायाओं में रनि थी, नदा उन्हें ही मृनता या और भोगादि में आगक्त रहता था। ऐसा गम्भीरिया कुरी चेष्टा बाना वह मन्त्री था। जब त्रिपृष्ठ

नारायण और अश्वग्रीव प्रति नारायण मे युद्ध हुआ, तब त्रिपृष्ठ ने तो अश्वग्रीव को मारा और विजय नाम के बलभद्र ने हरिस्मश्रु मन्त्री को मारा। राजा अश्वग्रीव और मन्त्री हरिस्मश्रु मर गये और दोनोंके जीव नरक गये। बहुत काल तक वे दोनों जगह-जगह जन्मते-मरते रहे। अब अश्वग्रीवका जीव तो मैं मृगध्वज राजकुमार हुआ और हरिस्मश्रुका जीव यह भैसा हुआ। पहले जन्म के किसी दोषके कारण मुझे इसपर क्रोध हुआ और मैंने इसकी टांग तोड़ी थी। अब वही भैसा मरकर अच्छे भावोंसे मरनेके कारण लोहित नाम का महा असुर होकर मेरी बन्दना के लिए आया है।” आगे केवलीने कहा—“हे राजन्! इस लोकमे सब जीवोंसे मित्र भाव रखना। क्रोध आदमीको अन्धा कर देता है। इसलिए मोक्ष चाहने-वाले व्यक्तिको क्रोधको वशमे करके शात भावको अपनाना चाहिए।”

केवलीके उपदेशको सुनकर राजा और दूसरे स्त्री-पुरुषोंने दीक्षा लेकर साधु-धर्म अपनाया। और वह महिषासुर भी कपट रहित हो गया। केवलीका उपदेश सुनकर सब उन्हे नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये। और मृगध्वज केवली अपनी आयु पूरी करके परमधामको सिधारे। मृगध्वज और उस (भैसे) का चरित्र सुनने और उससे शिक्षा लेने योग्य है, क्योंकि उससे धर्मपर सच्चा विश्वास उत्पन्न होता है।

वन्धुमती; प्रियंगसुन्दरी और क्रष्णिदत्ता

केवली मृगध्वजके दर्गन करनेके पश्चात् सेठ कामदत्त अपने घर लौट आया । उधर चन्द दिनो पश्चात् केवली मृगध्वजने मोक्ष प्राप्त किया । सेठ कामदत्तने नगरके बाहर अपने मन्दिरके आगे स्मारक रूपसे केवली मृगध्वज की प्रतिमा स्थापित की और उसके ही निकट तीन टांगके भैसे की मूर्ति स्थापित की । सेठ कामदत्तने इसी मन्दिरके पास कामदेव और रति की मूर्तिया भी स्थापित की । इसलिए जो दर्गक यहा आते हैं, उन्हे मृगध्वज और भैसेके दर्गनसे गिराव मिलती है ।

उसी सेठ कामदत्त के वंशमे इस समय सेठ कामदेव है, उसकी रुप-यीवनने पूर्ण चन्द्रवदनी पुत्री वन्धुमती है । इस लड़कीके पिता ने निमित्त जानीसे पूछा था कि इस कन्या का पति कौन होगा । तब उन निमित्त जानीने उस सेठको बताया कि जो आदमी इस मन्दिरके किंवाड़ खोनेगा, वही इसका पति होगा । वृद्धकी यह व्रान मूनकर यदुपति राजा वसुदेव कामदेवके मन्दिरके द्वारपर गया । उनके द्वार वत्तीम आगल मूसलियोंसे बन्द थे । राजा वसुदेव-ने द्वारोंतो उधर-उधरन्में देखकर अपनी चतुराईमें झटमे उन्हे खोल दिया । किंर राजाने मन्दिरके अन्दर जाकर जिन भगवान् का दर्शन-पूजन गिया । दाहर आकर उन्हें केवली मृगध्वज, भैसे, कामदेव और रति की मूर्तिया देखी ।

इन्हे नेठ कामदेवको दसुदेवके द्वार मन्दिर के द्वार गोले रखनी नूनना भिन गयी । इनमे हीन होकर नेठ कामदेवने अपनी पुत्री वन्धुमतीका निवार बगुदेवने कर दिया ।

बन्धुमती का पति वसुदेव रतिपतिसे भी अधिक सुन्दर रूपवान है, यह वात समस्त नगर मे प्रसिद्ध हो गयी। राजाके रनिवासके स्त्री-पुरुष और राजकुमारी प्रियंगसुन्दरी भी सेठके महलमें राजा वसुदेवको देखने गयी। राजकुमारी प्रियंगसुन्दरीके लिए तो वसुदेव उस श्रीवास्ती नगरी मे आया ही था। बन्धुमतीसे तो सयोगवश ही पहिले विवाह होगया। वसुदेव को देखते ही प्रियंगसुन्दरी उसपर ऐसी अनुरक्त तथा मोहित हुई कि वह जीजानसे उसकी होगयी।

प्रियंगसुन्दरी और बन्धुमती दोनो सखिया थी। प्रियंगसुन्दरी ने उत्सुकतावश उससे उसके पति की प्रवीणताकी बाते पूछी। वसुदेव-की प्रवीणता तथा गुणोकी बाते सुनकर तो प्रियंगसुन्दरी और भी बेचैन हो उठी। अब उसे खान-पान कुछ भी नही भाता था।

एक दिन राजकुमारी प्रियंगसुन्दरी अभिमान और लज्जाको छोड वसुदेवसे मिलनेकी तीव्र इच्छासे उसके द्वारपर पहुच गई। वसुदेव राजकुमारीके आनेकी सूचना पाकर वडा चिन्तित हुआ कि अपनी इच्छासे आनेके कारण यह राजकुमारी आदरके योग्य नही है। उसको मारना भी स्त्री हत्याके कारण अनुचित था। वसुदेवने समय टालनेके बहाने प्रियंगसुन्दरीको बन्धुमतीके महलमे किसी अलग कमरेमे सुला दिया और स्वयं बन्धुमतीवाले कमरेमे सो गया।

रातमे एक विचित्र घटना हुई, जिससे वसुदेवको वडा आश्चर्य हुआ। ज्वलनप्रभा नामकी नागकुमारी देवी वसुदेवके कमरेमे अचानक आई। उसके नागका चिह्न था और उसके आभूषणो की कातिसे समस्त कमरा प्रकाशित होरहा था। वसुदेवने उससे उसका परिचय पूछा। देवी प्रियवादिनी थी और मीठी बाते करनेमे वडी प्रवीण थी। उसने वसुदेवको बताया, “हे धीर वीर ! मेरे आनेका विग्रेव कारण है।” वसुदेव ने पूछा—“क्या ? देवी, बताइए, क्या कारण है ?” देवी कहने लगी—“चन्द्रनवन नामक नंगरमे अति-

पराक्रमो राजा अमोघदर्शन, उसकी रानी चारुमती और उसका पुत्र चारुचद्र थे। राजकुमार महानीतिवान्, बलवान्, पुरुषार्थी और नवयीवनसम्पन्न था। उस नगरमें रगसेना वडी गुणवान् और कलावती गणिका थी, जिसकी पुत्री कामपताका अपने नामके अनुसार कामकी ध्वजाके समान सुन्दर थी। राजा अमोघदर्शन यज्ञमार्ग पर श्रद्धा करने लगा। और उसके दरबारमें कौंगिकादि अनेक जटाधारी तापस आये। राजाकी आज्ञासे कामपताका नृत्य करने लगी और शीघ्र उसने सब दर्शकोंके मनको मोहित कर दिया। फलपत्रके आहारी कौंगिक तापसका मन भी विचलित होकर कामपताका पर अनुरक्त होगया। पर यज्ञ विधानसे निवृत्त होते ही राजा अमोघदर्शनके पुत्र चारुचद्रने कामपताकाको अगीकार कर लिया। तब कौंगिक तापसने राजाको अपना भक्त समझकर कामपताका ग्रपने लिए माँगी। राजाने उसको कहा कि राजकुमारने उन लड़की को विवाह लिया है, इसलिए वह कामपताकाको उसे देने में विद्युत है। तब कौंगिक तापसने राजासे कहा कि वह साप होकर राजाको ड़सेगा। इस प्रकार क्लेश करके वह तापस चला गया। तब राजा डर गया और वह राजकुमार चारुचद्रको राज देकर रानी चारुमती सहित तापस होगया। सयोगवद्य रानीको एक-दो मासका गर्भ था, जिसको कोई भी न जानता था।" राजा वसुदेव देवीकी बात बड़ा चकित हुआ मुन रहा था और मोच रहा था। इदेवीके अगमय यहाँ आनेमें क्या सम्बन्ध है। देवी उसके मनकी प्राणजलाने नाउं गयी और बोली, "राजन्। धीरज ग्वो। मैं शीघ्र आने यहाँ आनेका उद्देश्य आपको बताऊंगी, पर जो मैं कह रही हूँ, यह अनगत नहीं है। जग ध्यान से मुनो।" राजा वसुदेवने कहा, "हाँ, हाँ, सहो। मैं ध्यान गे मुन रहा हूँ।" तब देवी उबलनप्रभाने आने नहीं, "तापनी के आश्रम में कुछ नमय पञ्चान् नाममतीने एक पुर्णी रो जन्म दिया, जिसका नाम कृपिदना रखा गया। जब यह नहीं दर्शी हुई तो एक दिन वनमें एक चारग्ग मुनिके उपरेश्वरों

उसने जिन धर्मपर श्रद्धा की। जब कृष्णिदत्ता यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई, तो बनदेवीके समान सबके मनो और आँखोको मोहने लगी। इसके पश्चात् एक दिन श्रीवास्ती नगरीका राजा शातायुध का पुत्र शीलायुध वहाँ तापसीके आश्रममें जापहुचा। कृष्णिदत्ताने उसे जलपान कराया। वे दोनों रूप-यौवनमें समान थे। आश्रममें कोई था नहीं। आश्रम की चिरकाल की मर्यादा को तोड़ दोनों प्रेम क्रीडामें प्रवृत्त हो गये। कुछ समय पश्चात् जब राजकुमार शीलायुध अपने नगर को जाने लगा, तब वह तापस-कन्या भयसे उससे कहने लगी, “हे नाथ! यदि मुझे कदाचित् गर्भ रह जाय, तो बताओ मैं क्या करूँ?” राजकुमार शीलायुधने उसे आश्वासन देते हुए कहा—“हे प्रिये! तुम व्याकुल मत होओ, मैं श्रीवास्ती नगरीके इक्ष्वाकु-वशी राजा शान्तायुध का राजकुमार शीलायुध हूँ। तुम पुत्रसहित मेरे पास आ जाना।”

“इस प्रकार कृष्णिदत्ताको धर्य बधाकर उसे छाती से लगाकर राजकुमार शीलायुध आश्रमसे विदा हुआ। कुछ समय पश्चात् जब कृष्णिदत्ताके माता-पिता अमोघदर्शन और चारुमती आश्रमको लैटे, तब कृष्णिदत्ता से सब बात सुनकर उन्होने उसे धिक्कारा और निर्लज्ज कहा।” वसुदेव के यह पूछनेपर कि आगे क्या हुआ, देवी कहने लगी, “हुआ वही जो होना था। कृष्णिदत्ताने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जो अपने पिता के समान था। पर वह बेचारी कृष्णिदत्ता प्रसूति समय ही मर गई।”

‘यह तो बड़े दुखकी बात है’, वसुदेवने कहा। देवी ज्वलनप्रभा ने कहा, “राजन्! दुख की बात तो अवश्य है। पर ससारमें जीवन-मरण, यश-अपयश और हानि-लाभ सब कर्मधीन है। इनमें किसी का वस नहीं चलता।”

“फिर उस नवजात शिशुका पालन-पोषण कैसे हुआ?”

राजा वसुदेवने उत्सुकतापूर्वक पूछा । ज्वलनप्रभा देवीने उत्तर दिया, “आगे जो कुछ हुआ वह पहलेकी बातोंसे भी अधिक आश्चर्यजनक है । ऋषिदत्ता मरकर चारण मुनिके उपदेश और जिनधर्मकी श्रद्धाके प्रभावमें ज्वलनप्रभा नागकुमारी हुई । वही मैं देवी हूँ । अपने अवधिज्ञानसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ और मैं दया करके उस नवजात गिशुके स्नेहवश बनमें अपने माँ-बाप और बालक पुत्र के पास गयी । मेरे माता-पिता गोकसे तप्तायमान थे । मैंने पहले उन्हें धैर्य बधाया । फिर उस पुत्र बालकको गोदीमें उठाया और हिरनीका रूप धारण करके अपने दूधसे उस बालकका पालन-पोषण करके बड़ा किया । इधर कौशिक तापसने मरकर साप होकर मेरे पिता अमोघदर्गनको पूर्वजन्मके वैरके कारण डस लिया । उसे मैंने अमोघमन्त्रमें निर्विप किया, अमोघदर्गनके क्रोधको धर्मोपदेश में जान्त किया और धमागील किया । राजा मरकर धर्मप्रभाव ने उन्म गतिको गया ।”

देवी ज्वलनप्रभाने आगे कहा, “फिर मैं ऋषिदत्ता ! तापस कन्याका स्वप बनाकर उस पुत्रको लेकर राजा शीतायुधके दरवारमें गयी । मैंने कहा, ‘हे राजन् ! यह ऐणीपुत्र आपका पुत्र राजलक्षण-युक्त है । उसे आप स्वीकार करे ।’ राजा शीतायुधने उत्तर दिया, ‘मैं तो अपुत्र हूँ । हे नापमनी, बनाओ, आपने यह पुत्र कहाँ पाया ? तब मैंने उसे ममन्त्र ब्रह्मान्त्र आद्योपान्त्र बताया । राजाने उस लड़केको ले लिया । मैंने प्रगन्त होकर गजा शीतायुधके प्रताप और वैभवको सूख बढ़ाया क्योंकि उस देवी-देवताओंके लिए कुछ भी कठिन नहीं है । नाज्ञों भी मैंने जैन धर्मका उपदेश दिया । कुछ गमयके पश्चात् राजा शीतायुध अपने पुत्र ऐणीपुत्रको नज्य नीपकर स्वयं मृति हो गया और फिर न्यर्म गया । राजा ऐणीपुत्रके घर प्रियग-मृद्दर्गी राजनुस्तर राजत्रुमार्गी हुई, जिसने अपने न्यर्मवर में किंगी नहीं राजत्रुमार्गी पर्णि न्यर्म में न चुना और ममारके विषय-भोगोंसे

विरक्त-सी रहने लगी। पर उसने एक दिन सेठ कामदेवकी लड़की और अपनी सहेली बन्धुमती के साथ आपको देखा। आपको देखते ही प्रियगसुन्दरी आपपर इतनी मुख्य हुई कि उसने खाना-पीना तक त्याग दिया और एक लड़की के महागुण अभिमान तक को छोड़कर स्वयं आपके पास चली आयी। आप इसे स्वीकार करे'।

राजा वसुदेव ने ज्वलनप्रभा देवी से कहा, "देवी! आप ही बतायें, मैं एक अदत्ता लड़की को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। यदि उसका पिता प्रसन्नता से इसे मुझे विवाह में दे, तो मैं ले सकता हूँ।" देवी ने कहा, आपकी "यह आशका व्यर्थ है। मैं इसके कुल की अधिष्ठिता हूँ। यह राजा ऐणीपुत्र पूर्वजन्मका मेरा ही पुत्र है। जब मैं स्वयं इस प्रियगसुन्दरी को दे रही हूँ, तब समझ लो कि इसके माता-पिता ने दी है और यह अदत्ता भी न रही।" इतना कहकर देवी ने राजा वसुदेवके हाथमे प्रियगसुन्दरीके हाथको पकड़ा दिया। उनका पाणिग्रहण हो गया। इसके पश्चात् देवीने राजासे कहा कि वह अमोघदर्शन है, उसका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, कोई वर मांगे।" राजाने उससे कहा कि जब कभी वह देवीका स्मरण करे, तभी उसकी सहायता को आजाय। देवी वचन देकर अपने स्थान को छली गयी।

फिर राजा वसुदेव ने कामदेवके मन्दिरमे प्रियगसुन्दरोसे गर्धवं विवाह किया और वे दोनों प्रियगसुन्दरीके महलमे प्रेमपूर्वक सुखसे रहने लगे। राजा ऐणीपुत्रने देवीके द्वारा दोनोंके किये गये विवाह की बात सुनते ही प्रसन्न होकर लोकमे प्रतिष्ठा के लिए इनका विधिवत् प्रकट विवाह कर दिया।

इसके पश्चात् राजा वसुदेव अपनी दोनों नववधुओं बन्धुमती और प्रियगसुन्दरी के साथ आनन्दपूर्वक दाम्पत्य जीवन विताने लगे।

प्रभावती

कात्तिक पूर्णिमाकी चादनीसे रात जगमगा रही थी । राजा वसुदेव और प्रियगसुन्दरी अपने महलमेनिद्रामग्न थे । किसी कारणवश वसुदेव जाग उठे और साक्षात् लक्ष्मी-सी एक रूपवती कन्याको अपने सामने खड़ी देखकर उन्होनेउससे पूछा, “हे कमल नेत्रे ! “तुम कौन हो ?” लड़की यह कहकर कि वह जो कोई है, उसे आप जानोगे ही, महलके बाहर चली गई । राजा भी प्रियगसुन्दरीको अकेली छोड़कर बाहर लड़कीके पास चले गये ।

तब लड़कीने राजा वसुदेवसे कहा, “भरत क्षेत्रमेविजयार्द्धंगिर की दक्षिण थे रोमेन्नवार देशके गधसमृद्ध नगरके राजा नन्धार और पृथ्वीके समान बल्लभा रानी पृथ्वीकी पुत्री प्रभावती हूँ । एक दिन मैं मानसवेगके सुवर्णनाम नगर गयी । वहा उसकी माता अगारवतीसे मिली । उसकी पुत्री वेगवती मेरी सहेली है । उसकी बावत मैंने पूछा । तब वेगवती की समियोने मुझे उससे मिलाया । उससे मुझे मालूम हुआ कि जिन प्रकार चद्रमाका सगम चित्रा नक्षत्रसे है, उनी प्रकार वेगवतीका संगम तथा सम्बन्ध आपसे कैसे हुआ । तब मैंने हमीरे उसे कहा कि जैसे चित्रा नक्षत्रका सगम चद्रमासे रोना है, वैने तुम्हारा यादवोंके चद्रमा राजा वसुदेव से नगम हुआ । इस पर वेगवती नज्जा भे कुछ मुस्कुरा दी । उसी नगरमें आपकी प्रिया नीमध्री घुडशील स्त्री आभूपरणोंसे महित आपका नाम जप रही है । आपका नाम ही तो उभका भोजन है ।”

राजा वन्दुरेय वेगवती सोमध्रीका नाम नुनवार प्रभावतीमें आपका नाम उभका भोजन पूछने नहो । तब प्रभावती ने बताया,

“सोमश्री मानसवेगकी माके पास ठहरी हुई है। आपके वियोगके महादुखसे उसके कपोल सफेद पड़ गये है, मानो उनमे रक्त ही न रहा हो। मानसवेगके वचनो और प्रलोभनोसे वह प्रभावित या डगमगायी नही। मानो वह शीलके दुर्गमे बैठी हो। पर आप सोचे कि शत्रुके घरमे कबतक वह इस तरह रह सकती है। इसीसे सोमश्रीने मुझे आपके पास सहायता का सदेश देकर भेजा है। उसने कहा है, “शत्रु मानसवेग की माताने मुझे भली प्रकार सुरक्षित रखा है और अपने पुत्र मानसवेगको बहुत दबाया-समझाया है। अब आप शीघ्र मेरी सुध लो और मुझे इस मानसवेगके फंदेसे छुड़ाओ। यदि अब भी आप मेरी सुध न लोगे तो आपके वियोगमे मेरे प्राण चले जायेगे। इसलिए यह कठोर उपेक्षा छोड़कर मेरी रक्षाका यत्न करो।”

प्रभावतीने आगे कहा, “सोमश्रीने आँखो मे आसू भरकर यह विनती की है। मैं आपसे कहकर कृतार्थ हो गई। अब जैसा आप उचित समझे, करे। हाँ, एक बात और है।” राजा वसुदेवने पुछा, “वह क्या है?” तब प्रभावती बोली, “यदि आपको यह आशंका हो, कि सोमश्रीका स्थान अगम्य है, तो मैं आपकी आज्ञासे जहाँ कहोगे, वही ले चलू गी।”

प्रभावतीकी बाते सुनकर वसुदेवको उसकी सब बातोपर विश्वास हो गया। तब उसने प्रभावतीसे कहा, “हे सोमवदना! “तू मुझे शीघ्र ही सोमश्रीके पास ले चल।” विद्याधरी प्रभावती राजा वसुदेव की आज्ञानुसार विजली के समान प्रकाश करके आकाशको उल्लंघन करके वसुदेवको स्वर्णनामपुर ले गयी। किसीको खबर भी न हो पाई, और वह राजा वसुदेवको सोमश्रीके पास ले गयी। वसुदेवने देखा कि सोमश्री कान्त के वियोगसे कुम्हलाये कमल पुष्पके समान है। उसके कपोल शोभाहीन और मलिन है। न उसने शरीरका कई दिनसे सस्कार किया। उसके केश रुखे-विखरे हुए-

थे। और होठ भी पानके रग विना सूखे-सूखे है। गर्मसि जैसे बेल की कोपले मुरझा जाती है, वेसे पति वियोगकी तपन से सोमश्री का मुख उतरा-उतरा कातिहीन हो रहा है। राजा उसके तनकी इस दगाको देखकर बड़ा दुखी हुआ। वसुदेवको देखते ही सोमश्रीकी जान मे जान आगयी। वह उठकर अपने पतिके सामने आयी। राजा वसुदेवने उसे छातीसे लगाया। वे दोनों कुछ रोमाचित हो, ऐसे हो गये जैसे वे एक ही अग हो।

प्रभावतीने उसका सब काम चतुराईसे सफलतापूर्वक कर दिया, उसमे सोमश्रीने उसका हृदयसे आभार माना। प्रभावती अपने स्थानको छली गयी।

राजा वसुदेव रूपपरावर्तनी विद्याके द्वारा अपना रूप बदलकर सोमश्रीके माथ मानसवेगके महलमे कई दिन रहा। जब एक रात को सोमश्री जागी, तब वह वसुदेवको असली रूपमे देख कर शत्रु मानसवेग के द्वारा पनिके मारे जानेके भयसे बड़ी चिन्तित हुई और गेने लगी। वसुदेवने उसमे रोनेका कारण पूछा। सोमश्रीने कहा, “हे नाय ! आपने रूप पलटनी विद्यासे जो रूप परिवर्तित किया था वह न देखकर मैं आपका मूल रूप देख रही हूँ। इससे मुझे यत्रुता भय पैदा हुआ है। इसीमे मैं रो पड़ी थी।” वसुदेव ने उसमे कहा, “हे प्रिये ! किमी वातका भय मत कर। इन विद्याओं का यही नियम है कि जागन दयामे तो जरीगमे रहती है, पर जरन प्रवन्ध्यामें दूर हो जाती है। उमनिए तू न कोई सन्देह कर शोर न भए। यह रहदर गजा वसुदेवने किर अपना रूप वैसा बदल दिया, जैसा विद्या द्वारा पहने दिया था।

दूसरे दिनोंके अन्नात् मानसवेगको यह पता चल गया कि वसुदेव सोमश्रीसे पान रह रहा है। वह वैजयन्तीपुरी के स्थानी नाईरियमें प्रवासमें दिए जिता। वसुदेवत पक्ष नहीं और नायदून था; पर मानसवेग न माना और युद्धके लिए नैयार

हो गया । वहूतसे विद्याधर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुँचे । दोनों पक्षोमे महासग्राम छिड़ गया । मानसवेगकी बहन वेगवती अर्थात् वसुदेवकी पत्नी और उसकी मा अगारवतीने भी पुत्रीका पक्ष लेकर अपने जवाई वसुदेवको एक धनुष और दिव्य बाणोंसे भरे दो तरकश दिये । प्रभावती विद्याधरी युद्धका समाचार सुनकर वसुदेवकी सहायताके लिए वहाँ आपहुँची । उसने राजाको प्रज्ञाप्ति विद्या दी, जिसके प्रभावसे वसुदेवने मानसवेगको बाँध दिया । तब अगारवतीने जवाई वसुदेवसे अपने पुत्र मानसवेगके प्राणका दान मागा । इसपर दयावान् वसुदेवने सोमश्री सहित मानसवेगको सोमश्रीके महलमे लेजाकर वहा उसको छोड़ा । मानसवेगको अब वसुदेवसे बड़ाप्रेम हो गया । मानसवेग वसुदेव को सोमश्री सहित सोमश्रीके पिताके नगर महापुर ले गया ।

सोमश्री अपने माँ-बाप और बन्धुओंसे मिलकर बड़ी प्रसन्न हुई । वसुदेव भी वही रहा । तब मानसवेग स्मरण करनेपर आनेका वचन देकर अपने स्थानको लौट गया । वहाँ वसुदेव और सोमश्री सुखसे रहने लगे । दोनोंने वियोगके दिनोंकी दुख-सुखकी बाते एक-दूसरेसे कही ।

एक दिन सूर्यक नगरका शत्रु विद्याधर घोडे का रूप बनाकर वसुदेवको ले उड़ा और उसे गगामे डाल दिया ।

वसुदेव गगाको पार करके एक तापसके आश्रम मे पहुच गया । वहाँ उसने उन्मादसे बावली एक नारी को देखा, जिसके आभूषण नरोंकी अस्थियोंके बने हुए थे । एक तापससे उसकी बावली होने का कारण पूछने पर उसने वसुदेव को बताया, “यह नारी राजा जरासिन्धकी पुत्री केतुमती है और यह राजा यतिशत्रुकी रानी है । एक मन्त्रवादी परिक्राजकने इसे वाद-विवादमे जीत लिया और उसने केतुमतीको क्रोधसे मारा, इसलिए यह बावली हो गयी है । अब यह अस्थियोंकी माला पहनकर यहाँ-वहाँ भ्रम रही है ।”

राजा वसुदेवको उसका यह हाल सुनकर उसपर बड़ी दया आयी और उसने महामन्त्रके प्रभावसे उसको ठीक कर दिया । यह देखते ही, जरासिधके नांकर गुप्तचर वसुदेवको पकड़कर नगरमें ले गये । जब वसुदेवने उनसे अपना अपराध पूछा, तब उन्होंने उसे बताया “जो आदमी राजाकी पुत्रीका ग्रह उत्तारकर उसे होशमें लाये वह राजा जरासिधके बैरीका पिता है । इससे तुम्हे मारनेको ले जा रहे हैं ।”

उसी समय एक विद्याधर वसुदेवको आकाश में ले उड़ा । उस विद्याधरने उसे बताया कि जो विद्याधरी प्रभावती उसे सोमश्रीके पास ले गयी थी, वह उसका पिता भगीरथ है और वह राजाके मनोरथको निछू करनेवाला है । यह बतानेके पश्चात् वह भगीरथ विद्याधर राजा वसुदेवको अपने नगर गधस्मृद्ध लेगया । वहाँके अनेक विद्याधरोंने राजाका बड़े मान-शानके साथ स्वागत करके नगरमें प्रवेश कराया । फिर शुभदिन और अच्छे लगनमें विद्याधर भगीरथ और उसके कुटम्बीजनोंने वसुदेवका विवाह प्रभावतीसे कर दिया । पति-पत्नीमें पहलेसे ही जो परिचय और प्रेम था, वह अब और बढ़ गया ।

कर्मोंकी बड़ी विनित्र गति है । पापोंके उदयसे इष्टमित्रोंका वियोग होना है और पुण्यको प्रभावसे वियोग समाप्त होकर उनका मिलाय होना है ।

स्वयम्बर, संग्राम और भ्रातृ-मिलाप

एक बार राजा वसुदेव प्रभावतीके साथ महलमें विश्राम कर रहे थे। उनका शत्रु विद्याधर सूर्यक वासदेवको आकाशमें ले उड़ा। जब वसुदेवने उसे मुक्को से मारा, तब उसने वसुदेवको आकाशसे नीचे डाल दिया। वसुदेव गोदावरी नदीमें गिर पड़ा। नदीके किनारे पर कुण्डपुर नगर था, जिसका राजा पद्मरथ था। उसकी पुत्रीकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो व्यक्ति फूलमाला गूँथनेकी प्रवीणतासे उसे रिभायेगा, वही उसका पति बनेगा। वसुदेवने माला गूँथनेकी प्रवीणतासे राजकुमारीको प्रसन्न करके उससे विवाह किया।

वहाँसे एक बार एक नीलकण्ठ वसुदेवको ले उड़ा और उसे चम्पापुरी के सरोवर में डाल दिया। सरोवरसे निकलकर वसुदेव नगरमें गया और वहाँ के मन्त्रीकी पुत्रीको व्याहा।

एक दिन वे दोनों पति-पत्नी जलक्रीडा कर रहे थे, कि वही शत्रु विद्याधर सूर्यक उसे फिर ले उड़ा और गगामें डाल दिया। गगाके किनारेके नगर मलेच्छ खण्डके राजाने वसुदेवसे अपनी जरानामकी पुत्री विवाह दी। इससे वसुदेवके यहाँ जरत्कुमार महापराक्रमी पुत्र हुआ।

इसके पश्चात् वसुदेवने अवन्तिसुन्दरी, शूरसेना और जीवयशा राजकुमारीसे विवाह किया। यहाँसे वह अरिष्टपुर नगर गया।

अरिष्टपुरके राजाका नाम रुधिर था, जो युद्धमें बड़ा प्रवीण था। उसके स्वर्ग की देवीके समान सुन्दर मित्रा रानी थी। राजाके बड़े पुत्रका नाम हिरण्यनाभ था, जो अनेक नयों का ज्ञाता, रणमें बूरबीर, महापराक्रमी और शस्त्र-शास्त्र विद्याओंमें महानिपुण था। राजाकी लड़कीका नाम रोहिणी था, जो चन्द्रमाकी रानी रोहिणीके सहश मुन्दर थी। जब राजकुमारी रोहिणी विवाहके योग्य हो गई, तब उसके पिताने उसका स्वयम्भर रचाया।

स्वयम्भर मण्डपकी सजधज और शोभा अवरण्नीय थी। उसमें रोहिणीके विवाहके इच्छुक हर एक आगतुकके बैठनेके लिए सुन्दर मण्डिमय सिहासन लगे थे। स्वयम्भर मण्डपमें राजा जरासिंध और राजा ममुद्रविजय आदि आये थे। वहाँ वसुदेव भी भाइयोंसे अलक्ष्य अपना भेप वदले वाजा वजाने वालोंमें हाथमें बीणा लिए बैठा था।

जब राजाओंने अपने-अपने स्थान ग्रहण कर लिए, तब सौभाग्य-भूमि स्वयम्भर मण्डपमें अद्भुतशृगारयुक्त राजकन्या रोहिणीने हाथोंमें पुष्पमाला लिए और भुकाये मन्दिगतिसे प्रवेश किया। उसके आगे-आगे परिचय देनेमें अनिनिपुण धाय थी। राजवालाके मण्डपमें प्रवेश करने ही यस्त भर्ती और दूसरे वाजोंसे मण्डप गूँज उठा। सभी राजा और दर्थी अपने-अपने स्थानपर नावधान बैठ गये और सभी को हृषि रोहिणीपर पढ़ी, मानों वे सब अपने कमलस्त्रा नेओंमें रमणा रमगत और प्रन्ती न रहे हो। उसका रूप देखते ही सबके हृदयोंमें दाँड़ा उत्त व्याकुलता पैदा हुई। हरएकबी यही उच्छ्वा थी कि यह उमे थरे। जिस रोहिणीने स्पष्टकी चर्चा मुनने मात्रमें उसे गरमानेवी उच्छ्वा उनके हृदयोंमें उत्पन्न हुई थी, अब उसे नाक्षान् त् नहीं हर और दमुणित हो गयी। उसके स्पष्टके वर्गान्तरे अवगम्य ही को घनुसाग ना यक्षि प्रज्वलित हुई थी, वह उसके दर्शन कर दाक्षमें और भारा उठी।

स्वयम्बरमण्डपके प्रवेश द्वारके एक सिरेसे राजकन्या रोहिणीने हाथोमें वरमाला लिए धायके पीछे चलना आरम्भ किया। चतुर धाय बड़े मीठे वचनोसे आगन्तुक राजाओंके वश, पराक्रम, गुणों, नाम तथा स्थान आदिका परिचय देती हुई कहने लगी—“हे राजकन्ये ! यह वसुधाका राजा जरासिन्ध है। गरत्की पूर्णिमाके चन्द्र सदृश जो श्वेत छत्र इसके सिर पर है वह तीन खण्डको जीतनेसे जो यश इसने पाया है, उस यशका द्योतक है। सब भूमिगोचर विद्याधर इसके आधीन है, मानो स्वयं चन्द्रमा रोहिणी देवीका सग तजकर तेरे प्रलोभनवश यहाँ आया है। यदि तेरी इच्छा हो, तो इसे वर ले ।” रोहिणीने उसकी तरफ हृष्ट उठाकर न देखा और आगे बढ़ गई ।

तब धायने अगले राजा का परिचय देते हुए कहा—“हे पुत्री ! यह सूर्यपुर नगरके अधिपति राजा अधक वृष्टिका पुत्र राजा समुद्र विजय अपने भाइयों सहित यहाँ विराजमान है। सभी भाई समस्त गुणोंसे पूर्ण हैं। यदि तेरी इच्छा हो, तो इनमे मे किसीको चुन ले ।” राजकन्या चुपकेसे आगे बढ़ गई । तब धायने कहा—“हे पुत्री ! यह राजा पाण्डु है। यह विदुर है। यह दमघोप राजा है। ये यगोघोप और दत्तवक है। यह महापराक्रमी राजा शत्र्यु है, जिसका नाम शत्रुओंके मनमे शूलके समान चुभता है। इस प्रकार अनेक राजाओं का परिचय देती हुई धाय आगे बढ़ी । उसके पीछे राजकुमारी रोहिणी थी। फिर राजा चन्द्रवक्र, राजा कालमुख, राजा पुण्डरी-काक्ष, राजा मतस्या, राजा सजय, राजा सोमदत्त अपने पुत्रों सहित धाय के द्वारा परिचित कराये गये। पर रोहिणीके पग कही न रुके। वह आगे बढ़ गयी। तब धायने राजा अमुमति और उसके पुत्रों, राजा कपिल, अधिपति विपुलक्षण, नृपपद्मरथ, राजा सौमक, राजा सौम सौम्यक, देवोंके समान राजा दिवक और राजा श्रीदेव-का परिचय उनके वश, नगर तथा गुणोंको बताते हुए दिया और कहा कि ये सब राजा उसके सौभाग्य गुणसे आकृष्ट होकर स्वयम्बर-

मण्डपमें पधारे हैं। धायने उसे समझाते हुए कहा कि वह किसी एकमें अपने चित्तको लगाकर योग्य वरको प्राप्त करे और अपने माता-पिता तथा कुटुम्बी जनोंकी चिन्ताको दूर करे। धायने रोहिणीसे कहा—“हे पुत्री! तेरी विवाह योग्य अवस्था को देख-देखकर चिन्ताके कारण तेरे माता-पिताकी भूख और नीद सब जाती रही है। इसपर राजकन्या ने उत्तर दिया—“हे माता! तूने जो-जो राजकुमार अब नक दिखाये हैं, उनमें से किसीपर भी मेरा मन अनुरक्त नहीं हो गहा है। वास्तवमें तो वरको देखने मात्रसे ही हृदयमें स्नेह उत्पन्न होता है, तेरे कहनेसे नहीं। जैसे मुनिके मनमें न तो राग, न द्वेष मोह होता है, वैसे मेरे मनमें इन राजाओंके प्रति किसी प्रकारकी उच्छ्वास नहीं है। वता मैं क्या करूँ? अब तुम मुझे इनसे भिन्न कोई ऐसा पुरुष दिखाओ, जिसे विधिने मेरा वर रचा हो।” जब दोनोंमें ये वाते हो रही थीं, तभी राजकुमारी की दृष्टि वसुदेव पर पड़ी। वसुदेवके हाथमें मादल और बीणा थीं। वह उसे बजा रहा था। वाजोंकी ध्वनि राजकुमारी के चित्तमें जा वसी। उसके पाव वही नक गये। धाय भी रोहिणीके मनके भाव को समझकर उस बाब्कका परिचय देने लगी। पर क्या परिचय दे, यह वह न जानती थी। फिर भी धाय बोली, “हे राजकुमारी! तेरे मनको हरनेमें नमर्यं यह राजा हम बीमा बजाने वाला प्रकट हुआ है। यदि तेरा मन उसे न्योकार दरे, तो तू उसे वर ने।” तब रोहिणी अन्तिम निर्गम्य बन्नेके विचारगे वसुदेवको निरसे पावतक ध्यान पूर्वक देखने लगी और राजाओंके गभीर लक्षणोंमें पूर्ण देवोंके तुन्य इसे पाकर उनली तरफ आगे बढ़ी। उन दोनोंकी दृष्टि मिलनी थी, कि वे दोनों एक दूनरेपर आमतज नहीं और दोनोंकी अभिन्नापा बढ़ गयी। एवं रात्रिगीरे वसुदेवने गनेमें बगमाना ढाल दी। वसुदेव उसमें प्रसुनिष्ठ द्वे उठा। रात्रिगीरे वसुदेवनी बगलमें बैठी ऐसी लगती दी, ऐसे चन्द्रनाहि गभीर रात्रिगीरोंभावमान होती है। नगे मिलाप के द्वारा यानदर युग्म बदला और उच्छ शराने वह अपने अगलों

पतिके अगसे सटकर बैठ गयी। दोनोंने एक नया सुख अनुभव किया।

वरमाला डालनेपर उपस्थित राजाओं, दर्शकों और कुदुम्बी-जनोंके हृदयोंमें भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुईं। स्वयम्बरमें जो सुबुद्धि राजा बैठे थे, उन्होंने प्रसन्न चित्तसे स्वयम्बरकी मर्यादा-को निभाते हुए, रोहिणीके चुनावकी प्रशासा करते हुए कहा, कि इन दोनों का सयोग रत्न और कचनके मिलाप सदृश सुन्दर है। उन्होंने कन्याकी निपुणताकी प्रशासा की कि उसने कितना योग्य वर चुना है। उन्होंने यह भी कहा कि यह अवश्य कोई बड़े वगंगा राज-पुत्र है, पर अपना कुछ छिपाये क्रीड़ाके लिए धूम रहा है।

पर जो राजा दुर्बुद्धि थे, उन्होंने रोहिणीके इस चुनावको अपना अपमान समझा और उसके कामको अयुक्त कहा कि इतने कुलवन्त राजाओंके पुत्रोंको छोड़कर इसने एक वाजत्रीके गले में वरमाला डाली है। यह समस्त राजाओंका अपमान असह्य है। स्वयम्बरका यह अर्थ नहीं कि हर कोई पुरुष हर किसी स्त्रीको वरे। यह तो अति प्रसगदोष है। यह क्यों कि ऊँच-नीच कुलका विचार ही न रहे? इतने बड़े पुरुषोंके बीच इस रक्को आनेका अवसर क्यों दिया गया? यहाँ अकुलीनका प्रवेश ही अयोग्य है। उन्होंने चुनौती देते हुए कहा, कि यदि यह कुलवत है तो अपना कुल प्रकट करे, बताये, वरना यह नीच है और नीचको यहाँसे निकाल देना चाहिए और यह कन्या किसी राजपुत्रका प्ररिणाय करे।

इस पर महाधीर वसुदेव उन क्षुब्ध राजाओं से कहने लगा, “हे क्षत्री पुत्रो! आपमें जो सत्पुरुष है और जो मदोन्मत हैं, वे सब मेरी वात ध्यानसे सुनें। स्वयम्बरका यही नियम है कि कन्या जिसको वरनेकी इच्छा करे, उसे ही वरे। यहाँ राव और रक्का विचार नहीं चलता। कन्याके माता-पिता और भाइयोंको कोप नहीं करना चाहिए। यहाँ किसीकी आज्ञा प्रधान नहीं है। स्वयम्बरमें कन्याकी इच्छा ही निर्णायिक है। चाहे कोई महाकुलवत, रूपवत, भाग्यवान्,

या बनवान् हो, या कोई अकुलीन, कुरूप, या दरिद्र हो, जिसे कन्या वरे, वही कन्याका वर होता है। यहों कुल या सौभाग्यका नियम नहीं चलता। इस कन्याने कुल-सौभाग्य निरख कर वरमाला डाली है, या इन्हे विना जाने, आपको इस वाद-विवादसे क्या प्रयोजन? और यदि इस पर भी आपमे से कोई अपने पुरुषार्थके घमण्डसे शात न हुआ, तो उसे मैं अपने वारणोसे शात करूँगा। जब मैं धनुष चढ़ाकर कान तक खेंच कर वाण चलाऊँगा, तब सबको लालूम होगा कि मैं कैसा वीर हूँ।”

वमुदेवकी यह ललकार सुनकर राजा जरासिधने कोप करके जब राजाओंसे कहा, “ये वाजत्रीकी विपरीत बुद्धिकी वाते हैं। इसे बाँधो। कन्याका पिता रूधिर अपने पुत्र सहित अविवेकी है, जो इन्होंने स्वयम्भर गानामे अकुलीनको आने दिया। इसलिए राजा रूधिरको भी पुत्र सहित पकड़ लो।”

जो दुर्जन राजा पहले से ही क्रुद्ध बैठे थे, वे राजा जरासिध अर्धचक्रीकी आज्ञा पाते ही महाप्रज्वलित होकर युद्धके लिए तैयार हो गये। परन्तु जो विवेकशील मर्यादा-प्रेमी राजा थे, वे अपनी सेना चहित दूर निष्पक्ष होकर अलग जा खड़े हुए। जो राजा रोहिणीके पिता न्धिरके पक्षमे थे, वे विरोधियों को पराजित करनेकी इच्छासे शरदोंके नाय लैस होकर तत्काल राजा न्धिरके समीप आ गये। राजा न्धिरका बड़ा पुत्र राजदुमार हिरण्यनाभ थाँखे रूधिरके समान लाल हारके अपनी बहन रोहिणीको रथमे चढ़ाकर अपने हथियारबन्द योद्धाओं नहिन देखा हो गया। उधर राजा रूधिर अपने योद्धाओंको जरा भयदुर घटवाने कहने लगा, “हे मुझटो! आप महारथी हैं। नीरा यादों योग्य और उचित हो, वैसे ही यूद्ध करो।”

उसी ममत राजदुमार वग्नुदेवने अपने श्वभूर राजा रूधिरसे शर्मिदन लेना आगम्भ दिया, “हे पूज्य! मुझे दिय अन्धों और मामिला गम्भीर उन्होंनके रथ शीघ्र दो और मुझे आज्ञा करो कि इन

भूपतियोसे मैं किस दिशामें युद्ध करूँ । फिर देखे कि वे कुलीन मुझ अकुलीनके बाण कैसे सहारते हैं ।” वसुदेवकी यह बात सुनकर राजा रघुरने समझ लिया कि यह बड़े वशसे उत्पन्न महाशूरवीर पुरुष है । तब राजा रघुरने वसुदेवको महातेजस्वी घोड़ोवाला बड़ा रथ दिया, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण था । जिस समय वसुदेव रथ पर चढ़ा, उसी समय महाशूरवीर विद्याधर दधिमुख अपने द्विव्य रथपर सवार उसके समीप सहायताके लिए आ गया, मानो वसुदेवकी विजयका मनोरथ पूरा करने दिव्यास्त्रो अर्थात् देवोपनीत शस्त्रोंसे देवीप्यमान महामित्र आया है । विद्याधरने वसुदेवको नमस्कार करके कहा, “आप मेरे रथ पर चढ़े, मैं आपका सारथी बनूँगा । आप शत्रुओं के समूहको युद्धमें जीतें ।” वसुदेव दधिमुखके रथमें सवार हो गया । वह धनुष हाथमें लिये हुए था और कवची-बख्तर-पहने हुए था । रथमें नाना प्रकारके बाण तरकशोंमें लगे थे ।

अपने नवपति वसुदेवको शस्त्र सुसज्जित योद्धा रूपमें देखकर रोहिणीने अपने भाग्यको सराहा कि उसका पति केवल अच्छा वाजनी ही नहीं है, वरन् वीर सुभट भी है । - पर अनपेक्षित रूपसे रण छिड़ जानेके कारण रोहिणीका मन अनिष्टकी आशकासे भी भर गया । रण आखिर रण है । उसके परिणाम या जय-पराजय-की भविष्यवाणी कौन कर सकता है ? रणमें क्षणोंमें स्थिति पलटती है । हारता हुआ पक्ष जीत जाता है और जीतता हुआ पक्ष हार जाता है । रोहिणी भी राजकुमारी थी । जवान, सुगठित शरीरवाली बलवती वीरागना थी । उसने भी शस्त्र चलाना, धनुर्विद्या और युद्ध कीशल सीखे थे । युद्धका नाम सुनकर उसकी भुजाएँ फड़क उठी । उसका पति लड़े और वह देखती रहे ? स्वयम्बर में आये हुए कुछ राजागण अन्यायसे मर्यादा और विवेकको छोड़कर उसके चुनावको चुनौती देकर उसके पतिसे लड़े और वह सब कुछ सहन करे ?

असम्भव । उसने झटसे पतिसे प्रार्थना की, “हे नाथ ! मुझे आज्ञा दो कि मैं भी युद्धमें आपका साथ दूँ । मेरे आपकी अनुगामिनी श्रवण्य हूँ, पर इस युद्धमें मैं आपसे आगे रहकर अपने युद्ध कौशलसे इन दुर्जनोंको परास्त करना चाहती हूँ । इनके ग्रयुक्त व्यवहारका मजा इनको चखना चाहती हूँ ।” रोहिणीके ये वीरता पूर्ण शब्द सुनकर वसुदेव मनमें बड़ा प्रभाव हुआ । पर वे अपने होते उसे किस प्रकार युद्धमें कूदनेकी अनुमति देते ? वसुदेवने रोहणीसे कहा, “प्रिये, इन राजाओंका ग्रयुक्त युद्धके लिए तत्पर होना मेरे पौरुष, पराक्रम और वशकुत्तादि को चुनाती है । अत मैं ही इनसे निपटूँगा । तुम नि शक होकर मेरे युद्ध-कौशलको देखो । मेरे होते तुम्हें लडनेकी आवश्यकता नहीं । तुम तो मेरी विजय और अपने सौभाग्यरक्षाकी भावना करती रहो । यही पर्याप्त होगा ।” पतिके इन वचनोंसे आश्वस्त हो, रोहिणी युद्ध देखने लगी ।

रोहिणीके पिता राजा रुधिरकी चतुरगी महान् सेना शत्रुओंके विनाशके लिए रणभूमिमें उत्तर आयी ।

कुमार वसुदेवने शत्रुओंके मेनारूपी समुद्र पर एक दृष्टि डाली । सामने शत्रुओंकी सेना समुद्रके समान थी, जिसका पार ही दिखाई न देता था । दोनों मेनाओंमें महायुद्ध आरम्भ हुआ । घोड़ोंकी हिनहिनाहट और शवनाद समुद्रकी गरजनाके समान लग रहे थे । शायी भावार हाथी नवारसे, घुड़सेना घुड़सेनासे और प्यादे प्यादोंने लड़ने लगे । रथोंमें नवार योद्धा रथोंमें भवार योद्धाओंने लड़ रहे थे । सावन्नोंके दागोंमें आकाश आच्छादित हो गया । आकाश में इन्हां गर्दं चढ़ा कि गूँयं भी दीप्तिना बन्द हो गया ।

इस भर्यकर युद्धमें वीर योद्धाओंके भी छक्के टूट रहे थे, फिर शायरीता तो कहना क्या ? नद्दी, बाल और गदाओं की मारी सामग्री रुदिरदी उत्तरांगुणी भारतीय अन्दार द्या गया । गहन

हाथी पर्वतो के समान गिर रहे थे, बड़े-बड़े घोड़े और शूरवीर भूप भी रणमें इधर-उधर पड़े थे । सैकड़ों रथ टूटकर चकनाचूर हो गये ।

जब वसुदेवने देखा कि शत्रुओंकी सेनासे उसकी सेना दब सो रही है, तब वसुदेव और हिरण्यनाभ दोनों अपनी सेनाको थामने और हिम्मत बढ़ानेको तैयार हुए । फिर इन दोनोंने हृष्टि, मुष्टि और बाणोंके सघानसे ऐसे वारा चलाये, जैसे शत्रुओंने कभी न देखे थे, वे जिसको लगते, वही धड़ामसे गिर जाता । इनके बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाका कोई हाथी, घोड़ा, रथ और मनुष्य न बचा, सबको भेदा । अब तरह-तरहके दिव्य वारा छोड़े गये । वसुदेवने अपने बाणोंके शत्रुओंके यश-चिह्न छत्रोंको और उनके सिरोंको उड़ाया । इधर वसुदेव योद्धाओंसे भयानक युद्ध कर रहा था, उधर उसका साला रोहिणीके भाई हिरण्यनाभने शत्रु सेनामें एक बड़े राजाके पुत्र पौड़ि-कुम्बरसे भयकर युद्ध आरम्भ किया, वे दोनों राजकुमार ऐसे लड़ रहे थे, जैसे शेरके बच्चे आपसमें लड़ते हो । इधर हिरण्यनाभने पौड़िकुम्बरकी ध्वजा और छत्र उड़ाये, उसके सारथीको मारा, उसके रथके घोड़ोंको मार गिराया, उधर पौड़िकुम्बरने भी मारे क्रोधके बदलेमें उसकी ध्वजा तथा छत्र गिराये और सारथी और घोड़े आदि मारे । इतना ही नहीं उसने हिरण्यनाभको भी रथपर से भूमि पर डाल दिया ।

जब हिरण्यनाभ पृथ्वीपर गिर पड़ा, तभी वसुदेवभी उसकी सहायताके लिए उसके पास जा पहुँचा । उसने अपने अर्धचन्द्र वाणसे पौड़िकुम्बरका धनुप तोड़ डाला और फिर हिरण्यनाभको अपने रथमें चढ़ाया । उसने अपने वारोंकी वर्षसे पौड़िकुम्बरको आच्छादित किया । कुमार पौड़िकुम्बरकी सहायताके लिए जो योद्धा वसुदेवके विरुद्ध आये, उसने अपने तीक्षण वारोंसे उनके वारा भेदे और उसकी सेनाको पराजित किया । इसपर सबने वसुदेवकी वीरताकी प्रशंसा की । सबने यही कहा कि ऐसा सुभट अब तक उनके देखनेमें नहीं

आया। एक तरफ अकेला वसुदेव था, दूसरी तरफ ग्रनेक योद्धा। इन पर न्यायवान राजाओंने कहा, “आज तक यह अन्याय नहीं देखा कि एकसे ग्रनेक लड़े। एक योद्धासे एक ही योद्धाको लड़ना उचित है।” तब जरासिंघने धर्मयुद्ध देखनेकी इच्छासे राजाओंको आज्ञा दी, “इन कन्या रोहिणीके लिए एक-एक नृप वसुदेवसे लड़े। जो इसको जीतेगा वही कन्याका पति होगा।”

तब दूसरे राजा तो दूर खड़े-खड़े युद्धको देखते रहे, पर शत्रुघ्निय राजा दन्तवक और राजा कालमुख वसुदेवसे वारी-वारीसे युद्ध करने आये। उन सबको वसुदेवने पराजित करके उनको प्राण दान दिये। वसुदेवकी इस विजयसे राजा झंधिर और उसके सभी साथी बड़े प्रभान्न हुए, पर विपक्षियों को चिना हो गयी। इसपर जरासिंघने राजा नमुद्रविजयमे कहा, “हे नृप! आप शस्त्र-विद्यामे प्रवीण हैं उन्हींने रणमे उस मानीका मान भग करो।” जरासिंघ की आज्ञा-पर राजा नमुद्रविजय युद्धके लिए तत्पर हो गया, क्योंकि युद्ध और भेनाका यह नियम है, सब आधीन या साथी योद्धा सबसे बड़े अधिकारीकी आज्ञानुभार कार्य करे, उसीका नाम सैनिक अनुग्रासन है।

राजा नमुद्रविजयने आने सारथीको अपना रथ विरोधी योद्धा पर चलानेका आदेश दिया, जिसका पालन सारथीने किया।

ग्रन्थान्मुद्र विजय था वहाँ किसी दूसरे राजाको यह मालूम न था, कि नामनेक उनेवाला वह कीर योद्धा नमुद्रविजयका भाई ही है। पर यन्मुद्रेयको तो गव कुछ मालूम था। उनलिए अपने पिता कुछ ज्ञान खानापाल रथ अपने ऊपर आता देनगर उसने अपने भाग्यी दिग्गजर दधिमुग्नमे कहा, “देनो, यह भेन बटा भाई नमुद्र-विजय है। इसी सरद अपना रथ धीरे-धीरे चलाओ। ये मेरे गुरु-जन। इसने एक गीनिमे यद रखना है।” दधिमुग्नने कहा नि उनके सारे गुरु-जन मेरे गुरु-जन हैं। यह रथार उपिमुग्नां राजा नमुद्रविजयकी नरप गीरे-धीरे रथ चलागा।

इधर समुद्रविजय ज्यूं-ज्यूं आगे बढ़ा और वसुदेवको देखा, उसके हृदयमें भ्रातृस्नेह उत्पन्न होने लगा। तब उसने अपने सारथीसे कहा, “इस योद्धाको देखकर मेरे हृदयमें स्नेहके भाव उत्पन्न हो रहे हैं। इसका क्या कारण है? मेरी दाहिनी भुजा और नेत्र फड़कते हैं। इसलिए मेरा प्यारा भाई मिलना चाहिए। इस मारने योग्य शत्रुको देखकर मेरे हृदयमें ऐसा अनुराग-भाव क्यों पैदा हो रहा है? ये चिह्न तो भाईके मिलनेके हैं। पर योग पड़ा है शत्रुसे रणका। सो यह बात कैसे बने? देश और काल-विरुद्ध यह मिलाप होता दिखाई नहीं देता।”

इस पर सारथीने उत्तर दिया, “हे प्रभो! शत्रुको जीतनेके पश्चात् बन्धुका अवश्य मिलाप होगा। हे राजन्! यह शत्रु बड़ा योद्धा है। अनेक राजा इसे युद्धमें न जीत सके। इसलिए सब राजाओंके सामने ऐसे शत्रुको जीतनेसे आपकी प्रशंसा होगी। आप जरासिधसे ग्रादर-सम्मान पायेगे।”

सारथीकी उपर्युक्त बात सुनकर समुद्रविजय बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वसुदेवकी तरफ रथको बढ़ाया। इधर राजाने अपना धनुष चढ़ाया और बाण साधा। उधर वसुदेवने भी अपना बाण साधा।

समुद्रविजय सामनेके योद्धाको अपना छोटा भाई वसुदेव नहीं समझता था, इसलिए विरोधी पक्षका योद्धा समझकर उसे सम्बोधित करने लगा, औरोसे रणमें तेरी धनुष बाणकी प्रवीणता हमने बहुत देखी है, वैसी ही प्रवीणता हमें भी दिखाओ। यह ठीक है कि तेरी शूरवीरता रूपी पर्वतपर मानका शिखर शोभायमान है, पर याद रखो, मैं राजा समुद्रविजय हूँ। मैं अपने बाणों की वर्षसि तेरे मान रूपी शिखरको आच्छादित कर दूँगा।”

वडे भाईके शब्द सुनकर वसुदेव कुमारने अपना शब्द और रूप बदल कर कहा, “हे राजेन्द्र! बहुत कहनेसे क्या होता है?

आज रणमे आपका और मेरा पराक्रम प्रकट होगा । आप समुद्र-विजय हैं तो मैं सग्राम-विजय हूँ । अगर तापको विज्वास न आता हो, तो अपना वारण गीव्र चलाओ ।”

कुमार वसुदेवके ये वचन सुनकर समुद्रविजय विना जाने छोटे भाई पर वारण चलाने लगा । वसुदेवने बड़े भाईके वारणोंको वीचमे ही काट दिया । पर उसने स्वयं जो वारण चलाये, वे बड़े भाईका अंग बचाकर चलाये । वहुत देर तक सामान्य शस्त्रोंसे युद्ध हुआ, फिर समुद्रविजयने सोचा कि यह सामान्य शस्त्रोंसे पराजित होने वाला नहीं है । तब उसने दिव्य ग्रस्त्र—जैसे अग्निवारण और जलवारण चलाये, जिन्हे वसुदेवने जलवारण और वायुवारणसे रोका । इस प्रकार दोनों योद्धाओंमे दिव्यास्त्रोंसे महायुद्ध हुआ । जब उसके सभी दिव्य वारणोंको वसुदेवने वीचमे रोक दिया, तब समुद्रविजयने एक और वर्णभवकर क्षम्प्रताप वारण छोड़ा, उसको भी वसुदेवने वीचमें ही काट दिया ।

अब वसुदेवने अपने वारणोंसे समुद्रविजयके रथको तोड़ा और उसके नारवी और घोड़ोंको घायल किया, पर बड़े भाईके अगका वचाद लिया । गजा नमुद्रविजय उस योद्धाकी प्रवीणता और युद्ध-कीमत के बहुत प्रभावन हुआ और उसकी प्रशंसा की । अभी तक भी नमुद्रविजयने छोटे भाई को न पहचाना और उसपर और अरन लगाये, जिन्हे वसुदेवने फिर रोक दिया ।

दरअंदेर तब युद्ध करनेके पश्चात् वसुदेवने अपना परिनय बदल भाईसे दोनों गिरे वह पथ लिये कर द्वाणमें दाढ़ कर भाईसे छोड़ा

‘इ मात्राम् । मैं यासका नेत्रक छोटा भाई वसुदेव हूँ, जो दिलात् रामसे निराजा था । यह जी वर्षों पश्चात् आपके जलान्ति थाया हूँ और यहाँ नरसार्गनिर्दर्शी नमकार लगाना है ।’

इस पत्रको पढ़ते ही भ्रातृ-स्नेहसे उसका हृदय भर आया, उसने धनुष और वाण धरती पर डाल दिये। वह स्वयं रथसे उतरकर भाईकी तरफ बढ़ा। तब वसुदेव भी रथसे उतर कर दूरसे ही बडे भाईको प्रणाम करके उनके पाँव पड़ा। तब राजा रामुद्रविजयने उसे उठाकर छातीसे लगाया। दोनों भाई छाती मिलाकर मिले और उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। फिर समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे बडे दूसरे अक्षोभ आदि आठों भाई वसुदेवसे मिले। इस भ्रातृमिलापको देखकर राजा जरासिंध आदि उपस्थित राजा और रोहिणीका पिता रूधिर, भाई हिरण्यनाभ और कुटुम्बीजन सभी प्रसन्न हुए। सबने रोहिणीके सीभाग्यकी प्रशंसा की और उसे चिर सुखके आशीर्वाद दिये।

फिर शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमें वसुदेव और रोहिणीका विवाह कर दिया गया। दोनों पक्षोंमें बड़ा हर्ष मनाया गया। राजा रूधिरके भावभीने आतिथ्यसत्कारके पश्चात् सभी राजा अपने-अपने स्थानको लौट गये। विद्याधर दधिमुख भी वसुदेवसे आज्ञा लेकर उसे प्रणाम कर अपने स्थान चला गया।

सब स्थानों पर वसुदेवके पराक्रम और शूरवीरताकी प्रशंसा होने लगी।

वसुदेव नववधु रोहिणी को पाकर उसके प्रेमये इतना अनुरक्त हुआ कि वह अपनी पहली सभी पत्नियों को भूल गया।

वसुदेवके पूर्वजन्मके महातपके पुण्यका ही यह फल था कि उसे रोहिणी सी पत्नी, युद्धमें विजय तथा यव और सब भाई मिले।

वन्धु-वन्धु समागम

एक रात रानी रोहिणी ने चार स्वप्न देखे । (१) चन्द्रमा समान उज्ज्वल वर्णका मदोन्मत्त गर्जता हुआ गजेन्द्र, (२) पर्वत के समान ऊँची लहरों वाला घट्ट करता समुद्र, (३) सम्पूर्ण चन्द्रमा और चौथे ने कुन्दके पुष्प के समान सिंह त्रपते मुख में प्रवेश करता देखा । प्रात् स्नानादिसे निवृत्त होकर वह कमलनयनी अपने पति वसुदेव के पास जाकर उन स्वप्नोंका फल पूछने लगी । स्वप्नोंका वर्णन सुनकर राजा वसुदेव ने उसे बताया, “हे प्रिये ! तुम एसे महापुरुषको जन्म दोगी, जो गजेन्द्र के समान बड़ा, समुद्र के समान गर्भीर, पूर्ण चन्द्र के नमान अनेक कलाओं का धारक, महाकातिवान और अद्वितीय महाधीर योद्धा और पृथ्वीपति होगा । रोहिणी-पति के मुग्धसे उन प्रात् स्वप्नोंका युभ फल सुनकर ग्रति हृषित हो चन्द्रराजी भी यक्षिक सुन्दर रंग रही थी ।

पर नामह सुनिश्च जीव महा युक्त स्वर्ग में देव था । वह वहाँ में एवरलर गोंगीहि गर्भमें गाया । नी महीने पूरे होने पर रानीने उन नवायमें नुरायर्दा चन्द्रमाके गृहग्र बलभद्रको जन्म दिया । उनके जन्मगति शुद्धिर रोहिणीहि पश्चिमीमें वहुत हर्ष मनाया गया । उनके जन्म शुद्धिर रानी राजा वहुत प्रगल्प हुए । उन वालक का नाम राजा राम गया । उन वालक माता-पिता आदि नभी कुटुम्बीजनों की विधि रख दिया ।

राजा राम रामराज्यादि अनुरोद के भगवन्नी गजा विश्वामित्र के दो भाइ राम और लौकी चर्चा उन्होंने गमीप था । वह

एक महा दिव्य मूर्ति विद्याधरी आकाशसे उतर कर वसुदेवके पास आकर उसे कहने लगी, “हे देव ! आपकी रानी वेगवती और मेरी पुत्री वालचन्द्रा आपके चरणारविद का दर्शन चाहती है। वेगवती तो आपकी विवाहिता है ही, पर वालचन्द्रा अभी कुमारी है और वह विवाहकी आकाशमे बैठी है। इसलिए आप शीघ्र चलो और उससे प्रणय कर उसे सुखी करो। विद्याधरीकी वात सुनकर वसुदेवने बडे भाई समुद्रविजयकी तरफ देखा। बडे भाईने सब वात समझकर वसुदेवको शीघ्र जानेको कहा।

इधर वसुदेव विद्याधरीके साथ गगन वल्लभपुरके लिए चला, उधर समुद्रविजय आदि सब भाई सौर्यपुर चले गये। गगन वल्लभपुर जाकर वसुदेव वेगवतीसे मिला और उसने वालचन्द्रासे विवाह किया। नवीन बधु वालचन्द्रा और वेगवतीके साथ कुछ दिन सुखसे रहनेके बश्चात् वसुदेव उन दोनोंके साथ सौर्यपुर जाने के लिए तैयार हुआ। वालचन्द्राके पिता काचनदष्ट और वेगवतीके भाई मानसवेग बहुत द्रव्य देकर बडे आदर सम्मानसे उन्हे विदा किया।

एनीपुत्रकी पूर्वजन्मकी माता नागकुमारीने रत्नोका देदीप्यमान विमान बनाया, जिसमे वसुदेव, वालचन्द्रा और वेगवती आदि जयपुर आकर विद्युद्वेग से मिले। वहासे वसुदेव अपनी पत्नी मदनवेगा को लेकर विमान मार्गसे गधसमृद्ध नगरमे गये। वहासे राजा गधारकी पुत्री प्रभावतीको साथ लिया। इसी प्रकार वसुदेवने नीलयगा, प्रयामा, प्रियगसुन्दरी, बन्धुमती, सोमश्री, रानी रत्नवती, चारुहासनी, अश्वसेना, पद्मावती, पत्नी कपिला और पुत्र कपिल, मित्रश्री, गर्वसेना, विजय-सेना और उसके पुत्र अक्रूरहण्ठि, रानियोको उनके नगरोंसे लेकर राजा वसुदेव कुलपुर नगर आया। वहासे पद्मश्री, अवन्ती सुन्दरी, सूरसेना और अपने पुत्र जरा और जीवयशा तथा दूसरी सभी रानियोको उनके स्थानोंसे लेकर शीघ्रगामी विमानमे बैठकर सब सूर्यपुर नगर लोटे। सूर्यपुर नगरकी प्रभा सूर्यके

समान देदीप्यमान थी और वह गहर गीत, नृत्य और वादित्रोंकी मवुर घ्वनिमे रागरंग में निमग्न मालूम होता था। वहाँ ललित-कलाए खूब उन्नति पर थी।

वसुदेव तो विमानमे सभी रानियों तथा पुत्रों सहित नगरके बाहर ठहरा। इवर जो धनवती देवी इनको विमानमे विठाकर लाई थी, वह राजा समुद्रविजयको वसुदेव आदिके आगमनका समाचार कहने और वधाई देने नगर मे गयी। पत्नियों सहित छोटे भाई के आनेका समाचार सुनकर राजा समुद्रविजय और उसके आठों भाई वडे प्रमन्त हुए और उनके आगमनकी खुशीमे समस्त नगरको सजवाया। फिर राजा समुद्रविजय, उसके सभी भाई और नगरके छोटे-वडे, नादानगुनधा विजिष्ट स्त्री-पुरुष वसुदेव आदिके स्वागतके लिए नगर-के बाहर गये। वसुदेवने विमानमे उत्तर कर वडे भाई समुद्रविजय तथा दूसरे सभी भाईयों को प्रणाम किया। वसुदेवकी सभी रानियोंने अपनी जिठानियोंके चरणन्पर्णे करके प्रणाम किया। जिठानियोंने भी देवरानियोंको छानीने लगाया और अनेक आशीर्वाद दिये, कि वे सभी नदा सृष्टिन हो, पुत्रवती हो और चिर सुखी हो। सबने परम्परमे यायायोग्य सम्मान किया। कितना प्रेममय मिलन था! वह सबौंह हृदय मारे दर्दके प्रफुल्लित हो रहे थे।

नगरमे लौटकर वसुदेव भाईयोंके नाथ अति सुगमे रहने लगा। ऐसी धनवती समुद्रविजय और वसुदेवने विदा होकर अपने स्थान लो जाए गयी।

विद्या और कलाएं सिखानी आरम्भ की। एक बार वसुदेव धनु-विद्यामे प्रबोण कसादि अपने शिष्योंको जरासिधको दिखाने के लिए राजगृह नगर ले गया। जरासिधकी आज्ञासे घोषणा हुई “सिहपुर नगरका महा उद्धत तथा अति प्रवल राजा सिहरथ सिहोके रथ पर सवार फिरता है। जो कोई वीर पुरुष उसे जीवित पकड़ कर राजाके सामने पेश करेगा, राजा उसे महा सामन्त मानेगा, मानधनसे पुरस्कृत करेगा, रानी कालिदसेनासे उत्पन्न अपनी पुत्री जीवयशा उसे विवाहेगा और जो देश वह मांगेगा, राजा उसको वही देश देगा।”

जब वसुदेवने यह घोषणा सुनी, तब उसने अपने सब शिष्य राजकुमारोंको इस घोषणाका विस्तृत व्योरा लानेकी आज्ञा की। व्योरा मिलते ही वसुदेव सिह रथ पर सवार होकर राजा सिहरथसे लड़ने गया। वसुदेवके रथके सिंह तो विद्यामय अर्थात् जादूके सिंह थे और राजासिहरथके रथके सिंह पशु थे। दोनोंमे भयकर युद्ध हुआ, पर अन्तमे राजा वसुदेवकी आज्ञासे उसके शिष्य कसने राजा सिहरथ-को पकड़कर बाध लिया। वसुदेवने प्रसन्न होकर उससे इस वीरता-कामके पूर्ण बदले कोई वर मांगनेको कहा। राजकुमार कसने अपने वरको भविष्यमे लेने का वचन मांगा। वसुदेवने उसकी बात मान ली।

कुछ दिनों के पश्चात् वसुदेवने सिहरथको राजा जरासिधके सामने जीवित बधा हुआ पेश किया। जरासिध सिहरथ को बधा देखकर वसुदेव से बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री राजकुमारी जीवयशा को विवाहने के लिए कहा। इस पर वसुदेवने कहा कि उद्धत राजा सिहरथ को पकड़ने का श्रेय कसको ही है। इसलिए उससे ही जीवयशाका विवाह किया जाय।

तब जरासिधने कसको बुला कर उसका कुल तथा परिचय आदि पूछा। कसने कहा, “हे राजन्! कोसम्बी नगरी मे मद्य-

विक्रेता मजोदरी मेरी माता है।” यह सुनकर जरासिध चिंतित होकर सोचने लगा, कि देखनेमे तो यह राजपुत्र सदृश है, यह कलाली का पुत्र नहीं हो सकता। राजाने तुरन्त कोसम्बीसे मंजोदरीको बुलवाया। वह एक मुद्रा और मजूपा (वक्स) लेकर राज दरवारमे उपस्थित हुई।

राजाके पूछनेपर मजोदरीने बताना आरम्भ किया, “हे राजन्! हमने यमुनाके प्रवाहमे यह मजूपा पायी थी। उसमेसे यह वालक निकला। दया करके मैंने इसे पाल-पोस कर बड़ा किया। हर रोज यह वालक सेकड़ों उल्लहने मेरे पास लाता, पर मैं उनसे न डरी। यह स्वभावसे निर्दयी और शरारती था और छोटे वालकोंके सिर आपसमें भिड़ा देता था। इतना ही नहीं, यह वेश्याओंकी चोटिया पकड़ कर खीचता था और उन्हे परेशान करता था। तब लोगोंकी गिकायतो पर मैंने इसे घरसे निकाल दिया। फिर यह भिक्षाके लिए विदेश चला गया और किसी से गस्त्र-विद्या सीख कर अब गस्त्र-विद्यामें निपुण बन गया है। इसकी माता यह मजूपा है, मैं नहीं हूँ। इस युवक मे जो गुण-दोष है, उनके लिए मैं उत्तरदायी नहीं, यह मजूपा या यह स्वय है।” यह कहकर मजोदरीने वह मजूपा राजा जरासिध को दिखायी।

राजा जरासिधने मजूपा देखी, तो उसमे राजा उग्रसेनकी मुद्रिका पाई। राजाने मुद्रका पढ़ी। उसमे लिखा था —“यह राजा उग्रसेन और रानी पद्मावतीका पुत्र जब गर्भमे आया, तभी माता-पिताके लिए भारी पड़ा। यह अशुभ नक्षत्रमे उत्पन्न हुआ। इसलिए इसको मजूपामे बन्द करके यमुना नदीमें बहाया।”

यह पढ़ कर राजा जरासिधने जान लिया कि यह तो मेरी वहन पद्मावतीका पुत्र है, इसलिए मेरा भानजा है। इससे राजा अति हर्षित हुआ और उसने अपनी पुत्री जीवयशा को कसके साथ व्याह दिया।

कसने सोचा कि मेरे जन्म लेते ही मेरे पिता राजा उग्रसेनने मुझे नदीमे बहाया, इसलिए वह मेरा पिता नहीं, शत्रु है। उसके मनमे पितासे बदला लेनेकी भावना पैदा हो गयी। कसने जरासिंधसे मथुराका राज मागा। राजाने उसको मथुराका राज दे दिया। तब कसने एक बड़ी सेना लेकर जीवयशा सहित मथुरापर चढ़ाई की और अपने पिता राजा उग्रसेनको युद्धमे पराजित करके वाघ कर मथुरापुरीके द्वारमे रखा। फिर आप स्वयं जीवयशा सहित मथुरामे सुखसे राज करने लगा।

कसने मथुराका राज पानेमे वसुदेवकी कृपा समझ कर उसके उपकारसे उत्कृष्ण होने और प्रत्युपकारके विचारसे बड़ी भक्ति तथा आदर-सम्मानसे वसुदेवको मथुरा बुलाया और उनसे अपनी वहन देवकी परणाई। कंसने राजा वसुदेवको बडे स्नेहसे मथुरामे ही कुछ समय अतिथि रूपमें रखा।

एक दिन कसके बडे भाई अतिमुक्तक मुनि कसके घर आहारके लिए आये। रानी जीवयशा उन्हे नमस्कार करके चबलभावसे हसने लगी। इतना ही नहीं, उसने देवकी के रजस्वलापनेके गदे वस्त्र मुनिजीके सामने डालते हुए कहा, “ये आपकी वहन देवकीके आनन्द वस्त्र है। इन्हे देखिए।” इससे बढ़ कर एक मुनि की अविवाय और अपमान क्या हो सकता था?

मुनि महाराज ससार स्थितिके जाननेवाले थे। जीवयशाके ये वचन सुनकर वचनगुप्तिको छोड़ कर कहनेलगे, “यह तेरी बड़ी मूर्खता है, जो शोकके स्थानपर आनन्द मना रही है। इस देवकीके गर्भ से ऐसा पुत्र पैदा होगा, जो तेरे पति कस और पिता जरासिंध दोनोंका घातक होगा।”

मुनिकी भविष्यवाणी सुनकर जीवयशा आखोमें आसू भरकर पतिसे मुनिके वचन कहने लगी। रानीसे ये वचन सुनकर राजा

कस बड़ा चित्तित और गकावान हुआ । उसने अपने जीजा राजा वसुदेवके पास जाकर अपना वचन मांगा और कहा कि स्वामी मुझे यह वर दो कि देवकीका जापा उसके घर हो । वसुदेवको तो इस वृत्तान्त का कुछ पता था नहीं, इसलिए उसने अपनी अनुमति यह कहकर दे दी कि यह तो उचित ही है, कि वहन का जापा भाईके घर हो । परन्तु जब अतिमुक्तक मुनिके वचनका पूरा वृत्तान्त देवकी को मालूम हुआ, तब वह शोकातुर होकर पति वसुदेवसे रोकर कहने लगी, “हे प्रभो ! आपके वहुत पुत्र हैं, पर यदि मेरा पहला पुत्र ही मारा गया तो मैं क्या करूँगी ?”

राजा वसुदेव और उसकी रानी देवकी दोनों सहकार वनमें चारण ऋषिके धारक और अवधिज्ञानी मुनि अतिमुक्तकके पास गये और उन्हे नमस्कार करके उनके समीप बैठ गये । मुनिने उन्हे धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया ।

राजा ने मुनि से पूछा, “हे महाराज, यह कस अपने पिताका बैरी क्यों हुआ ? क्या इस कारणका सम्बन्ध इसके इसी जन्म से है या पूर्वजन्मसे और इसने ऐसा क्या तप किया जिसके फलस्वरूप इसने यह राज-विभूति पायी ? और मेरा पुत्र इस का घातक कैसे होगा ?”

महापुरुषोंका स्वभाव जीवोंके सन्देह दूर करना है । मुनि अनिमुक्तक वसुदेवका सवय दूर करने के लिए कहने लगे, “हे देवोंके प्यारे परम सज्जन ! सुन । इसी मथुरा नगरमें उग्रसेनके राजमे इस कसका जीव पहले भवमें वशिष्ट नामका तापस था । वह पचासिं तपमें प्रवीण था । एक पाव पर खड़ा रहता था और अपनी भुजाको ऊपर उठाये रहता था । यूँ यह तापस ज्ञानसे रहित था, इसने जटाए बड़ा रखी थी और यमुनाके तटपर तप करता था । मथुरा नगर की पनिहारिया यमुनासे पानी लेने आया करती थी । उनमें जिनदास सेठकी दासी प्रयग तिलका भी जल भरने गयी ।

दूसरी सभी पनिहारियोने उस दासीको तापस वशिष्ठको प्रणाम करनेको कहा, परन्तु दासीने कहा, “इस पर मेरी भक्ति नहीं, मैं इसको कैसे प्रणाम करूँ ?” तब इसकी साथिन पनिहारियो ने हठ करके उस दासीको तापसके पावमे डाल दिया। इस पर उस दासीने कहा, “मैं तो धीवरके पाव पड़ी हूँ ।” वशिष्ठ तापसने दासीके इन वचनों को अपना अपमान समझा। उसने राजाके पास जाकर पुकार-की, कि जिनदास सेठने मेरी निन्दा की है। राजाने जिनदास सेठको दरबारमे बुलाकर पूछा कि उसने तापसको क्या दुख दिया है।

सेठ जिनदासने राजाको उत्तर दिया, “हे राजन् ! मैं इस तापसको जानता ही नहीं हूँ, फिर इसे नाराज करनेका कोई प्रश्न नहीं होता ।” तब तपस्वी वशिष्ठने दासीका नाम लिया। इस पर राजाने दासीको बुलवाकर कहा, “हे पापिनी ! तूने तपस्वीकी निंदा क्यों की और इन्हे नमस्कार क्यों नहीं किया ?” दासी प्रियगतिलकाने उत्तर दिया, “हे महाराज ! यह तपस्वी नहीं, धीवर समान कुबुद्धि है। इसकी जटामे अनेक नन्ही-नन्ही मछलियाँ भरी हुई हैं ।” जब राजाने तपस्वीकी जटाएँ खुलवायी उनमे से अनेक छोटी-छोटी मछलियाँ निकली। तपस्वी वडा लज्जित हुआ। लोगोने उसका वहुत उपहास किया और कहा कि भूठा ढोगी तपस्वी है।

तब वशिष्ठ तपस्वी कुपित होकर मथुरासे वाराणसी गया और वहाँ गगाके किनारे तप करने लगा। स्वामी वीरभद्र पाच सौ मुनियो सहित वही गगातट पर पधारे। तब एक पुरुषने अनजानेमे तपस्वीकी प्रशसा की कि यह वशिष्ठ नामक तपस्वी घोर तप करता है। मुनिने उस पुरुषको तपस्वी की झूठी प्रशसा करनेसे मना किया कि अज्ञान तप वडाईके योग्य नहीं है।

मुनिकी यह वात सुन कर तपस्वी वशिष्ठजे पूछा, मैं अज्ञानी कैसे हूँ ?” तब मुनिने उससे कहा, “तुम जीवोको पीड़ा देते हो,

इसलिए अजानी हो । पचामि तपमे छोटे जीवोकी हिसा होती है । इससे सयम नहीं होता । प्राणियोकी दया ही सयम है । तुम संसार से विरक्त हो गये, परन्तु मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चरित्रके कारण अभिमानी हो । और जहाँ अभिमान है, वहाँ ज्ञान नहीं होता । ज्ञान विना सयम कहाँ ? प्राण-संयम विना तेरा तप काया-क्लेश है, शरीरको कष्ट देना है । तुम्हारा सयम-रहित तप मुक्तिके लिए कैसे हो सकता है ? एक जैन धर्ममें ही तप, सयम, ज्ञान, दर्शन और चरित्र है ।” स्वामी वीरभद्रने आगे कहा, “हे तपस्वी ! तेरा पिता मरकर सांप हुआ । वह ईधनमें जल रहा है ।”

मुनिकी उपर्युक्त वात सुनकर तपस्वीने जब कुल्हाडेसे काठको फाढ़ा, तब उसमे साप दिखाई दिया । तब उस विशिष्ट तपस्वीने अपने तपको अज्ञान-रूप जाना । वह समझा कि उसका पिता भी तप करके स्वर्ग गया है, उसे सापकी योनिमें देखकर वह दुखी हुआ ।

जैन धर्मके ज्ञानमई रूपको समझकर तब उस तपस्वीने वीरभद्र आचार्यसे मुनि दीक्षा ली । वह दूसरे मुनियो के साथ तप करने लगा, पर उसे भोजन मिलनेमें वाधा पड़ जाती । आचार्य वीरभद्र ने तब विशिष्ट मुनिको शास्त्र-पठनके लिए वारी-वारीसे मुनि गिवगुप्त और सुमति मुनिको सौंपा । यतिधर्मको जाननेवाला वह विशिष्ट मुनि जगमे प्रसिद्ध हो गया और अकेला भ्रमण करता हुआ मथुरा आया ।

मथुरामे राजा-प्रजा सब मुनि विशिष्टको गुरु जान कर पूजने लगे । एक दिन वह मुनि आतापन योग धारण करके पर्वतके शिखर पर बैठा था । सात देवागनाएँ उसके पास आकर कहने लगी, “हे देव ! हमको आपकी जो आज्ञा हो, वही हम करेगी ।” मुनिने उत्तर दिया, “इस समय मुझे कोई आवश्यकता नहीं है । तुम अपने-अपने स्थान जाओ ।” वे सातो देवागनाएँ अपने-अपने स्थानको चली गयी ।

फिर वशिष्ठ मुनिने एक माहका उपवास किया । इस अति निस्पृही महा तपस्वीको सभी लोग उपवासके पश्चात् आहार देना चाहते थे । मथुराके राजा उग्रसेनने लोगोंको मना किया और कहा कि मुनिको पारणा वह स्वयं ही देगा । इसलिए और किसीने तो मुनिको आहार दिया नहीं और राजा उग्रसेन प्रमादवग तीन बार आहार देना भूल गया । एक बार तो पारणेके समय राजा जरासिध-का ढूत आ गया था । दूसरी बार अग्निके उपद्रवसे विस्मरण हो गया और तीसरी बार हाथीके उपद्रवसे भूल हो गयी । परिणाम-स्वरूप मुनि वशिष्ठ नगरमें भ्रमण करके बिना आहार मिले खेदसे पीड़ित होकर बनको लौट रहा था । उपवाससे शरीर अति गिथिल होनेके कारण मुनिजी नगरके द्वार पर कुछ झरण खड़े रहे ।

उस समय किसीने कहा, “राजाने वडा अन्याय किया कि जो न आप मुनिको आहार दिया और न किसी दूसरेको देने दिया ।” ये वचन सुनकर मुनिको वडा रोष हुआ और उसने उन सातो देवागनाओं-को याद किया । वे तुरन्त आ खड़ी हुईं । मुनिने उन्हे आदेश दिया कि “अगले जन्ममें तुम मेरा काम करना ।” ऐसा कह कर मुनि नगरसे बाहर चला गया ।

मुनिने राजा उग्रसेनको क्लेश देनेका निश्चय किया, कि मैं इसका पुत्र होकर इसे पीड़ा दूँगा ।

मुनि प्राण तजकर राजा उग्रसेनकी रानी प्रभावतीके गर्भमें आया । जिस दिनसे वह गर्भमें आया, उसी दिनसे माता-पिताको क्लेशकारी हुआ । एक दिन राजाने रानीका क्षीण शरीर देखकर पूछा, “आपको क्या दोहला उपजा है ?” रानीने उत्तर दिया, “हे नाथ ! इस गर्भके कोरण मुझे जो दोहला हुआ है, न वह समझमें आता है और न कहने योग्य है ।” राजाके आग्रह पर रानीने आखोमें आसू भरकर गद्गद वाणीसे कहना आरम्भ किया, ‘हे प्रभो ! इस

गर्भके दोषसे मुझ पापिनको दोहला हुआ है, कि आपका पेट चीरकर आपका रक्तपान करूँ ।” तब राजाने अपने शरीरके समान पुतला बनवाकर उसमे रस भरकर रानीकी इच्छा पूरी की । तब नवे महीनेसे रानीने एक पुत्रको अशुभ नक्षत्रमे जन्म दिया, उस बालकका टेढ़ा मुख था और भृकुटी चढ़ी हुई थी । ज्योतिपियोने बालकको माता-पिताके लिए हानिकर बताया । राजाने उस बालकको कांसेकी मजूपामे बन्द करके यमुनामे वहा दिया । उस मजूपाको कोसावी नगरीमे मजोदरी मद्यकारनीने पकड़ा और उसमे जो बच्चा निकला, उसका नाम कस रखा । इससे आगे की बात आप जानते ही है । उस दुष्टने अपने निश्चयानुसार पिताको पकड़ कर बन्द रखा है । अब तेरा पुत्र उसके पिता उग्रसेनको छुड़ायेगा ।”

यह सब कथा अतिमुक्तक स्वामीने राजा वसुदेवसे कही । इसके पश्चात् मुनि राजा वसुदेवको उसके पुत्रके विषयमें कहने लगे, “इस देवीके सातवाँ पुत्र नवाँ नारायण होगा । शख, चक्र, गदा और खड़ग धारक तेरा यह पुत्र कंसादिक शत्रुओंको मार कर तीन खण्ड का स्वामी होगा । इससे बड़े छह पुत्र होंगे । उनको मृत्यु ही नहीं । उसी जन्मसे मोक्षगामी होंगे । हे राजन् ! आप चिन्ता न करें । सात पुत्र देवकीसे होंगे और जो एक पुत्र रोहिणीसे होगा, वह बलभद्र होगा ।”

इतना कहकर स्वामी अतिमुक्तक राजा वसुदेवसे इन सब पुत्रोंके पूर्व जन्मोकी बात कहने लगे,

“इसी मथुरा नगरमे राजा सूरसेन था । उसके राजमे भानु नामका एक सेठ बारह करोड़ रूपयेका स्वामी था । उसकी पत्नीका नाम यमुना था । उस सेठके सात पुत्र (१) सुभानु, (२) भानुमित्र, (३) भानुसेन, (४) सूर, (५) सूरदेव, (६) सूरदत्त और (७) सूरसेन थे । इनकी पत्नियोके नाम (१) कालिन्द्री, (२) तिलका, (३)

कान्ता, (४) श्री कान्ता, (५) सुन्दरी, (६) द्विती और (७) चन्द्र-कान्ता थे। कुछ समयके पश्चात् सेठ भानुने अभयनन्दि गुरुसे और सेठानी यमुनाने साध्वी जिनदत्तासे दीक्षा ले ली।

“माता-पिताके त्यागी बन जानेके पश्चात् ये सातो भाई जुए और वेश्यागमनके दुर्व्यसनोमे फँस गये और सब धन नष्ट कर दिया। फिर वे चोरी करनेके लिए उज्जयनी गये। रातको छहो बडे भाई, सातवे छोटे भाई सूरसेनको महाकाल मसानभूमिमे छोड़कर नगरमे गये। जाते समय वे छोटे भाईसे कह गये कि यदि वे मारे जायें या पकडे जायें तो वह वहाँसे भाग जाय। जो धन वे चोरी करके लायेगे, वह वरावरका बाँटकर उसका भाग भी उसे देगे। यह कहकर वे चोरी करने चले गये।

“उस समय उज्जैनका राजा वृषभध्वज था। उसकी रानी कमला और एक पुत्र हृष्टमुष्टि बड़ा योद्धा था। राजकुमारकी पत्नीका नाम वप्रश्री था, उनके पुत्रका नाम वज्रमुष्टि था। इस राजकुमार वज्रमुष्टिका विवाह राजा विमलचन्द्र और रानी विमला-की राजकुमारी मगीसे हुआ था। यह मगी बहू अपने पति वज्रमुष्टि की तो बड़ी प्रिया थी पर सासकी सेवामे सुस्त थी। इससे उसकी सास उस बहूसे रुष्ट रहने लगी और वह कोई ऐसा उपाय सोचने लगी, जिससे किसी प्रकार उसके पुत्रका मन उससे फिर जाय या वह मर जाय।

“एक दिन वज्रमुष्टि वसन्तोत्सवमे वनमे घूमने चला गया और मगीकी सासने घड़मे एक साँप रखवाया और वहू मगीसे कपट करके कहने लगी, घड़मे उसके लिए मोतियोकी माला है, उसे निकालकर पहन ले। ज्योही मगीने घड़मे हाथ डाला, साँपने उसे डस लिया। मगी साँपके विषसे मूर्छित हो गयी। सासने वहूको नौकरोसे महाकाल मसानमे डलवा दिया।

“रातको जब वज्रमुष्टि घर लीटा, तब वह सब वृत्तान्त मुनकर अपनी प्रिया पत्नी मगीको बडे स्नेहवश ढूँढने महाकाल मसानमे गया। उसके एक हाथमे खड्ग और दूसरे हाथमे दीपक था। राजकुमार वज्रमुष्टि ने मसानमे वरधर्म मुनिको योगासन लगाये देखा। राजकुमार उन्हे तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके कहने लगा, “हे पूज्यपाद! यदि मैं अपनी स्त्रीको पाऊँगा, तो मैं भहस्त्रदल कमल से आपकी पूजा करूँगा।” यह कहकर वज्रमुष्टि अपनी स्त्रीको ढूँढने गया और उसे पाकर मुनि महाराजके पास ले गया। मुनिके चरणारविन्दके प्रसादसे मगी निर्विप हो गयी। वज्रमुष्टि मगीको मुनि-के निकट छोड़कर और उसके लीटने तक वही ठहरनेको कहकर स्वयं सुर्दर्जन नामक सरोवरसे कमल लेने चला गया।”

मुनि अतिमुक्तकने राजा वसुदेवसे आगे कहा, “इतनेमे मसानमे एक घटना और हुई।” राजा वसुदेवने आश्चर्यसे पूछा, “हे प्रभो! वह क्या घटना थी?”

मुनि अतिमुक्तकने आगे कहना आरम्भ किया, “वज्रमुष्टि के सरोवर पर जानेके पश्चात् सातवाँ भाई सूरसेन वहाँ मसानमे आया। उसने वहाँ वज्रमुष्टिकी स्त्रीको देखा और उसे रानीसे स्नेह हो गया। तब उसने अपने मनमे सोचा कि इस नारीके पतिकी इसके प्रति कितनी प्रीति है, यह तो शायद मैं न देख सकूँ, पर इस नारी-की अपने पतिसे कैसी प्रीति है, इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। तब उसने उसे अपना महा सुन्दर रूप दिखाया और अपने मीठे वचन सुनाये। वह पापिनी मगी उसका रूप देखकर और मीठे वचन सुनकर कामाग्निसे बेचैन हो गयी। मगीने उसको कहा, “हे देव! आप मुझे अग्रीकार करो।” सूरसेनने उस स्त्रीसे कहा, “तेरे पति के जीते जी मैं तुझे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? तेरा पति महा बलवान योद्धा है। उससे मैं डरता हूँ।” तब उस स्त्रीने कहा, “हे नाथ! आप भय मत करो। मैं उसे खड्गसे मार ढूँगी।” सूरसेनने उससे

कहा, “यदि तू उसे मार देगी तो मैं तुझे अग्रीकार कर लूँगा ।” ऐसा कहकर सूरसेन उस स्त्रीके कामको देखनेके लिए छिप कर बैठ गया ।

राजा वसुदेवने मुनिसे पूछा, “तब उस मगीने क्या किया ?” मुनि अतिमुक्तकने कहा, “हे राजन् ! जब व्यक्ति पापके मार्ग पर अग्रसर हो जाता है, तब वह कितना आगे चल सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं । जब वज्रमुष्टि लौटकर मुनिको कमल चढ़ा कर नमस्कार करने लगा, तब मगीने उसे मारनेके लिए खड़गसे बार किया, पर सूरसेनने उसके हाथको पकड़कर वज्रमुष्टिको बचा लिया । इस नारीके चरित्रको देखकर सूरसेन ससारसे विरक्त हो गया और मगी अपने दोपको छिपानेके लिए मूर्छा खाकर धरती पर गिर पड़ी । तब उसके पति वज्रमुष्टिने उससे पूछा, “हे प्रिये ! तू क्यों डरी ? यहाँ तो भयका कोई कारण नहीं है ।” वज्रमुष्टि इस प्रकार पत्नीका धैर्य वैधाकर और मुनि वरधर्मको नमस्कार करके मगी-सहित घर लौटा । कुछ देर पश्चात् सूरसेनके छहों भाई चौरीका बहुत-सा धन लेकर वहाँ आये । उन्होंने उस धनके सात बराबर हिस्से करके सूरसेनसे अपना भाग लेनेको कहा । तब सूरसेनने अपना भाग नहीं लिया और भाइयोंसे कहा कि यह ससारी जीव स्त्रियोंके लिए धन कमाता है, पर स्त्रियोंकी चेष्टा और काम तो मैंने अति निकटसे देख लिये । उसके भाइयोंके यह पूछने पर कि उसने क्या देखा, सूरसेनने वज्रमुष्टि और मगीका रातका सब वृत्तान्त कह सुनाया । उस वृत्तान्तको सुन कर उन्हें भी ससारसे विरक्ति हो गयी और उन्होंने वरधर्म मुनिसे जैनमुनि दीक्षा लेली और चौरीके धनको अपनी स्त्रियोंके पास भेज दिया ।

“कुछ दिनोंके पश्चात् ये मुनि गुरु वरधर्मके साथ उज्जैन आये । वज्रमुष्टि राजकुमारने इन्हें देखा । उसने इनसे अपनी स्त्री मंगीका सब वृत्तान्त सुनकर और इनके त्याग तथा वैराग्यसे प्रभावित हो मुनि बन-

गया। उन सातो भाइयोकी स्त्रियाँ भी अपनी सासकी गुरुआनी जिनदत्ता आर्थिकासे दीक्षा लेकर माध्वी बन गयी। ये भी उज्जैनमे पधारी। तब मगी भी इनका वृत्तान्त सुनकर ससारको निद्य समझ कर अपने दुश्चरित्रकी निदा करके गृह त्याग कर आर्थिका बन गयी।

“ये सब महा तप करके प्रथम स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे चल कर भरत क्षेत्रमे विजर्यद्वि गिरिकी दक्षिण श्रेणीमे नित्यलोक नगरमे चित्रकूल राजाकी मनोहरी रानीके उदरसे सात भाइयोमे वडे भाई सुभानुका जीव चित्रागद पुत्र हुआ और छह भाई इन ही माता-पिताके तीन युगल पुत्र हुए। उनके नाम गरुडकान्त, सेन, गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणिचूल और हेमचूल थे। ये सातो ही राजकुमार अति सुन्दर और समस्त विद्याओंके पारगामी थे। पर एक घटना देखकर जवानीमे इन सातो भाइयोको ससारसे विरक्ति हो गयी।”

राजा वसुदेवने मुनि अतिमुक्तकसे वह घटना पूछी। मुनि श्रीने वह घटना यो बतायी, “मेरपुरके राजा धनजय और रानी सर्वश्रीकी पुत्री धनश्री राजकुमारी थी। वह अपने रूप, यीवन और गुणोंके कारण जगतमे प्रसिद्ध हो गयी। उसका स्वयम्बर रचाया गया, जिसमे सभी विद्याधरोंके पुत्र धनश्रीके द्वारा चुने जानेकी इच्छासे सम्मिलित हुए। पर धनश्रीने मामाके पुत्र हरवाहनके गलेमे वरमाला डाली। तब सभी उपस्थित राजा क्रोधमे भर गये और कहने लगे कि उनको स्वयम्बरमे व्यर्थ निमत्रित करके अपमानित किया गया क्योंकि राजा धनजयकी इच्छा तो राजकुमारी हरवाहनको देने की थी। फिर वे क्रुद्ध राजा राजकुमारीको पानेके लिए आपसमे लड़ने लगे। युद्धमे अनेक सामन्तोंको मौतके घाट उतारा गया। युद्धमे इस हृश्य तथा इसके कारणको देखकर चित्रकूलके सातों पुत्रोंने इन विषयों को पापका कारण समझ कर भूतानन्द केवली से मुनि व्रत लिये।

“सातो भाई घोर तप करके स्वर्गमे गये। स्वर्गसे चल कर चित्रांगद नामका बड़ा भाई हस्तिनापुरमे सेठ स्वेतवाहन और उसकी

पत्नी बधुमतीके यहाँ पुत्र हुआ, जिसका नाम शख रखा गया। और छोटे छह भाई इसी नगरमें गगदेव राजा और उसकी रानी नन्दयशा के तीन युगल पुत्र हुए। इनके नाम (१) गग, (२) गगदत्त, (३) गगरक्षक, (४) नन्द, (५) सुनन्द और (६) नन्दिसेन थे।

“इसके पश्चात् रानी नन्दयशाके चौथे गर्भमें सातवाँ पुत्र आया वह आगामी जन्ममें कृष्ण होगा। यह गर्भस्थ बालक रानी नन्दयशा का पूर्वजन्मका विरोधी है। इसलिए इसके जन्म लेते ही, रानी नन्दयशाने इसको तज दिया। उस नवजात त्यक्त शिशुको रेवती धायने पाला। सब उसको निर्नामिक—विना नामका कहने लगे। बड़ा होने पर निर्नामिक और सेठके पुत्र शखमें स्नेह बढ़ गया। भविष्यमें वह निर्नामिक बलभद्र होने वाला था। और शख नारायण होने वाला था।

“एक दिन निर्नामिक और शख वनमें गये। जनता भी वहाँ गयी हुई थी और निर्नामिकके छहों बड़े भाई वहाँ भोजन कर रहे थे। शख द्वारा निर्नामिकका परिचय भाइयोंसे करानेपर उन्होंने उसे भी भोजनमें सम्मिलित होनेको कहा। परन्तु नन्दयशाने उसे देखते ही क्रोधसे लात मारी। निर्नामिक और शख दोनोंको नन्दयशाके इस दुर्व्यवहारसे बड़ा दुख हुआ।”

वसुदेवने अतिमुक्तक स्वामीसे कहा, “महाराज यह बहुत जरूरी बात थी। फिर क्या हुआ?”

स्वामी अतिमुक्तक आगे कहने लगे, “बात तो नि सन्देह बुरी थी। फिर निर्नामिक और शख द्रुमषेण अवधिज्ञानी मुनिसे एकान्तमें निर्नामिकके पूर्व जन्मका हाल पूछने लगे। मुनि द्रुमषेणने उन्हें बताया, “गिरनार नगरमें चित्ररथ महा गुणवान राजा और उसकी कनक-मालिनी रानी रहते थे। परन्तु राजा कुबुद्धियों की कुसगतिसे मासा-हारी बन गया। उसका अमृतरसायन रसोऽया मास आदि भोजन-बनानेमें बड़ा प्रवीण था। राजाने उससे प्रसन्न होकर उसे दस गाँव पुरस्कारमें दिये।

“एक दिन राजा चित्ररथने मुधर्म मुनिमे मासभक्षणके दोपोपर उपदेश सुनकर अपने आपको बहुत धिक्कारा । वह राजा राजकुमार मेघरथको राजपाट भौपकर तीन सौ राजाओं सहित मुनि हो गया और मेघरथने श्रावकके व्रत लिये । नया राजा अमृतरसायन रसोइये-पर वडा कुद्ध हुआ और उसके पास एक गाँव छोड़कर घेप सब गाँव छीन लिये । यह रसोइया मुधर्म मुनिमें द्वेष करने लगा, क्योंकि उसके विचारमें इस मुनिने उसकी आजीविका छिनवायी थी । उस रसोइयेने एक थावक होनेका ढोंग रचा और मुनि मुधर्मको विपक्षे समान कट्ठवी तुम्हीका ग्राहार दिया । इससे मुनि महाराज की मृत्यु हो गयी और वे अहिमिन्द्र देव हुए और रसोइया मरकर तीसरे नरकमें गया । वहाँ बहुत दुख भोगकर वह वनस्पति योनिमें गया और फिर उस रसोइयेका जीव मलय देशके पलास ग्राममें यज्ञदत्तकी यक्षला स्त्रीके गर्भसे यक्षलिक पुत्र हुआ । उसी यज्ञदत्तका दूसरा पुत्र यक्षस्थावर हुआ ।

“एक दिन ये दोनों भाईयक्षलिक और यक्षस्थावर गाड़ी भरकर जा रहे थे । मार्गमें एक सर्पनी आयी । छोटे भाईके बहुत मना करने पर भी वडे भाईने गाड़ी सर्पनीके ऊपरसे चलायी । इससे सर्पनीका फन टूट गया । वह मर कर पाप कर्मोंकी कमीके कारण मनुष्य गतिमें पैदा हुई ।

“उस सर्पनीका जीव स्वेताविका पुरीमें वासन राजाकी वसुन्दरी रानीसे नन्दयशा पुत्री हुई । वडी होने पर नन्दयशाका विवाह राजा गंगदेवसे हुआ । इधर कुछ समय पञ्चात् यक्षलिक मरकर नन्दयशा के गर्भसे निर्नामिक नामका पुत्र हुआ । पूर्व जन्मके विरोध तथा वैरके कारण नन्दयशा अपने ही पुत्र निर्नामिकसे द्वेष करने लगी । यह निर्नामिक उसी रसोइये अमृतरसायनका जीव है । मुनि-हत्याके पाप-कर्मोंके योगसे इसने कुगतियोमें महा दुख भोगे है ।”

यह कथा मुनि द्रुमषेणने निर्नामिक और उसके पित्र शख, राजा गंगदेव आदिको मुनायी । ससारके जीवोंके इस पापपूर्ण विचित्र

व्यवहार और माँको अपने पुत्रसे द्वेषकी कथा सुन कर राजा अपने देवनन्द राजकुमारको राज देकर दो सौ नृपों सहित मुनि हो गया। राजाके छहों बड़े बेटे, छोटा बेटा निर्णामिक और सेठका पुत्र शख भी ससारसे विरक्त होकर मुनि हो गये और तप करने लगे।

“रानी नन्दयशा, रेवती धाय और बन्धुमती सेठानी इन तीनों ने सुन्रता आर्यिका से व्रत लिये।”

“निर्णामिक मुनिने कठोर तप करके नारायण पदका कर्मवन्ध बाधा और ये सब देवलोक चले गये। रेवती धायका जीव भद्रलपुर में सुदृष्टि सेठकी अलका स्त्री हुई। रानी नन्दयशाका जीव देवकी हुई। गग आदि इस जन्ममें इस देवकीके पुत्र होगे और इसी जन्मसे मोक्षगामी होगे। अलका सेठानीके यहाँ तीन युगल मृतक पुत्र होगे। इन्द्रकी आज्ञासे देव सेठानीके तीन युगल मृतक पुत्रोंको यहाँ लायेगे और तेरे पुत्र भद्रलपुरमें सुदृष्टि सेठके घर अलका सेठानीके नवयौवन युक्त पुत्र होगे।”

यह कथा अतिमुक्तक स्वामी वसुदेवको सुना रहे थे। स्वामोजो ने राजासे कहा, “तेरे छहों पुत्रोंके नाम (१) नृपदत्त, (२) देवपाल, (३) अनिकदत्त, (४) अनिकपाल, (५) शत्रुघ्न और (६) यतिशत्रु होंगे। ये छहों राजकुमार हरिविश आकाशके चन्द्रश्चर्षी नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकरके शिष्य होंगे और निर्वाण प्राप्त करेंगे। इन छहों पुत्रोंके जन्मके पश्चात् देवकीके चौथे गर्भमें निर्णामिक मुनिका जीव सातवाँ पुत्र कृष्ण होगा, जो नवाँ वासुदेव है।”

अतिमुक्तक स्वामीसे वसुदेव इस प्रकार कसके पूर्व जन्मों, तपके के प्रभावसे वैभव, अपने बलदेव, वासुदेव और उन तीनों युगलोंके इस प्रकार आठ पुत्रों और देवकी स्त्रीके पूर्व जन्मोंकी कथा और इस जन्मका प्रताप सुनकर बड़ा हर्षित हुआ। राजा वसुदेव और भी परम धर्म श्रद्धावान होकर मथुरामें सुखसे राज करने लगा।

महाउपवास

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, “हे श्रेणिक ! देवकीके पति वसुदेव अपने वगमे जिनेन्द्र तीर्थकरके जन्मकी बात सुन कर बहुत हर्षित हुए और अतिमुक्तक स्वामीसे पूछने लगे, ‘हे नाथ ! मैं हरिवंश के तिलक जिनेन्द्र देवका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। कृपा कर सुनाइए ।’” तब मुनि अतिमुक्तकने कहना आरम्भ किया, “इस जम्बुद्वीपमे सीतोदा नदीके दक्षिण तट पर पद्मा नामक विदेह क्षेत्रमे स्यघपुर नगरमे अर्हदास राजा राज करता था। वह महाजैन धर्मावलम्बी था। उसकी रानीका नाम जिनदत्ता था, वह पूजन आदिमे बड़ी प्रवीण थी। एक रात उसने स्वप्नमे (१) लक्ष्मी, (२) गज, (३) सिंह, (४) सूर्य और (५) चन्द्र देखे। रानीने शुभ नक्षत्रमे अपराजित पुत्रको जन्म दिया। यह राजा पृथ्वी पर अपने पराक्रमके कारण सुप्रसिद्ध और अजेय था। उसके माता-पिताने उसकी युवावस्था मे चक्रवर्तीकी प्रीतिमती महा गुणवन्ती राजकुमारीसे उसका विवाह कर दिया। राजकुमार अपराजितने और भी बहुत से विवाह किये।

“एक दिन राजा अर्हदास अपने पुत्र और परिवारके साथ श्री विमलनाथ तीर्थकरकी बन्दनाके लिए बनमे गये। उनके उपदेशके प्रभावसे अर्हदास अपराजित राजकुमारको राज्यभार सौप कर बहुतसे राजाओके साथ मुनि बन गये। एक दिन राजा अपराजितने सुना कि श्री विमलनाथ तीर्थकर और उसके पिता मुनि अर्हदास गधमादन पर्वतसे मोक्ष गये हैं। राजा अपराजितने यह समाचार

सुनकर तीन दिनका उपवास किया और निर्वाण कल्याण की भक्ति की और नगरके मन्दिरोंमें पूजा की। अपने महलमें राजा अपनी रानीको धर्मोपदेश दे रहा था। उसी समय दो मुनि वहाँ पधारे। राजा-रानीने हाथ जोड़कर उन्हे नमस्कार किया। राजाने मुनियोंसे पूछा, “हे प्रभो! मुनियोंको देख कर जिन-धर्मियोंके मनमें हर्ष उत्पन्न होना पुरानी स्वाभाविक रीति है। पर आपको देखकर मेरे हृदयमें स्नेह उपजा है। सो कृपा कर बताइए कि क्या आपका और मेरा कोई पूर्व-सम्बन्ध है?”

तब उन दोनों मुनियोंमें से बड़े मुनि कहने लगे, “हे राजन्! मैं तुम्हें हमारे और तेरे पूर्व-सम्बन्धों की बात सुनाता हूँ। पुष्करार्द्ध द्वीपमें पश्चिम विदेहमें विजयार्द्ध गिरिकी उत्तर श्रेणीमें एक नगर जयपुर है। वहाँका राजा सूर्यप्रभ सूर्यके समान प्रभावान है और धरतीके समान मनको हरनेवाली उसकी रानी धारिणी है। उस रानीके तीन पुत्र (१)चितागति, (२) मनगति और (३) चपलगति हुए, जो महापुरुषार्थी थे और आपसमें बड़े स्नेहसे रहते थे। उसी उत्तर श्रेणीमें एक दूसरा नगर अर्द्धजय था। वहाँके राजाका नाम भी अर्द्धजय ही था। उसकी रानीका नाम अतीतसेना था। उनकी पुत्री का नाम प्रीतिमती था, जो अनेक विद्याश्रोमें निपुण और अपने गुणों तथा रूपके कारण पृथ्वी पर प्रसिद्ध थी। यद्यपि अनेक राजे-महाराजे उससे विवाह करनेके अभिलाषी थे, पर वह प्रीतिमती नारी जीवन-की निन्दा करती थी और उसे विवाह करना स्वीकार न था।”

राजा अपराजितने कहा, “प्रभो! वडी विचित्र थी वह राज-कुमारी।” बड़े मुनिने कहा, “राजन्! इसमें विचित्रताकी क्या बात है? विवाह न तो मनुष्य जीवनका ध्येय है और न इतना आवश्यक है कि विवाह जरूर किया जाय। क्या तुमने वाल ब्रह्मचारियों और वालं ब्रह्मचारिणियोंका उल्लेख नहीं सुना है?”

“सुना है, महाराज !” राजाने उत्तर दिया । तब मुनिने कहा, “एक दिन राजकुमारी प्रीतिमतीने अपने पिता से कहा, “हे पिता ! मुझे एक वचन दो ।” पिताने उसे ससारसे पराड़् मुख जानकर कहा, “एक तपका वचन छोड़ कर जो वर मांगेगी, मैं तुझे वही दूँगा ।” तब राजकुमारीने कहा, “मेरी तो तप करनेकी ही इच्छा है । पर यदि आप मुझे वह आज्ञा न दे, तो मुझे यह वचन दे कि जो मुझे चलनेमें जीत लेगा, वही मेरा पति होगा, दूसरा नहीं ।” राजाने बेटी की यह बात मान ली ।

“इसके पश्चात् राजाने सब विद्याधरोंको बुलाया और कहा, “हे समस्त विद्याधरो ! तुममें जो विद्याधर चलनेमें मेरी पुत्रीको जीतेगा, उसी से मैं अपनी पुत्रीको परणाऊँगा । मेरी पुत्री और विद्याधरोंमें से जो सुमेस्त पर्वतकी प्रदक्षिणा करके और जिन भगवान् की पूजा करके पहिले आकर मुझे आशीष देगा, वही जीतेगा । और जो जीतेगा वही इसे ब्याहेगा ।”

राजाके इतना कहने पर चलनेकी प्रतियोगिताकी तैयारी हो गयी । सब विद्याधर, राजदरबारी, और नगरके प्रतिष्ठित व्यक्ति इस प्रतियोगिता को उत्सुकतापूर्वक देखने के लिए वहाँ इकट्ठे हो गये । राजकुमारीकी चलनेकी निपुणता को सब जानते थे । उस समय राजा सूर्यप्रभु और रानी धारिणीके तीन पुत्र चितागति आदि चलनेके लिए तैयार होकर मैदानमें आ गये । राजा अरिजय वहाँ प्रतियोगिता और उसके परिणामको देखनेके लिए आ खड़े हुए । दौड़ आरम्भ हो गयी । दौड़नेका आदेश होते ही वे तीनों भाई राजकुमारी प्रीतिमतीके साथ दौड़ने लगे । सब दौड़े पर वह प्रीतिमती सबसे आगे निकल गयी । वह इनसे बहुत आगे निकलकर सुमेरुकी प्रदक्षिणा देकर भद्रसाल बनमें जिन-प्रतिमाकी पूजा करके जीघ्र वापिस आ गयी । दौड़के श्रमसे राजकुमारी थकी हुई थी । पसीनेकी बँदे उसके मुख पर मोतियोंके समान चमक रही थी । उसने आकर पिताको

नमस्कार किया और प्राशीष दी । राजाने आशीषको आँखों तथा मस्तिष्क पर चढाया और अपनी पुत्रीको विजयपत्र दिया और ससार के भोगोंसे विरक्त होकर तप करनेकी अनुमति भी दे दी ।

“पिताकी अनुमति प्राप्त करनेके पश्चात् प्रीतिमती निवृत्त नामकी साध्वीसे बहुतसे व्रत लेकर आर्यिका बन गयी । इधर प्रतियोगिता में हारे हुए चितागति आदि तीनों भाइयोंने दमवर स्वामीसे मुनिदीक्षा ले ली । वे कठोर तप करके चौथे स्वर्गमें देव हुए ।

‘स्वर्गसे चलकर मनोगति और चपलगति दोनों भाइयोंके जीवोंने गगनवल्लभ नगरमें राजा गगनचन्द्र और उनकी रानी गगनसुन्दरीके मनोगतिका जीव तो अमितवेग पुत्र हुआ और चपलगति-का जीव अमिततेज नामका पुत्र हुआ । वे दोनों भाई पुण्डरीकणी-पुरी में श्री स्वयंप्रभ तीर्थकरसे अपने पूर्व जन्मोंका हाल सुनकर मुनि हो गये । और चितागतिका जीव राजा अर्हंदासका अपराजित पुत्र हुआ । इस अपराजितका जीव अबसे पाँचवें जन्ममें भरत क्षेत्रमें हरिवश तिलक श्री अरिष्टनेमि या श्री नेमिनाथ वाईसवाँ तीर्थकर होगा । अब अपराजितकी आयु केवल एक महीना शेष है । इसलिए उसे आत्म-कल्याण करना उचित है ।”

इतना कहकर वह मुनि वहाँसे विहार कर गया । मुनि की यह वात सुनकर राजा अपराजितने आठ दिन तक भगवान्की पूजा की और फिर उसने अपने प्रीतिकर राजकुमारको राजकाज सौपकर ससारके विषय-भोगोंसे विरक्त होकर प्रायोपगमन नामक सन्यास धारण किया और आराधना करने लगा ।

मुनि अपराजितका जीव तप करके सोलहवें स्वर्गमें गया । फिर वहाँसे हस्तिनापुरके परम धर्मात्मा राजा श्रीचन्द्रकी श्रीमती रानीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र पैदा हुआ । कुछ समय पश्चात् राजा श्रीचन्द्रने

अपने पुत्र सुप्रतिष्ठको राज सौपकर सुमन्दिर मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली और मोक्ष गया ।

राजा सुप्रतिष्ठने एक महीनेका उपवास करनेवाले मुनि यगो-घरको विविष्टक थद्वाके साथ भोजन दिया । कार्तिककी पूर्णमासी-को राजा सुप्रतिष्ठ अपनी रानियों सहित बैठा था, कि उन्होने उल्कापात देखा और इससे उन्होने राजलक्ष्मीको विनश्वर समझा । राजा ससारसे विरक्त हो गया । उसने अपनी स्वनन्दा रानीसे उत्पन्न सुट्टि राजकुमारको राजभार सौपकर सुमन्दिर मुनिसे कई हजार राजाओंके साथ मुनिके महाव्रत लिये । उन्होने अपने ज्ञान, चरित्र और तप आदिको बढ़ाया और सब शास्त्रोंका खूब अध्ययन किया । इन्होने कठोर-से-कठोर इतने तप किये कि इनका शरीर सूख कर काटा हो गया ।



कृष्ण-बालक्रीडा

मुनि अतिमुक्तकसे अरिष्टनेमिका चरित्र सुनकर वसुदेव और देवकी मुनिको नमस्कार कर अपने घर वापस आये । कुछ दिनोंके पश्चात् देवकीको प्रथम गर्भ रहा । देवकीने दो युगल पुत्रों, नृप और देवपालको जन्म दिया । परन्तु इन्हे कसका भय नहीं था क्योंकि प्रवल सहायक की सहायतासे सब भय नष्ट हो जाते हैं । वसुदेवके सहायक तो धर्म और इन्द्र आदि देव थे । फिर उसके पुत्रको क्या भय होता ? इन्द्रकी आज्ञासे नैगम नामक देव उन दोनों युगल पुत्रोंको भद्रलपुरमे सुदृष्टि सेठकी धर्मपत्नी अलका सेठानी के युगल मृतक पुत्रोंसे बदल लाया और वे दोनों मृतक बच्चे देवकीके प्रसूतिगृहमे रख दिये । कस देवकीके प्रसवका समाचार सुन कर प्रसूतिगृहमे आया और उसने मृतक युगलको पाँव पकड़ कर उठा कर शिला पर दे मारा ।

फिर देवकीको दूसरा गर्भ रहा, जिससे अनीकदत्त और अनीक-पाल युगल पुत्र उत्पन्न हुए । इनको भी देव भद्रलपुर जाकर सुदृष्टि और अलकाके मृतक युगल पुत्रोंसे बदल लाये । इस युगलको भी कसने पत्थरपर दे मारा । इसके पश्चात् तीसरे गर्भसे देवकीने शत्रुघ्न और यतिशत्रु युगल पुत्रोंको जन्म दिया । उन्हे भी देव पहले के समान अलकाके मृत युगल पुत्रोंसे बदल लाया । कसके हाथों उनका भी वही हाल हुआ ।

वसुदेव देवकीके ये छहों पुत्र भद्रलपुरके सेठ सुदृष्टिके घरमे निविधतापूर्वक पलने लगे । ससारमे जिनका पुण्य रक्षक होता है,

उन्हे हानि पहुँचानेमे कोई भी समर्थ नहीं होता । जैसे-जैसे ये वालक बडे होते गये, वैसे-वैसे सेठ सेठानीके यहाँ अनुल्य लक्ष्मी बढ़ती गयी । उनका घर अपूर्व वस्तुओंसे भरने लगा । सेठकी विभूति राजाओंकी विभूतिको भी मात करने लगी ।

रानी देवकी माताकी ममता और पुत्रोंके वियोगसे चित्तित रहने लगी । तब वसुदेवने उसे आश्वासन दिया कि उसके सब पुत्र भद्रल-पुरमे सेठके घर आनन्दपूर्वक हैं । पतिके वचनोंसे आश्वस्त होकर देवकी की काति दूजके चन्द्रमाकी कलाके समान बढ़ने लगी ।

एक रात देवकीने सात स्वप्न देखे, जिनमे (१) सूर्य, (२) पूर्ण-चन्द्रमा, (३) दिग्पालो द्वारा लक्ष्मीका स्नान, (४) आकाशसे उत्तरता विमान, (५) देवीप्यमान अस्ति, (६) देवताओं की ध्वजा और (७) रत्नराशि थे । इसके पश्चात् रानीने अपने मुखमे सिंहको प्रवेश करता देखा ।

प्रातः जब देवकीने इन स्वप्नोंका फल ग्रपने पति वसुदेवसे पूछा, तब उसने रानीको बताया कि इन सभी वस्तुओंके गुणोंसे युक्त एक महाप्रतापी, अधकार नाशक, चन्द्रमाके समान कातिवान तथा सुन्दर, राज्याभिपेक योग्य, देवलोकसे आनेवाला है । वह महा तेजवान, देवताओं से प्रशसित, गुणरत्न-राशियुक्त और निर्भय जगत्पति होगा । स्वप्नोंके फलको सुन कर देवकी बहुत हृषित हुई ।

देवकीके गर्भकी वृद्धिके साथ-साथ जगत्का आतप मिटने लगा, पृथ्वीका सुख बढ़ता गया । सब जीवोंकी धर्ममे प्रवृत्ति हो गई । कस दहिनके गर्भके दिन गिन रहा था । परन्तु वह नारायणके गुरा नहीं गिन सकता था । उसने यही सोचा कि वह कृष्णको न मार सकेगा ।

वह जानता था कि नवे महीने पुत्र होगा, परन्तु वासुदेवका जन्म सातवे महीने ही रातके समय हो गया । नवजात शिशु शस्त्र, चक्र तथा गदादि शुभ लक्षणोंका धारक ग्रति देवीप्यमान, इत्य-

नीलमणि समान श्याम सुन्दर था और देवकीके प्रसूतिगृहको अपनी दीसिसे चमका रहा था। कृष्णके जन्मके साथ ही मित्र-वाधवोके घरोंमें कल्याणकारक शुभ निमित्त होने लगे और शत्रुओंके घरोंमें भयके कारण अशुभ निमित्त होने लगे। इस नारायणके जन्मके प्रभाव से सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया। इतना ही नहीं सात दिनकी अखण्ड वर्षा भी उस समय हुई।

ऐसी वर्षामें रातके समय वसुदेव और वलभद्र नवजात गिशु-वासुदेवको लेकर घरसे निकले। वलभद्र की गोदीमें बच्चा था और वसुदेव उसपर छत्र लगाये हुए था। कसके सुभट सोते ही रह गये। उनमें से कोई भी न जागा। नगरके द्वारके पहरेदार भी सोते रहे। कृष्णके चरण-स्पर्शसे द्वारके हृष किवाड स्वयं खल गये। मयोगसे भेहकी एक बूँद वालककी नाकमें गयी और उसे जोरकी छीक आई। उस द्वारके ऊपरले खण्डमें कसका पिता उग्रसेन कैद था। उसने छीककी आवाज सुनकर आशीर्वाद दिया कि तू चिरकाल जीवे और निविधि रहे। तब वलभद्रने उग्रसेनसे कहा ‘‘हे पूज्य! इस समस्त रहस्यको गुप्त रखना। यह वालक ही बड़ा होकर आपको वन्दीगृहसे छुड़ायेगा।’’

राजा उग्रसेनने फिर आशीर्वाद देते हुए कहा ‘‘मेरे भाई देवसेन की पुत्रीका यह पुत्र शत्रुको मालूम हुए विना सुखसे रहे।’’ उग्रसेनके इन शुभ वचनोंको सुन कर वसुदेव और वलभद्र वालकको लेकर मथुरा नगरसे बाहर चले गये।

नगरका रक्षक बैलका रूप धारण करके सीगों पर दीपक रख कर इनके आगे-आगे प्रकाश दिखा कर मार्ग दिखाने लगा। आगे यमुनाका तीव्र प्रवाह था। कृष्णके प्रतापसे यमुनाके मध्यमें मार्ग हो गया और जल प्रवाह भी कम हो गया। तब ये सब वृन्दावनके घाटसे यमुना पार करके गोकुल गाँव गये। वहां नन्द गोप-वाला

और उसकी पत्नी यशोदा गोपी रहते थे। उन्होने उन गोप दम्पति को बालक सौप कर समस्त रहस्य बताया और उसे सावधानता-पूर्वक पालनेको कहा। इस बालकको देखने मात्रसे ही सबकी आँखोंमें ठण्डक पड़ जाती थी। नन्द और यशोदाको सब बातें अच्छी प्रकार समझा कर उन्होने कृष्णको उनके पास छोड़ दिया। उसी समय यशोदाके पुत्री जन्मी थी। उन्होने सबके विश्वासके लिए उसे लाकर देवकीको सौंपा।

निर्दयी कस देवकीकी प्रसूतिका समाचार सुन कर प्रसूतिगृह में आया। देवकीके पास पुत्री देख कर कसने मनमें सोचा कि यह कन्या तो मुझे मार नहीं सकती। इसका पति कोई राजकुमार मेरा शत्रु हो सकता है। यह सोच कर उस पापीने उस कन्याकी नाक दबा कर चपटी कर दी। इस समस्त दृश्यको देख कर देवकीको बहुत दुख हुआ। पर वह क्या करती? कस सन्तुष्ट होकर अपने घरमें लौटने लगा।

कुछ समय पश्चात् गोकुलमें कृष्णके जातकर्म सस्कार तथा नामकरण सस्कार हुए। उसका नाम कृष्ण रखा गया। वह बड़ा पुण्याधिकारी बना और नन्द-यशोदाकी अद्भुत प्रीति प्राप्त करने लगा। उसके गदा, खड़ग, चक्र, अकुञ्ज, गंख तथा पद्म आदि प्रशस्त लक्षण थे। उसका मुख अरुण वर्णका और महासुन्दर नीलकमल सदृश शोभायमान था। गोकुलकी गोपियाँ उसके मुखको देख-देखकर तृप्त ही न होती थी। गोपियोंके स्तन दूधसे भरे थे और हरएक गोपीकी यह इच्छा थी, कि वह कृष्णको दूध पिलाये।

एक दिन वरुण नामक निमित्त ज्ञानीने कससे कहा “हे राजन्! आपका शत्रु किसी नगरी, वन या गाँवमें बड़ा हो रहा है। अतः उचित कार्यवाही करे।” तब कसने अपने शत्रुका नाम-स्थान आदि जाननेके लिए तेला-तीन दिनका उपवास किया और पूर्व जन्ममें सिद्ध की हुई सात देवियोंको स्मरण किया। वे तुरन्त कसके पास

आकर कहने लगी “हे राजन् ! अब हम आपका काम करनेको तैयार हैं । बलदेव और वासुदेवको छोड़ कर, जिसे आप कहे उसे ही मार दे ।” इस पर कसने कहा—‘मेरा प्रबल वैरी किसी स्थान में बड़ा हो रहा है, उसे ढूँढ़ कर मारो, उस पर दया न करना ।’

कसका यह आदेश सुनकर वे सातो देवियाँ उसके शत्रुको ढूँढ़ने गयी । कृष्णको ढूँढ़ने पर सबने वारी-बारीसे अनेक रूप बना कर उसे मारनेका प्रयत्न किया, पर कृष्ण या यशोदाने उन देवियोंको मार भगाया और कृष्ण उनसे बच गया ।

नन्द और यशोदा पुत्र कृष्णका वाल्यावस्थाका पराक्रम देख कर बहुत आश्चर्य करने लगे । उन्होंने सोचा कि यह सामान्य मनुष्य न बनेगा, वरन् कोई महापुरुष होगा । घर-घरमें उस वालककी प्रशंसा होने लगी । देवकी बलभद्रसे कृष्णकी इन वालक्रीडाओंको सुनकर अपने पुत्रको देखनेके लिए उपवासका बहाना बनाकर गोकुलमें आयी । देवकी कृष्णके सुकण्ठ द्वारा गाये गीतों और गायोंकी घटियोंकी मधुर ध्वनि सुन कर परम सतुष्ट हुई । कृष्णके सुरीले मधुर गीत तो देवियों तकके मनको हरनेवाले थे, फिर देवकीकी तो बात ही क्या थी ? देवकीने कृष्ण और बलभद्र दोनोंके महा मनोहर रूपको देख कर विशेष हर्ष अनुभव किया । जब देवकीने कृष्णके रूपस्वर आदिका वृत्तान्त अपने पति वसुदेवको सुनाया तो वह भी बहुत प्रसन्न हुआ ।

अब बलभद्र नित प्रति जाकर कृष्णको अनेक कलायें तथा गुण सिखाने लगा और तीक्ष्ण-बुद्धि वह वालक सब वातोंको तुरन्त सीख लेता था । विनयवान गिर्ज्य पर ही गुरुके वचन प्रभाव डालते हैं, दूसरे पर नहीं । इस प्रकार हरिने बलभद्रसे विद्या अभ्यासका काल व्यतीत किया और उसने कुमार अवस्थामें प्रवेश किया ।

कुमारावस्थामें कृष्ण निर्विकार, परदारा का त्यागी, विपयानु-राग-रहित और ब्रह्मचारी हुआ । गोपियाँ कृष्णके निकट अनेक रास-

विलास तथा नृत्य करने लगी । कृष्ण भी देवोंके समान उनके साथ नृत्य और गान करने लगे, पर क्या मजाल कि मनमे जरा भी विकार हो । जैसे सोनेकी अँगूठीमे हीरेकी मणि शोभा देती है, वैसे ही कृष्ण गोपियोंमे शोभा देते थे ।

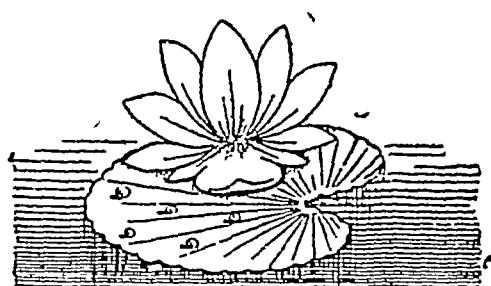
सभी स्त्री-पुरुषोंका अनुराग हरिमे बढ़ने लगा और यदि वे इसको न देखती तो विरह उत्पन्न हो जाता था ।

कसके सिर तो कृष्णके भयका भूत सवार था । जब वह उसे ढूँढ़ने और मारनेके उपायोंमे विफल हो गया, तब कस स्वयं उसे तलाश करने ब्रजमे धूमने लगा । इधर नन्द और यशोदाने जब यह समाचार सुना तो वे कृष्णको लेकर बनमे चले गये । वहाँ एक रुक्षनेत्रवती विकराल-मुखी राक्षसनी कृष्णको देख कर अदृहास करके अपनी कायाको बढ़ा कर उसकी ओर खाने के लिए ढौड़ी । पर कृष्णने अपने पराक्रमसे उसे दूर भगा दिया । मार्गमे मालमली वृक्षोंके थम्मों की इतनी बड़ी पक्कित थी कि वह मनुष्योंसे उठ नहीं रही थी । कृष्णने उन थम्मोंको उठाकर मण्डप पर रख दिया । पुत्रके ऐसे वीरतापूर्ण पराक्रम देखकर नन्द-यशोदा निश्चक हो गये, कि इसको मारनेमे कोई समर्थ न हो सकेगा । फिर वे अपने घर लौट आये ।

इधर कस ब्रजमे धूम कर मथुरा मे आया । मथुरामे देवालयमे तीन रत्न अकस्मात् उत्पन्न हुए, वे सिंहके आकारके पायोवाली नागशय्या, पाचजन्य शख और अजितज्य धनुष थे । किसी निमित्त-ज्ञानीने कसको बताया—“जो आदमी नागशय्या पर चढ़ेगा, धनुष चढ़ायेगा और शखको बजायेगा, वही तेरा शत्रु होगा । इसलिए कसने अपने शत्रुको ढूँढ़नेके लिए नगरमें ढौड़ी पिटवाई, कि जो व्यक्ति नागशय्या पर चढ़ेगा, धनुषको चढ़ायेगा, और शखको बजायेगा, उसीके साथ वह अपनी पुत्री अपराजिताका को विवाह देगा और जो कुछ वह मागेगा, वही उसे मिलेगा ।

इस घोषणाको सुनकर अनेक राजकुमारोने ये तीनो काम करने-का प्रयत्न किया, पर सब असफल । उसी समय जरासिधका पोता भानुकुमार गोकुलमे आया । कृष्णके पराक्रमको जानकर और उसकी सामर्थ्यको प्रत्यक्ष देख कर भानु इन कामोको करनेके लिए उसे मथुरा लाया । भानुके साथ मथुरा आकर कृष्ण महाभयंकर तथा डरावने फनोवाले नागोकी शय्या पर चढ़ गया । उसने मायामयी नागोके मु हसे निकलते हुए धूए और भयकर अग्निकी ज्वालासे प्रज्वलित धनुषको इस प्रकार चढाया और शखको इस प्रकार वजाया कि दसो दिशाए गूँज उठी और समुद्र गरजने लगा । ये काम किये तो थे कृष्णने, पर प्रकट किये भानुके किये हुए । सभी भानुके महात्म्यकी प्रशसा करने लगे पर लोगोके मनमे शका थी । कुछ कहते थे कि ये काम भानुने किये हैं और कुछने कहा कि एक सांवरे लड़केने किये हैं । तब भानुकुमारने कसके भयसे अपने नौकरोके साथ कृष्णको गोकुल वापिस भेज दिया । वह स्वयं शय्या और धनुषके पास चुस्त होकर खड़ा हो गया ।”

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई और कहा, “हे श्रेणिक ! कृष्णके गर्भमे आनेसे पहले ही कस उसका महावैरी बन गया, पर उसका वाल भी वाका न कर सका, क्योंकि कृष्णने पूर्व जन्ममे जिन धर्मका पालन किया । वही धर्म उसका सहायक था ।”



कंस-वध

शरत् ऋतु आई । उसकी शोभा अवर्णनीय थी । इस ऋतुमें कृष्णका यश तो बढ़ने लगा पर कसका मद मन्द पड़ गया । जब कसने कृष्णकी समस्त क्रीडाओंका वर्णन सुन लिया, तब कृष्णके नाशके लिए उसने गोकुलके ग्वालोंको नागदह सरोवरसे सहस्रदल कमल लानेकी आज्ञा दी । उस सरोवरमें महाविकराल नाग कुमार देव रहता था । इसलिए उसमें कोई भी स्नान करनेको नहीं जा सकता था । कस समझता था कि जो कोई भी उस सरोवरसे सहस्र-दल कमल ले जायगा, मेरा वह शत्रु नाग कुमार से मारा जायगा, और यदि बचकर आ गया तो उसे मैं मार दूँगा ।

जब कसका आज्ञापत्र गोकुलमें आया, तब सब गोपों आदिको चिन्ता हुई कि उस कमलको कौन लाये । पर कृष्ण सहस्रदल कमल लानेको तैयार हो गया । इधर नागने अपनी मणियोंसे अग्निकी फुलगनिया कृष्णको जलानेके लिए निकाली, उधर माधव उछल, कर उसके सिर पर जा सवार हुआ । कृष्णने अपने पाँवसे नागको कुचला और सहस्रदल कमल लेकर बाहर आ गया । जो गोप-गोपियाँ और वलभद्र सरोवरके किनारे चितित खड़े थे, वे हरिको बाहर विजयी आता देख कर हर्षसे नाचने-गाने लगे और “धन्य-धन्य” के नारे लगाने लगे । भुजगोंको भुजाओंसे जीत कर कमलको लेकर पर्वतके समान उड़ते हुए शीघ्र ही मुकन्द आ गये । गोप भी अनेक कमल लाये, उनको बाँध कर कसके पास भेजा । कस क्रोधसे जल उठा, उसके मुहसे बहुत गर्म सास निकल रही

थी। उसने सभी ग्वालोंको मल्लयुद्धके लिए मथुरा आनेकी आज्ञा दी। उधर उसने अपने पहलवानोंको इकट्ठा किया। कस किसी न किसी तरह कृष्णको मारना चाहता था।

इधर वसुदेवने अग्ने पुत्र अनावृष्टिसे मत्रणा करके उसे अपने बड़े भाई समुद्रविजयको सब समाचार देने और चतुरगी सेना लेकर सहायताके लिए बुलानेको भेजा। यह समाचार सुनकर राजा समुद्र विजय अपने सब भाइयों तथा सेना-सहित दृष्टि कसको जीतने वसु-देवके पास आया।

उन्होंने अपने आनेके असल उद्देश्यको छिपा कर यह प्रकट किया कि वह बहुत दिनोंसे बिछड़े अपने छोटे भाई वसुदेवसे मिलने आया है। वे सब वसुदेवके पास गये। कस भी मनमे अनेक नकाए लिये हुए उनको मथुरामे लाया। सबको डेरो मे ठहराया और उनका बड़ा आदर किया। उनके भोजन आदि का प्रवध किया। कसने वाहरसे कपट पूर्वक स्नेह प्रदर्शित किया, पर उसके मनमे तो द्वेषाग्नि जल रही थी। इसलिए उसने गोकुलके गोपोंको मल्लयुद्धके लिए पत्र लिखा।

इधर वलभद्रने कसकी सब चाले समझ कर सब गोपोंको प्रेरणा देकर मल्लयुद्धके लिए तैयार किया। और यशोदाको धमका-कर कृष्णको स्नानकरके शीघ्र तैयार करने और भोजन बनानेको कहा। फिर वलभद्र और कृष्ण नदीके किनारे गये। वहा एकान्त मे वलभद्रने कृष्णसे कहा, “हे कृष्ण! तू आज उदास क्यो है? तेरे मु हसे लम्बे-लम्बे उच्छ्वास क्यो निकल रहे हैं। तेरी आखोमे आसू क्यो है? तेरा चेहरा मुरझाये कमल सद्ग कातिहीन क्यो दिख रहा है?” तब कृष्णने वलभद्रसे कहा, “हे आर्य! मैं आपको अपने दुख का कारण बताता हूँ। आप मेरे गास्त्र पढानेवाले गुरु, महा पडित और लोक-व्यवहारको जानने वाले हो। आप दूसरों को

मार्ग बतानेवाले और महाविवेकी हो, फिर आपने मेरी पूज्य माता यशोदाको जो तिरस्कारपूर्ण वचन कहे, वे आपके योग्य न थे ।” ये-वचन कृष्णने बलभद्रको उल्हनेके रूपमे कहे ।

कृष्णकी इन वातो को सुनकर बसुदेव उसे छातीसे लगा कर, गदगद वारणी और हर्षके आंसू वहाते हुए कृष्णसे पीछेका सब वृत्तान्त कहने लगा । बलभद्रने कृष्णको बताया, “हे कृष्ण! राजा जरासिंध की पुत्री जीवयशा कससे व्याही गई । जब कसके बडे भाई मुनि अतिमुक्तक आहारके लिए उसके घर आये, तब जीवयशाने मुनिके सामने तेरी असली माता देवकीके गन्दे वस्त्र डालकर उनसे अविनय तथा अगिष्ठताका व्यवहार किया । इस पर मुनिने भविष्यवारणी की कि देवकीका सातवा पुत्र नवा नारायण उसके पति कंस और पिता जरासिंधको मारनेवाला होगा । इस पर कसने देवकीकी समस्त सन्तानको होते ही मारनेका निश्चय किया ।” इसे आगे बलभद्रने कृष्णको उसके छह भाइयो अर्थात् तीन युगलोके भद्रलपुरकी सेठानी अलका के मृतक तोन युगलो से बदलने और कृष्ण को यशोदाकी लड़कीसे बदलनेकी सब वाते बताई । इसके अतिरिक्त कृष्णको मारनेके लिए कसने जो-जो उपाय किये वे सब बलभद्रने कृष्णको सुनाये । इन सब वातोको सुनकर कृष्णको कसपर अति क्रोध उत्पन्न हुआ । फिर बलभद्रने कृष्णको आगे बताया कि जब कसने मल्ल-युद्धके द्वारा उसको मारनेका उपाय निकाला है । बलभद्र कृष्णको पीछेकी ये सब घटनाएँ और वृत्तान्त बताकर महापापी कसके प्रति उसको भड़काना और क्रुद्ध करना चाहता था ।

बलभद्रके ये वचन सुनकर कृष्णने कसको मारनेका निश्चय किया । अब तक उसका यह विचार था कि उस जैसा सामन्त, योद्धा और गस्त्र विद्या प्रवीण गोपोके कुलमे क्यों पैदा हुआ? आज उसे रोहिणीके पुत्र अपने बडे भाई बलदेवसे यह मालूम हुआ कि वह हरिवंशी है और क्षत्री कुलका है । उसे यह सुनकर गर्व हुआ कि वह

उस वग-का है, जिसमें तीर्थकर श्री मुनिसुन्नत नाथ जी हुए और बाईसवे तीर्थकर श्री सोमनाथ जी होंगे। उसे अब मालूम हो गया कि देवकी उसकी माता और वसुदेव उसके पिता हैं। उसे समुद्र विजय और वलभद्रसे अपने सम्बन्ध भी ज्ञात हुए। उसको अब यह मालूम हुआ कि नद और पशोदा उसको पालने-पोसने वाले धर्म-के मा-बाप हैं। अब वह समझा वह गोपीपुत्र नहीं, क्षत्री पुत्र है। भेड़ोंके बीच पले हुए सिह-पुत्रको जैसे सिह पुत्र होनेका ज्ञान होने-पर अपना असली वश, कुल, रूप और शक्ति मालूम हुए। उसका मुख-कमल हर्ष और आनन्द से चमक उठा। दोनों भाई जन्म जन्मान्तरके स्नेहसे आपसमे छातीसे छाती मिला कर मिले।

फिर वे यमुनामे स्नान कर घर आये और भोजन किया। वलभद्रने अपनी रुचि अनुसार भोजन किया और कृष्णने गायोंका धी, दूध और मिठाइया खाईं। इसके पश्चात् वलभद्रने पीताम्बर और पुष्पमालाएं पहनी।

बलभद्र और कृष्ण दोनों मल्ल युद्ध विद्यामे अति निपुण थे। वे महाभयकर मल्लका भेष धारण करके मनमे कसको विघ्वस करनेका निश्चय करके गोपोंके साथ मथुराकी ओर चले। वलवान इतने कि चरणों की चोट करे, तो पृथ्वी दहल जाये।

अभी वे मार्गमे ही थे, कि कसके पक्षके तीन असुरोंने उन पर आक्रमण किया। उनमे से एकने नागका, दूसरेने गधेका और तीसरेने भयानक धोड़ेका रूप बना रखा था। कृष्णने सबको भगा दिया। फिर केसी नामके असुरने उन पर आक्रमण किया। उसे भी सबने भगा दिया।

फिर वलभद्र और कृष्ण आदि नगरके द्वारपर आये। द्वार पर आते ही दो मस्त हाथी उनके सामने आये। मदके भरनेसे उनके कपोल भीज रहे थे। कसकी आज्ञासे महावतने इन दोनों हाथियोंको

इन पर चढ़ाया । दोनों भाई इन हाथियोंको देखकर हृष्पित हुए । दोनों भाई मल्ल युद्धकी रगभूमिके महा निपुण मल्ल थे । चम्पक नामक हाथीके सामने तो राम, जिनको वलदेव कहते हैं, गये और दूसरे पादभरके सन्मुख फनिरिपु नागको दमन करनेवाले दामोदर अर्थात् कृष्ण जा डटे । दोनों भाईयोंने इन गजोंसे युद्ध किया । हाथी अति वलवान थे और उनको मारना हर एक योद्धाके लिए आसान न था । पर उन दोनों वीरोंने थोड़ी ही देरमें उन दोनोंके दांत उखाड़ दिये । वे दन्तहीन हाथी दहाड़ते-भागते नगरमें गये ।

इधर वे दोनों वीर अपने गोप माथियों सहित नगरमें गये । अपने कधोंसे महा मल्लोंको घकेलते थे अखाड़ेमें पहुचे । उस अखाड़े या रग भूमिका वर्णन करना बड़ा कठिन है । रगभूमिके द्वार कमलोंकी कोपलोंसे मडित गोभा दे रहे थे । कमलोंपर भौंरे गुजार कर रहे थे । बड़े-बड़े राजा और विशिष्ट पुरुष मल्ल युद्धका कौतुक देखनेके लिए वैठे थे । हरि और हलधर अर्थात् कृष्ण और वलभद्र गरज रहे थे । खम ठोक-ठोक कर अपने चरणों और भुजदण्डोंके पुटोंकी चेष्टा कर रहे थे । विविध प्रकार की मल्लविद्या की कला और हृष्ट हृष्टि और हृष्ट मुठिया दिखा रहे थे । इनके प्रवेश करते ही उनकी चेष्टाओंसे रगभूमिकी गोभा बढ़ गई । सब सावधान होकर बैठ गये । वलदेवने वसुदेवको आँखके सकेतसे सब कुछ बता दिया और कहा “हे हरि ! यही बैरी क्स है । इसके पास जरासिंघके आटभी हैं । और ये समुद्रविजय आदि तेरे ताऊ और ये उनके बेटे तेरे भाई हैं ।” उन सबने एक दूसरेको देखा ।

अब कसने मल्लोंको मल्लयुद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा दी । आज्ञाको भुनते ही सबने अपनी-अपनी जोड़ीसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया । अनेक पहलवान खम ठोक रहे थे और गरज रहे थे । उन योद्धाओंके मल्लयुद्धमें वह रगभूमि बड़ी रमणीक लग रही

थी, जैसे जगली भसे क्रोधसे आपसमें लडते हैं, वसे ही वे मल्ल आपसमें लड रहे थे ।

इसके पश्चात् दुष्ट कसने चाहुर नामक मल्लको कृष्णसे लडने-की आज्ञा दी । चाहुर मल्लका वक्षस्थल पर्वतकी भारी भित्तिके समान विस्तीर्ण था, और उसकी भुजाए महावट थम्भ के समान थी । वह प्रतिदिन अनेक दड-वैठक लगाता था । स्वामीकी आज्ञा पाते ही चाहुर आगे बढ़ा, उसके साथ ही कसकी आज्ञासे विप समान विपम हृष्टि वाले दूसरे मल्ल मुष्टिको कृष्णसे लड़नेका आखसे डगारा किया । उसका अभिप्राय था, कि वे दोनों इकट्ठे होकर भूधर-कृष्ण को मारे । वे दोनों मल्ल कृष्णपर टूट पडे । उन दोनों मल्लोंके नख महाकठोर, महा तीक्षण और अति विकराल थे । मुट्ठिया वाधे हुए वे मल्ल सिंहके समान भयकर आकारवाले और स्थिर चरणोवाले थे । कृष्ण चाहुर मल्लके सामने आ डटा और वलभद्र दूसरे मल्ल मुष्टिके सामने । मुष्टि मल्लकी मुट्ठियोंकी चोट वज्रघातके सदृश थी । दोनों जोडियोंका मल्ल युद्ध होने लगा । मुष्टि मल्लको अपनी तरफ आते देखकर वलभद्र बोला, “वैठो, वैठो ।” ऐसा कहकर वलदेवने मुष्टिको एक थपेड़ मारी और उसके प्राण तत्काल निकल गये । वलभद्र समान शलाका पुरुपसे तो देव भी नहीं लड सकते थे, फिर उस मुष्टि मल्ल जैसे मनुष्यकी तो वात ही क्या ? फिर कृष्णने चाहुर मल्लको अपनी भुजाओं में डतने जोरसे भीचा कि उसके मुखसे रुधिरकी धारा वह निकली और तत्काल उसके प्राण निकल गये । यद्यपि वह चाहुर डतना सबक्त, महावलवान और गर्ववान था कि कोई मनुष्य उसे जीत नहीं सकता था, परन्तु हरि पर उसका कोई जोर न चला । कृष्ण स्वयं हरि था । वह सिंह और इन्द्रके समान शक्तिशाली था । चाहुर और मुष्टि मल्ल दोनों एक सहस्र सिंहों और एक हजार मस्त हाथियोंसे भी अधिक वलवान थे, पर उन दोनोंको वलभद्र और कृष्णने तुरन्त मौतके घाट उतार दिया ।

अब कस स्वय रगभूमिमे उत्तर पडा । उसके हाथोमे तीक्षण शस्त्र थे । रगभूमिमे कसके आते ही वह चलायमान हो गई । समुद्रके सट्टग गरजता हुआ कस कृष्णपर टूट पडा । तब महावली कृष्णने लपककर कसके हाथसे खड़ग छीन कर म्यानमे डालदी । अब वडे क्रोधसे कृष्णने उसको टागोसे जोरसे पकड कर चारो ओर घुमाया और पत्थरपर पटक कर मारा । कृष्णने हस कर उससे पूछा, “वस, इसी बलपर इतना गर्व था ?” कसके पछाडे जाते ही, उसकी समस्त सेना युद्धके लिए तैयार हो गई । इस पर कुटिल भृकुटि बलभद्र अकेले ही उनके सामने आ डटा । महल का खम्भा उखाड कर वह योद्धाओं पर टूट पडा । वज्रपात समान खम्भ के वारोसे बलभद्रने वहुतसे योद्धाओंको मार दिया । बलदेव वासुदेवसे भला कौन लड़ सकता था ? तब कसके सब योद्धा सामन्त रगभूमिसे भाग खडे हुए ।

कसके योद्धाओंके पराजित होनेके पश्चात् जरासिंधकी जो महा सेना कसके आधीन थी, उसके वडे-वडे राजा और योद्धा युद्धके लिए तैयार हो गये । यादवों पर उनकी विप्रम हृष्ट थी और वे समुद्रके समान गरज रहे थे । चारो दिशाओंसे सामन्त रगभूमिमे आ डटे । यद्यपि वह समस्त सेना कसके लिए लड़नेको सावधान और तत्पर थी, पर बलभद्र और कृष्णके सामने वह ठहर न सकी ।

विजयी बलदेव और कृष्ण मल्लके वेपमे लगर-लगोटे कसे हुए समस्त आभरणोंसे युक्त रथमे बैठ कर माता-पिता देवकी-वसुदेवके महलमे गये । वहा समुद्रविजय आदि सभी ताया-ताई आदि उपस्थित थे । हलवर और हरिने अनुक्रम से समुद्रविजय आदि आठो ताऊओंके चरण स्पर्श किये, फिर सब ताइयोंके पाँव पढे । सबने उन्हे छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिये । चिरकालके विरहसे हृदयमें जो आत्माप उपजा था, उसे शात करनेके लिए यह मिलन जलधाराके समान था । ऐसे प्रफुल्लित बदन पुत्रका सयोग सबके लिए सुखदायक

हुआ। देवकी और वसुदेव भी पुत्र कृष्णका मुख देखकर अतुल सुखको अनुभव करने लगे। यशोदाकी पुत्री जिस पुत्रीकी नाक कसने दबाकर चपटी की थी, वह कृष्णको देखकर आनन्द विभोर हो गई। कितना स्नेहपूर्ण भावभीना वातावरण था वह! कृष्णने घर आते ही उग्रसेनको बधनमुक्त किया। कसके भय और शकासे मुक्त समस्त नगरवासियों के हृदय उत्साहसे भर गये। पर कसके समस्त कुदुम्बीजन और उसकी पत्नी जीवयशा आज विधवा हो गई थी। मुनि अतिमुक्तकी भविष्यवाणी सत्य हो गई। इसके पश्चात् कसका दाह-स्स्कार कर दिया गया।

कसके दाह-स्स्कार आदिके पश्चात् जीवयशा अपने पिता जरा-सिधके पास रुदन-विलाप करती हुई गई। ग्रति व्यथाके कारण उसका हाल बेहाल था। उसका कण्ठ रुका हुआ था।

कसवधके पश्चात् सभी यादव अपनी सभामे बैठे हुए थे। उसी समय मथुराके सभी निवासियोंने आकाश में एक विद्याधरको मछली जैसी लीला करते देखा। वह विद्याधर अतिशीघ्रगामी और मीन जैसी गति वाला था। वह सुकेत नामक विद्याधरका दूत था। उस दूत विद्याधरका शरीर अति उज्ज्वल तथा वस्त्र अति निर्मल थे। उसके शरीर पर चदन आदिका लेप था। वह दूत विद्याधर रथुनु-पुर चक्रवाल नगरसे मथुरा आया था। जब वह दूत आकर द्वार-पर खड़ा हुआ, तभी द्वारपाल उसे राज सभामे अन्दर ले गया। राज-दरबारमे सभी यादव अपने-अपने स्थानपर विराजमान थे। दूतने सबको नमस्कार करके राजा समुद्रविजयको सम्बोधित करते हुए कहा, “हे नरेन्द्र! मेरी विज्ञप्ति सुनिये। विजयद्वि गिरिमे दक्षिण श्रेणीमे रथुनुपुर चक्रवाल नगरका राजा सुकेत विद्याधर है। वह राजा नमि-विनमिके कुलकी ध्वजा समान है। वह सब विद्याधरोंका स्वामी है। उसने बीर शिरोमणि कृष्णके सभी पराक्रमोंका हाल सुना है, कि उसने किस प्रकार देवोपुनीत धनुपको

चढ़ाया और नागगच्छापर आरोहण किया । कृष्णके पराक्रमोंको मुनकर वे उसको अति प्रेम करते हैं । उसकी सत्यभामा पुत्री विवाह-योग्य, सर्वगुण-सम्पन्न और अतिरूपवान है । राजाने मुझे कृष्णके साथ उसके विवाहकी प्रार्थना करने भेजा है । कृपया इसकी स्वीकृति दे दीजिये ।”

समस्त यादवोंने दूतके इस मनोहारी वक्तव्यको सुना । तब समुद्रविजय ने कृष्ण को आदेश दिया ‘‘तुम राजा सुकेत की पुत्री सप्तभामा से विवाह करो ।’’ अपने ताऊ समुद्रविजयके इस आदेश-को सुनकर कृष्णने अति प्रसन्न हो दूतसे कहा, “हे भद्र ! आपका विवाह-सन्देश सुनकर हमारे पूज्य राजाने मुझे जो आदेश दिया है, वह मुझे स्वीकार है । राजा सुकेत तो वास्तवमें कुवेरके सदृश है, जिसकी पुत्री सत्यभामा रत्नधाराके समान है । यदि वह रत्नधारा-वृष्टि वन कर मुझ रत्नाचल पर वरसती है तो इससे अधिक प्रसन्नता की वात मेरे लिए क्या हो सकती है ? राजा सुकेतकी दी हुई वह रत्नराशि लक्ष्मी वन कर मेरे गृहकी गोभा बने ।’’ ऐसे प्रिय और मीठे वचन कह कर दूतका यथोचित आदर सम्मान तथा आतिथ्य करके विदा किया गया ।

यदुवंश कुल तिलक राजा समुद्रविजय और कुमार कृष्णकी स्वीकृति पा कर दूत अपने उद्देश्य सिद्धिसे बहुत हर्षित हुआ । उसने जाकर राजा सुकेतसे कहा—‘नमस्कार नरेन्द्र ! बधाई स्वीकार हो । आपकी मनोकामना पूरी हो गई । राजा समुद्रविजय और कृष्णने कृष्णके साथ सत्यभामाके विवाहके प्रस्तावको बड़े हर्पसे स्वीकार किया है । बलदेव और कृष्ण इस पृथ्वीपर प्रकाशपुज है । उनके सामने सवका तेज फीका पड़ता है । मैं उनके गुणोंका वर्णन नहीं कर सकता ।’’

विद्याधर दूतके मुखसे कृष्णके रूप, काति, प्रताप, धर्मज्ञता और गुण सुनकर राजा सुकेतके आदेशसे उसका छोटा भाई रत्नपाल

अपनी पुत्री रेवती और अपने भाई सुकेतकी पुत्री सत्यभामा इन दोनोंको लेकर मथुरा आया। रेवतीका विवाह बलभद्रसे और सत्यभामाका विवाह कृष्णसे किया गया। सत्यभामा राजा सुकेतकी रानी प्रभाकी पुत्री थी। इन दोनों विवाहोंकी शोभाका क्या वर्णन किया जाये? बलभद्र और कृष्णके ये प्रथम विवाह थे। यादव-परिवार, मथुराके नर-नारियों और राजा सुकेत के कुटुम्बमें हर्ष और उत्साहका समृद्ध लहरे मार रहा था। इनके विवाहमें स्वयं विद्याधरियाँ सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित अपने सुकोमल, लचीले सुन्दर और नृत्य कर्मोंमें प्रवीण शरीरोंसे नृत्य करके सभी उपस्थित नर-नारियों को रिभा रही थी। नृत्य करते-करते उनके कोमल गरीर शिथल हो गये, वस्त्र, अगियाएं और केशोंके बन्धन ढीले पड़ गये। उनके नूपुर के समधुर शब्दसे विवाहमङ्घ पु जायमान हो रहा था।

बलभद्र और कृष्ण वरके मणिमङ्गित वस्त्राभूषणोंमें इतने सुन्दर और प्यारे लग रहे थे, कि उनकी रूप-छविको देखकर वर-पक्ष और कन्या पक्ष के सभी नर-नारी आनन्द विभोर हो रहे थे। बलभद्रकी माता रोहिणी और कृष्णकी माता दवकीके सुख और आनन्दका तो ठिकाना ही न था।

सत्यभामा और रेवती अपनी अनेक कलाओं, विद्याओं, गुणों और चतुराईसे आदर्श वन्धुओंके समान अपने पतियो—कृष्ण और बलभद्रके मनको मोहने लगी। वे समयानुमार उचित कर्तव्य करती। इनके सद्व्यवहारसे इनके सास-श्वसुर सभी प्रसन्न थे।

उधर जीवयगा अपने पतिके वधसे अति दुखी, बदलेकी कलुष भावनाओंसे पूर्ण, अपने रुदन-विलाप, विखरे केंगो और मुरझाये गरीर आदिसे भमुद्र के समान अपने पिता जरासिधके मनमें क्षोभ उत्पन्न करनेमें सफल हो गई। उसने यादवोंके दोपो और अपराधों

का पिताको बताते हुए कहा, “हे पिता ! समस्त पृथ्वीके आप स्वामी हैं और आपके होते हुए मेरा पति मारा जाय, मैं विधवा बन जाऊँ । यह आप कैसे सहन करेगे ? आप उनसे बदला ले । जब तक यादवोंके रुधिरको उनके सिरोके सरोज पात्रमें भर कर पति-को पानी न दूँगी, मुझे सन्तोष न होगा, मेरा क्रोध शात न होगा ।” पुत्रीके दुख और विलापसे दुखी जरासिध जीवयशाको कहने लगा, “हे पुत्री ! तू गोकको त्याग दे । जीवके पूर्वोपार्जित कर्म प्रबल होते हैं । किसीका किया कुछ नहीं होता, जो होनी होती है, वह होती है । भवितव्यके आगे किसीका वश नहीं चलता । यादवोंका बुरा होनहार है, जो उन्होंने उन्मत्त होकर तेरे पतिको मारा है । वे अवश्य मरना चाहते हैं । उन मूर्खोंने यह नहीं सोचा कि कसकी पीठपर उसका श्वसुर जरासिध है । तेरे ही चरणोंकी वे शरण आये और तेरे लिए ही कटक बने, तो समझले कि उनका नाम कोई न सुनेगा । उनका कुल, रूप तथा बल बहुत ही बढ़ गया है । उसीका घमण्ड उन्हे हो गया है । अब तुम ही उन्हे मेरे क्रोध रूपी दावानल-में भस्म हुआ देखना ।”

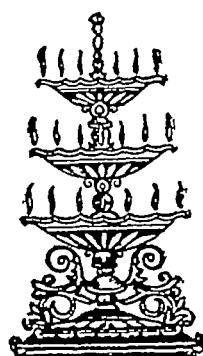
पिताके इन सात्वनापूर्ण तथा आश्वासनदायक शब्दोंको सुनकर जीवयशाकी क्रोधाग्नि बुझ गई ।

राजा जरासिधने कालके सदृश अपने पुत्र कालयवनको यादवोंके नाशके लिए सेना सहित भेजा, पर वह सत्रह बार आक्रमण करनेपर भी उन्हे न जीत सका । हार कर वह मालावर्त पर्वत पर भाग गया ।

राजकुमार कालयवनके हार कर भागनेका समाचार सुनकर राजा जरासिध वडा चितित हुआ । अब उसने अनेक युद्धोंके विजेता अपने भाई पराजितको यादवोंसे युद्ध करने के लिए भेजा । यादव शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेका अभिलापी अपराजित यादवोंपर

प्रबल काल रूपो अग्निके समान प्रज्वलित अपनी सेनाको प्रेरित करके आगे बढा । अपराजितने यादवोसे बहुतसे युद्ध किये, पर कृष्णके बाणोकी मारको बह सहन न कर सका और हारके कष्ट निकालनेके लिए बीर शश्यो पर सदाके लिए सो गया ।”

यह समस्त कथा गौतम गणधरने रोजा श्रेणिकको सुनाई । अन्तमे उन्होने कहा कि जैन धर्मकी मेघधारासे इस पृथ्वी पर अनेक प्रकारके फल उपजते हैं । यह धर्म जल धोरा लक्ष्मी और कीर्तिको उत्पन्न करती है और मोक्ष देती है । धर्म सबको हर्ष तथा सुख देता है ।



श्री नेमिनाथ जन्म

गोतम गणधर स्वामी राजा श्रेणिकको तीर्थकर नेमिनाथके गर्भ और जन्मका वर्णन सुनाने लगे ।

पहले यह कहा गया था कि राजा समुद्रविजयके घर नेमिनाथ तीर्थकरका जन्म होगा । राजा अधक वृष्टिके दस पुत्र थे, जिनमे सौर्यपुरका राजा समुद्रविजय सबसे बड़ा था । उसकी रानीका नाम शिवदेवी था । नेमिनाथके गर्भमे आनेसे छह महीने पहले ही देव राजाके घरमे रत्नोंकी वर्षा करने लगे ।

एक दिन रातके पिछले पहरमे रानी शिवदेवीको सोलह स्वप्न दिखाई दिये । पहले स्वप्नमे रानीने मद भरता, चिंघाडता और कैलास पर्वतके समान वर्णवाला श्वेत हाथी देखा । दूसरे स्वप्नमे ऊँचे सीगो, लम्बी पूँछ और दीर्घ कधोवाला सफेद वैल देखा । तीसरे स्वप्न मे रानीने सफेद रंगका दहाड़ता हुआ और उज्ज्वल दाढ़ोवाला सिंह देखा । चौथे स्वप्नमे रानीने लक्ष्मी देखी जिसको हाथी कलशोंसे स्नान करा रहे थे । पाचवे स्वप्नमे आकाशमे दो निर्मल पुष्पमालाएँ देखी । रानीने छठे स्वप्नमे अन्धकार नाशक चन्द्रमा देखा । सातवे स्वप्नमे रानीने सूर्य और आठवे स्वप्नमे मछलियोंका जोड़ा देखा, जो जलमे क्रीड़ा कर रहा था । नवे स्वप्नमे रानीने कमलके पत्तोंसे ढके दो जलपूर्ण कलश और दसवे स्वप्नमे पवित्र जलपूर्ण निर्मल सरोवर देखा । यारहवें स्वप्नमे रानीने मूँगा-मोती पूर्ण ऊँची तंरगोवाला

समुद्र और बारहवे स्वप्नमे महासुन्दर मणि आदिसे जडा हुआ सिंहासन देखा । तेरहवे स्वप्नमे रानी शिवदेवीने एक सुन्दर विमान देखा । और चौदहवे स्वप्नमे पातालसे निकलता नागेन्द्रका भवन देखा । पन्द्रहवे स्वप्नमे रानीने वहुत ऊँची रत्न राशि देखी, जिसके प्रकाशसे आकाशमे नाना रगोका इन्द्रधनुष वन गया और सोलहवे स्वप्नमे राजा समुद्रविजयकी प्रिया गिवदेवीने महापवित्र कातिवाली निर्धूम अग्नि देखी । इन स्वप्नोके अन्तमे रानीने एक श्वेत हाथीको अपने मुख मे प्रवेश करते देखा ।

कातिक सुदी छठके दिन रानी शिवदेवीने अपने गर्भमे तीर्थकर नेमिनाथको धारण किया । इन स्वप्नोके पश्चात् “जय, जय” शब्दो और मगलगानसे जागृत और आलस्य रहित होकर रानी प्रातः मगल-स्वरूप वस्त्राभूषण पहनकर स्वप्नोका फल पूछने राजाके सभीप गयी । राजाने वडे प्रेम और आदरसे रानीको सिंहासन पर विठाया । रानीके द्वारा इन सोलह स्वप्नोका फल पूछनेपर राजा समुद्रविजयने कहा, ‘‘हे प्रिये ! तू त्रिभुवनके स्वामी तीर्थकरको जन्म देगी । तेरा पुत्र भगवान्, महतोका महत और जगत्रयका गुरु होगा । तू धन्य है । मैं इन सोलह स्वप्नोका फल सक्षेपमे तुम्हे बताता हूँ । शुक्लवर्णका हाथी देखनेका यह फल है, कि तेरा पुत्र संब मे श्रेष्ठ सबका एकाधिपति और सर्वोत्कृष्ट होगा । श्वेत वृषभ देखने का अभिप्राय यह है, कि तेरा पुत्र कलक रहित बुद्धिवाला, अपने गुणोसे अपने कुल और तीन लोकको शोभित करनेवाला, धर्मरथको और मोक्षमार्गको चलानेवाला होगा । स्वप्नमे सिंह देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र अत्यत वीर्यका धारी मिथ्यादृष्टियोके मदको हरनेवाला, अद्वितीय वीर और तपोवनका ईश्वर होगा । तुमने जो अभिषेक करती लक्ष्मी देखी है, उसका आशय यह है, कि जन्म समय सुरेन्द्र तेरे पुत्रका अभिषेक करेगे । दो पुष्पमालाए देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र सुगन्धित जरीरका धारक, अनन्त दर्शन-ज्ञानका धारक, लोक

और अलोक का ज्ञाता-दृष्टा होगा और जो तूने स्वप्नमें चन्द्रमा देखा है, उसका अभिप्राय यह है, कि तेरा पुत्र जिनेन्द्र चन्द्र जगतका अधकार हरनेवाला होगा। सूर्यको स्वप्नमें देखनेसे तेरा पुत्र अपने प्रचण्ड तेजसे समस्त तेजस्वियोंके तेजको जोत कर जगतमें तेजोनिधि होगा। और अन्तर वाह्यके अधकारको नष्ट करेगा। हे मृग नेत्रे ! मछलियोंके जोडेको देखने का फल यह होगा, कि तेरा पुत्र इन्द्रियोंका भोग-उपभोग त्याग कर सिद्ध लोकमें अनन्त सुखरसका भोक्ता होगा। हे प्रियभाषिणी ! दो पूर्ण कलगोंको स्वप्नमें देखनेका फल यह है, कि तेरा घर नव निधिसे पूर्ण होगा, तेरे पुत्रके सब मनोरथ पूरे होंगे और उसके प्रभावसे जगत आनन्दरूप होगा। अनेक कमलोंसे भरा जो सरोवर तूने देखा है, उसके परिशाम-स्वरूप तेरा पुत्र समस्त लक्षणोंसे मण्डित होगा, महा ज्ञानी, तृष्णा रहित और मोङ्गलामी जीवोंकी तृष्णा दूर करके स्वयं निर्वाण प्राप्त करेगा। गम्भीर समुद्र देखनेका फल यह है, कि तेरा पुत्र समुद्र समान गम्भीर बुद्धि होगा और अनेक भव्य जीवोंको अमृत रस पिलायेगा। रत्नोंका सिंहासन स्वप्नमें देखनेका फल यह है, कि उसके सिंहासनको सब सेवेंगे और जो सबके द्वारा पूज्य सिंहासन है, तेरा पुत्र उस पर विराजेगा। विमानको देखनेका फल यह है, कि जयत नामक विमान से प्रभु तेरे गर्भमें आयेंगे और हे प्रिये ! तूने जो नागेन्द्रका भवत निकलता देखा, उससे तेरा पुत्र मति श्रुति और अवधि तीन ज्ञानका धारक होगा। रत्नरागिको देखनेके कारण तेरा पुत्र गुण रत्नोंकी राशिका धारक होगा। तूने जो निर्धूम अग्नि स्वप्नमें देखी, उसके फल-स्वरूप तेरा पुत्र गुकलध्यान रूप अग्नि से समस्त कर्मोंको भस्म करेगा। ऐसे पवित्र चरित्रवाले जिनेन्द्र सूर्यको जन्म देनेसे तू अपने वशको, अपनेको, मुझे और इस जगतको पवित्र करेगी ।”

रानी गिवदेवी अपने पति के मुखसे स्वप्नोंके ये फल सुन कर चित्तमें अति हृषि मनाने लगी। इतना ही नहीं, वह यह मानकर

कि सर्वगुण सम्पन्न पुत्र उसकी गोदमे आ गया है, जिन-पूजा आदि प्रवासा-योग्य शुभ क्रियाएं करने लगी ।

जब प्रभु गर्भमे आये, तब माता शिवदेवीके गर्भकी और ही प्रभा हो गयी । न उसकी त्रिवली भग हुई और न उषण श्वास निकले । न उसे आलस्य हुआ और न उसके होठोका रग फीका पड़ा । इनके गर्भमे आते ही माता शिवदेवीका मन समस्त जीवोकी दयासे भर गया, मनमे निरन्तर तत्त्वोका विचार रहने लगा । उसके वचन सब जीवोके हित भाषणमे और जीवोका सन्देह निवारणमे प्रवृत्त रहने लगे । उसका शरीर व्रतरूपी आभूषणोसे सज गया और विनयके पोषणमे प्रवृत्त रहने लगा ।

राजा समुद्रविजय महासमुद्रकी लीला, रग और रूपको धारने लगा । माता-पिता सभी सुर-नर और विद्याघरोके पूज्य बन गये । राजा-रानीका परस्पर स्नेह खूब बढ़ गया ।

नौ महीने पूरे होने पर शुभ तिथि बैसाख शुक्ला त्रयोदशीको चित्रा नक्षत्रमे रात्रिकी शुभ वेलामे रानी शिवदेवीने मोक्षदाता, जगत मे प्रकाश करनेवाले, जीवोका मन हरनेवाले जगदीशको जन्म दिया । भगवान् नेमिनाथ हरिवशके आभूषण, तीन ज्ञान रूप नेत्र और एक हजार आठ गुणों को धारण करनेवाले थे । उनका शरीर नीले कमल समान श्यामसुन्दर, कातिमान था और वह दशो दिशाओं और प्रसूतिगृहको जगमगाने लगा था । जिनेन्द्र चन्द्रके जन्मसे जगत-मे हर्षका समुद्र लहरे मारने लगा और समस्त लोक हर्षसे नाच उठा । जन्म समय दैवी गङ्गा, ढोल, सिंह-नाद तथा घण्टे शब्द करने लगे । इन्द्र आदिके सिंहासन और मुकुट कम्पायमान होने लगे । तब वे अपने ज्ञानसे भगवान् के जन्म कल्याणकको समझकर आनन्द विभोर हो उठे । उन्होने भरत क्षेत्रकी तरफ प्रस्थान किया । विशुद्ध

दृष्टिवाले अहिमन्द्र देवने प्रभुके जन्मको जानकर सिंहासनसे उठकर सात पग जाकर जिनराजके चरणारविन्दको नमस्कार किया ।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्रानियो सहित ऐरावत हाथी पर सवार होकर देवाधिदेव तीर्थकरके दर्शनको आये । भगवान् के जन्मके समय देवियाँ नाना प्रकार के आभूषणोसे सुसज्जित माता शिवदेवीके निकट श्वेत छत्र लिये खड़ी थीं । और सिर पर चबर डुला रही थीं । इन्द्रने आकर शचि नामक इन्द्रानीको प्रभुको प्रसूतिगृहसे लाने की आज्ञा दी । देवीने एक मायामयी वालक माताके पास छोड़कर माता शिवदेवी और नवजात शिशु तीर्थकरको नमस्कार करके उस पुत्रको अपने कोमल करो से लाकर इन्द्रको सौंप दिया । फिर वे भगवान् को ऐरावत हाथीपर सवार करके सुमेरु पर्वतपर लाये और वहाँ पाण्डुक शिलापर सिंहासन पर भगवान् को बिठाकर पूजा, स्तवनो, गीतो और नृत्यके बीच उनका भक्तिपूर्वक स्वर्णमय कलशोमे भरे दूधसे महाअभिषेक किया । जन्म कल्याणकका यह दृश्य अतिअद्भुत और भक्तिभावपूर्ण था । फिर अभिषेकके पश्चात् भगवान् को सुन्दर वस्त्र, आभूषण और पुष्पमालाएँ पहनायी । तब उनका नाम अरिष्टनेमि रखा । फिर सबने भगवान् की प्रदक्षिणा की ।

सुरपतिने जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करते हुए कहा, ‘‘हे त्रिलोकीनाथ ! आप विना पढ़ाये सकल श्रुतिके पारगामी, मति, अवधि निर्मल ज्ञानके धारक, मोहनिन्द्रा-रहित हो । आप समस्त जगत् को देखते हो और सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चरित्र रत्नत्रयसे युक्त हो । पूर्वजन्ममे आपने उग्र तप करके सोलह कारण भावनाए करके तीर्थकर प्रकृतिका उपार्जन किया । देवोके समूह आपके चरणोकी सेवा करते हैं । आपके मुख कमलका दर्शन करते-करते तृप्ति नहीं होती । आपके यशसे भरत क्षेत्र और हरिवंश पवित्र हो गये हैं । आपकी दीमिने सूर्य और पूर्णचन्द्रमाकी काति जीत ली है, वे मन्द पड़ गये

है। आपको बार-बार नमस्कार। आप तीन भुवनके परमेश्वर, सब जीवोंपर दयालु है। अब आप अपार दुखसे पूर्ण ससार-समुद्रको पार करके मोक्ष जाओगे। मोक्ष पद समस्त जगतका गिखर है। उसके अग्रभागमे सिद्ध परमेष्ठि विराजते हैं। आप निर्वाण पदके अतीन्द्रिय, अखण्ड और अविनश्वर सुखको भोगोगे। वह सुख केवल भगवान्‌के सेवन योग्य है और सबका—देवो तथा मनुष्योका—सुख उसके सामने तुच्छ है, उसका अनतवॉ भाग भी नहीं है। ससारके समस्त पदार्थोंका निरूपण करनेवाला आपका ही मार्ग है। उसको पालनेसे प्राणी परम पद प्राप्त करते हैं। इस जगतके जीवोंको कृतार्थ करनेवाले आप ही हैं। हम आपके गुणोंकी प्राप्तिकी वाढ़ासे आपकी आराधना करते हैं। आप सर्वोच्च हैं। सुमेर भी आपके स्नानका आसन बना था। हे वीतराग देव। हे सर्वज्ञ देव। आपको नमस्कार।” इस प्रकार श्री नेमिनाथकी स्तुति और उनको प्रणाम करके यह वरदान मागने लगे कि वे जन्म-जन्ममे उनकी भक्ति करे क्योंकि भगवान्‌की भक्ति ही ससार-सागरसे पार उतारनेवाली है।

अभिषेक और स्तुतिके पश्चात् इन्द्र आदि भगवान्‌को ऐरावत हाथीपर सवार करके गीत गाते, नृत्य करते और वाजे वजाते सौर्यपुर लैटे। वे भगवान्‌को बढ़ने, फलने-फूलने, चिरकाल जीवी होने आदिके अनेक आशीर्वाद दे रहे थे।

इस समयकी सौर्यपुरकी शोभा अवर्णनीय थी। नगर ऊची-ऊची ध्वजाओंसे सजा हुआ था। वाजोंके मधुर गम्भीर नादसे दसो दिशाए गूंज रही थी। महा मनोज्ञ सुगवित जलकी वर्षा हो रही थी। वहाँ पुष्पोंकी इतनी वर्षा हुई, कि गलियाँ पुप्पपूर्ण हो गयी। सौर्यपुर लक्ष्मीका निधान, अनेक निधियोंसे भरपूर और महा मगल पूर्ण था। वह नगर भगवान् नेमिनाथके जन्मसे ऐश्वर्य और आञ्चर्य से परिपूर्ण हो गया। भगवान् नेमिनाथ पृथ्वीमे आनन्दको प्रकट

करते और जनताका प्रमोद बढ़ाते हुए आये । वे आयुमें तो वालक थे, पर गुणोंसे बृद्ध थे अर्थात् अपनी आयुकी अपेक्षा बहुत अधिक गुणवान् थे । इनके जन्मसे सौर्यपुरकी प्रजा और राजा समुद्रविजय कमलोंके वनके सदृश प्रफुल्लित हो उठे । इन्द्रने ऐरावत हाथीसे भगवान्‌को उतारकर माता शिवदेवीकी गोदमें दिया । इस समय इन्द्र और इन्द्रानियों और देवियोंने जो नृत्य तथा गान किये, वे अवर्णनीय थे ।

इन्द्र देवोंको भगवान्‌की सेवा, प्रमोद, दिल बहलाने तथा रक्षाके लिए नियत करके अपने स्थान लौटा । इस प्रकार भगवान्‌का जन्मोत्सव पूर्ण हुआ ।



: २३ .

जरासिंध का यादवों पर आक्रमण

जब जरासिंधने अपने भाई अपराजितके युद्धमे मारे जानेका समाचार सुना तो वह शोक रूपी समुद्रमे डूब गया। उससे पहिले उसका पुत्र कालयवन भी यादवोंसे हारकर पर्वतोमे भाग चुका था। कसवधका समाचार सुनकर जरासिंधके क्रोधकी मीमा न रही। यद्यपि उस महाशोकमे उसके प्राण जानेकी सम्भावना थी, पर यादवोंसे बदला लेने और युद्ध करनेके विचारसे उसके प्राण शरीरमे स्थिर रहे। वह अपने जमाई कस और भाई अपराजितको मारने और वेटे कालयवनको पराजित करनेका यादवोंसे बदला लेनेके लिए उनसे लडनेको तैयार हो गया।

जरासिंधने अपने सब मित्र राजाओंसे यादवोंके नाशके उपायो आदिके सम्बन्धमे मत्रणा करके युद्ध की आज्ञा दे दी। राजा जरासिंध-राजनयका ज्ञाता और पुरुषार्थी था। उसका आदेश पाते ही समस्त मित्र राजा तथा स्वामीभक्त राजा अपनी-अपनी चतुरग सेनाएँ लेकर उसके पास आ गये। सेनाओंका समुद्र ठाठे मार रहा था। जिधर देखो उधर सैनिक ही सैनिक। इस समस्त सेनाको लेकर जरासिंधने यादवोंपर चढ़ाई की।

जब जरासिंधके आक्रमण का समाचार चतुर गुप्तचरो द्वारा यादवोंको मिला, तो अधकवृष्टि और भोजकवृष्टिके वशके बयोवृद्ध

राजनेता इस आगामी युद्ध-सकटके सम्बन्धमें मत्रणा करने लगे । यादवोंने सोचा कि जरासिंध तीन खण्डका स्वामी है और उसकी आज्ञा अखण्ड है । वह इतना प्रचण्ड है कि कोई उसे जीत नहीं सकता । उसके पास सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री है । वह अपने कृतज्ञ सेवकोंका गुण मानने वाला है । और जो कोई उससे द्वेष करता है पर फिर उसे प्रणाम करता है, जरासिंध उसे क्षमा भी कर देता है । उसने पहिले अनेक उपकार ही किये हैं, किसी का बुरा नहीं किया । पर अब उसका जमाई कस मारा गया, भाई अपराजित भी मारा गया और उसका पुत्र कालयवन् यादवोंसे हारकर भाग गया, इसे वह अपना अपमान समझता है । अब उस अपमान के मेलको धोनेके लिए वह महा कोपवान् है । वह गर्ववान् इतना है, कि अपने बल और सामर्थ्यको देखता हुआ भी नहीं देखता । यद्यपि उसे कृष्णके पुण्य और सामर्थ्य और वलभद्रका पुरुषार्थ वाल्यावस्थासे ही मालूम है, पर इस समय उसे वे भी दिखाई नहीं दे रहे थे । इसी यदुवंशमें अब नेमिनाथ तीर्थकर भी जन्म ले चुके हैं । उनका प्रभुत्व भी तीन लोकमें है । जिस तीर्थकरकी सेवामें समस्त लोकपाल सावधान रहते हैं, उसके कुलको कौन हानि कर सकता है ? जिस कुलमें तीर्थकर जन्म ले, वह कुल अपराजित होता है । ऐसा कौन है जो आगको हाथसे स्पर्श करे और उसके तापसे बच जाय ? तेज और प्रताप रूपी अग्निकी ज्वालासे युक्त ऐसे तीर्थकर, वलदेव तथा वासुदेवके सन्मुख जीतनेकी इच्छा कौन कर सकता है ?

यद्यपि जरासिंध प्रतिनारायण है, पर उसका नाश करनेवाला यह वलभद्र नारायण इस यदुकुलमें पैदा हुआ है । राजनेताओंने मत्रणा की, कि इस लिए जब तक कृष्ण रूपी अग्निमें यह प्रतिनारायण जरासिंध रूपी पतग अपने पक्षके योद्धाओंके साथ स्वय आकर न भस्म हो, तब तक कालक्षेप करना, समयको टालना ही

उचित है। यह युद्ध-नीति सगत है। इसलिए कुछ दिनोंके लिए हमे शूरवीर कृष्णाको यहाँसे दूसरे स्थान पर ले जाना उचित है। यह कृष्ण तीन खण्डको जीतनेवाला योद्धा है, पर इस समय वह जरासिंधसे लड़नेमें समर्थ नहीं है। इसलिए इस स्थानको त्याग कर हम सब कुछ दिनों के लिए पश्चिम दिशामें किसी और स्थान पर रहे। कार्य को सिद्ध अवश्य होगी। यदि जरासिंध वहाँ भी आये, तो उस रण प्रेमीको वहाँ रणमें प्रसन्न करे।

यदु वंशके वयोवृद्ध राजनेताओंने आपसमें यह मत्रणा करके अपनी सलस्त सेनामें सूचना दे दी। विगुल बजवा कर सबको चलनेके निर्णयसे सूचित किया गया। सब ही सेना और चारों वर्णकी प्रजा कुदुम्ब सहित यादवोंके साथ चलनेको तैयार हो गयी। मथुरा, सौर्यपुर और वीर्यपुरके सभी नरनारियोंने ऐसे प्रस्थान किया, मानो वे वन-क्रीडाको जा रहे हैं। उनके साथ अपरिमाण धनराशि वाहनोंमें लदी थी। वे शुभ तिथि और शुभ नक्षत्रमें अपने स्थानसे चल पडे। यद्यपि वलदेव और वासुदेवके मनमें तब भी यह विचार आया, कि चलनेकी अपेक्षा जरासिंधसे लड़ा जाय, परन्तु बड़ोंकी आजा शिरोधार्य करके उन्होंने प्रस्थान ही किया।

मथुरा आदिसे यादवों, सेना और नर-नारियोंका वह प्रस्थान कल्पना करने योग्य ही था। अनेक नदियों, वनों, पर्वतों और प्रदेशों को पार करते हुए वे पश्चिमकी ओर चले और विन्ध्याचलके समीप डेरा डाला। विन्ध्याचल पर्वत हाथियों, शेरों और अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके कारण बड़ा रमणीक है। उसके शिखर आकाशको छू रहे हैं। उसकी शोभाने सभी के मनको मोहित किया।

यादवोंके प्रस्थानकी सूचना पाकर जरासिंधने उनका पीछा किया। जब यादवोंको जरासिंधके पीछों करनेकी सूचना मिली, वे उत्सव मनाकर युद्धके लिए तैयार हो गये। दोनों पक्षोंकी सेनामें

थोड़ा सा ही अन्तर रह गया था। आशका थी कि दोनों पक्षोंमें युद्ध छिड़ जाय।

तभी वहाँ एक कल्पनातीत घटना घटी। दोनों सेनाओंके बीचके स्थानमें प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो गयी। सब तरफ आग ही आग दिखाई देने लगी। अग्निकी लपटे आकाशको छू रही थी। यादवोंके अधीश अग्निमें जले दिखाई देने लगे। सब सेना जली भस्म हुई प्रकट हुई। स्थान-स्थान पर इनके आभूषण और वस्त्र पड़े थे। हाथी और घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। बुरा हाल था उनका। यह सब देव-रचित माया थी।

वही एक बुढ़िया बैठी जोर-जोरसे रो रही थी। जरासिधने उसे देखकर पूछा, “यह किसकी सेना जल रही है? तू क्यों रो रही है?” तब उस बृद्धाने कप्टसे रोते हुए लम्बे-लम्बे श्वास भरते हुए कहना आरम्भ किया, “हे तेजस्वी! राजगृह नगरमें प्रसिद्ध जरासिध राजा राज करता है। वह सत्यवादी है और उसकी प्रताप रूपी अग्नि वडवानलका रूप धारण करके समुद्रमें भी प्रज्वलित है। उससे वैर करनेमें कौन समर्थ है? यादवों पर कृपा करनेमें उसने कसर न छोड़ी, पर उन्होंने अपराध पर अपराध किये और उस अपराध के प्ररिणामसे वचने के लिए वे किसी दिशामें प्रस्थान कर गये। समस्त पृथ्वी पर कहीं उनको शरण न मिली। चक्रवर्तियोंके कोपसे कौन कहाँ वच सकता है? इसलिए उन्होंने मरणको ही अपनी शरण समझ कर अग्निमें प्रवेश करके अपनेको भस्म कर लिया है। मैं उनके वडोंकी दासी हूँ, इसलिए अपने स्वामियोंकी दुर्विद्वि देखकर दुखी होकर रुदन कर रही हूँ। मैं इतनी बड़ी हो गई, किर भी मैं उनके साथ न जल सकी और आज भी जीनेकी आगा है। सभी यादव राजा अपनी प्रजाके साथ अग्निमें जल गये और मैं दुखिया स्वामियोंके वियोगसे दुखी विलाप कर रही हूँ।”

उस वृद्धाके वचन और अधकवृष्टि और भोजकवृष्टि के मरनेका समाचार सुनकर जरासिंधको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसे हर्ष हुआ कि बिना लड़े ही उसके शत्रु नष्ट हो गये । इसके पश्चात् जरासिंध अपने स्थानको वापिस आया । जलने वाले यादवोंमें जो राजा जरासिंधके सम्बन्धी थे, वह उनको पानी देकर कृत-कृत्य होकर सुख से रहने लगा ।

यह बुद्धिया एक देवी थी, जिसने रूप बदल कर बुद्धियाका बहाना करके जरासिंधको वापिस फेरा ।

चलते-चलते यादव अपनी इच्छासे पश्चिमके समुद्रके बनोमें आये । उस बनमें लौग, इलायची, दालचीनी आदि उत्पन्न होते हैं । वहाँ शीतल मन्द सुगन्धित पवन पर्यटकोंको सुख दे रही है । दूर देश से आये ये यादव नृप पश्चिम सागरके तटपर अपनी प्रजा सहित डेरे डाले हुए हैं ।

जिनके पुण्यका उदय होता है, शत्रु उनका वाल भी बाँका-नहीं कर सकता ॥ ॥ इसलिए विवेकशील स्त्री-पुरुषोंको धर्ममें स्थिर-रहना चाहिए, क्योंकि धर्मके प्रभावसे विघ्न टलते हैं ।

यह कथा गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको सुनाई ।



द्वारिका निर्माण

पश्चिमी समुद्रके तटपर डेरे डाल देनेके बाद श्री नेमिनाथ, राजा समुद्रविजय, उनके भाई और भोजकवृष्टि के पुत्र सभी समुद्र तटपर सैर करने और प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाने गये। पश्चिम समुद्रकी छटा और सौन्दर्य कीन कवि वर्णन कर सकता है? उसमें उठनेवालों तरगोसे वह झूमते हुए मस्त हाथीके सहश दिखाई दे रहा था। उसमें अनेक लहरे उठ रही थीं। जलके मण्डल ऊँचे उछल रहे थे। उसमें फिरनेवाले मगरमच्छों तथा मछलियोंको यादव वर्ग आनन्दपूर्वक देखने लगे। वह समुद्र गम्भीर, उसका तल अथाह और उसकी तरगें अति उत्तुग और चचल थीं। उसमें अनेक नदियाँ गिरकर उसके जल और सौन्दर्यको बढ़ा रही थीं। समुद्रकी निर्मलता और विस्तीर्णता आकाशकी शोभाको अपनाये हुए थीं। वह समुद्र अपने महान् उदरमें अनेक जलचरों तथा जीव-जन्तुओंका पालन-पोषण तथा रक्षा कर रहा था। यह समुद्र उतना ही अलध्य था, जितना कि जिन-मार्ग वादियों या तार्किकों द्वारा अलध्य है। जिन-मार्गके समान यह समुद्र भी सबको शीतलता देता है और उनके आतपको दूर करता है। ऐसे समुद्रको देखकर वे सब भद्रवत्री बहुत प्रसन्न हुए। मथुरा आदि में उन्होंने यमुना तो देखी थीं, वहाँ समुद्र कहाँ था?

समुद्रकी लहरोंके साथ जो मूरे-मोती आदि अनेक रत्न तट पर आ रहे थे, वे मानों प्रसन्न समुद्र द्वारा भगवान् नेमिनाथके

चरणोमे चढायी हुई पुष्पाजलि थी । समुद्रका उछलना और गरजना यदुओंको प्रसन्न करनेके लिए नृत्य और गानके समान थे ।

समुद्र अपनी लहरो और ध्वनिके द्वारा श्री कृष्णका आदर-सत्कार कर रहा था । उस समुद्रका लहरोके रूपमे उठना बलभद्र के सत्कारमे उठना था । इस प्रकार वह समुद्र उस समय अपने तट-पर आये समस्त यादवोंका यथायोग्य आदर-मान कर रहा था ।

यादव अपने देशको छोड़कर नया स्थान तलाश करने और निवास करने आये थे । शुभतिथिमे बलभद्र और कृष्णने तीन उप-वास किये, कुशासन पर समुद्रतटपर बैठकर रामोकार मन्त्रका जाप किया । नया नगर वसानेके लिए जितने तपकी आवश्यकता थी, वह उन्होंने किया ।

देवों वहाँ थोड़ेसे समयमे ही द्वारिकापुरीका निर्माण कर दिया । यह नगर लम्बा चौड़ा था, पर्कोटे, खाई, बाजार, गली-कूचो, वाटिकाओं तथा मीठे जलके कुओं, भवनो, महलों तथा बाजारो आदि वाला था । उसमे मन्दिर भी थे । किसी चीजकी कमी न थी । उसके भवनोंके शिखर आकाशसे बाते करते थे । उसके आस-पास बाग-बगीचोंमे लताएँ, फलदार वृक्ष, नागर-बेल, लौंग, सुपारी, इलायची, अगरु और चन्दन आदि के अति सुन्दर वृक्ष थे । ये बाग नन्दन-वनकी शोभाको भी मात कर रहे थे । इन सब बातोंके कारण द्वारिकापुरी स्वर्गपुरीके समान सुन्दर लग रही थी ।

नगरमे समुद्रविजय आदि दस भाड़यो, पुत्रो और रानियोंके लिए अनुक्रमसे महल बनाये गये थे । बलदेव, कृष्ण और उग्रसेन सबके लिए अलग-अलग भवन थे ।

कुबेरने कृष्णको मुकुट, हार, मणि, पीतवस्त्र, आभूषण, गदा, खड़ग, धनुप, दो तरकस और वजुमई वाण दिये । इनके अतिरिक्त

कृष्णको सर्व आयुधोसे पूर्ण रथ भी दिया, जिसपर गरुड़का झण्डा, चमर और मफेद छत्र थे ।

इसी तरह कुबेरने बलभद्रको भी नीले वस्त्र, रत्न माला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, धनुष-वाण, दो तरकस दिये और उसने दिव्य अस्त्रोंसे भरा रथ भी बलभद्रको दिया, जिस पर ताड़के पत्रके आकारका झण्डा और चमर-छत्र थे । सुद्रविजय आदि सभी राजाओं तथा रानियोंको उनके लिए उपयुक्त वस्त्राभूपण आदि दिये ।

भगवान् नेमिनाथको उनकी रुचि और अवस्थाके योग्य सभी वस्तुएँ कृतु अनुसार हमेशा मिलती रहती थी ।

इनके पश्चात् कुबेरने यादवोंको द्वारिकापुरीमे प्रवेश करने और प्रजाको उसमे वसानेकी प्रार्थना की । जैसे देवता स्वर्गमे प्रवेश करते हैं, वैसे यादवोंने द्वारिकामे प्रवेश किया और अपने-अपने नियत भवनोंमे रहना शुरू किया ।

द्वारिकामे रहना शुरू करने पर मथुरावासियोंने अपने मुहल्लेका मथुरा नाम रख दिया, सौर्यपुरवालोंने अपने भागका नाम सौर्यपुर रखा और वीरपुरवासियोंने अपने निवास स्थानका नाम वीरपुर रखा । इससे द्वारिकाके मुहल्ले आदि के नाम भी रखे गये और पुराने निवास-स्थानोंके स्मारक भी बन गये ।

श्री नेमिनाथ, चन्द्रमाके समान समस्त कलाओंके साथ बढ़ने लगे । वह उदय होते सूर्यके सहश गोभायमान थे । समुद्रविजय आदि दसों भाइयोंके कमल रूपी जरीरोंको नेमिनाथ रूपी सूर्य प्रफुल्लित करने लगा । नेमिनाथने सूर्यके समान अपनी ज्योतिसे समस्त अधकारको दूर कर दिया । नेमिनाथने बलदेव और कृष्णके आनन्दको बढ़ाना आरम्भ किया । समस्त यादवोंकी रानियाँ नेमिनाथकी चाचियाँ आदि लगती थी । उन सबका ही वह प्यारा था । सभीकी

गोदमे वह बालक नेमिनाथ खेलता था । सबका दुलारा, प्यारा और श्रांखोंका तारा था ।

जब नेमिनाथ युवा हुए, तो उनके अनुपम तथा अद्वितीय रूप-सौन्दर्य की शोभा अवर्गनीय थी । नगरके नर-नारियों की हृष्टि सिवाय नेमिनाथके और किसी पर न टिकती थी । सब इनको देख कर मोहित होते थे, पर नेमिनाथ का मन किसीको देखकर मोहित न होता था । इतना ही नहीं, जब भाई-बन्धु नेमिनाथके पास शृगार रसकी चर्चा करते या इनके विवाहकी बात चलाते, तो ये शर्माकर गर्दनको नीची कर लेते । तीन प्रकारके ज्ञानसे जिस नेमिनाथने मोह रूपी कलकको धो डाला है, उनके मनको ससारकी मोह-माया रूप की धूल कैसे मैला कर सकती थी ?

द्वारिकापुरी तो निस्सन्देह सुन्दर थी ही, पर नेमिनाथ आदिके गुणोंसे उसकी सुन्दरताको चार चाद लग गये ।



रुक्मणी हरण और शिशुपाल वध

एक दिन जब यादवोंकी सभा लग रही थी, तब नारद आकाश से विमानसे वहाँ आये। नारदकी जटाये पीली, दाढ़ी-मूळ सफेद, पर शरद ऋतुके मेघके समान उज्ज्वल थी। उनके गरीरकी प्रभा विजलीके प्रकाशके समान थी। वहुरगे और विस्तीर्ण योग पटसे उनकी शोभा सुन्दर लग रही थी। वे अपने हिलते हुए वस्त्र, कोपीन और दुपट्टा पहने हुए सभामें ऐसे आये, जैसे जगतकी भलाईके विचार से कल्पवृक्ष आते हैं। उनके कण्ठमें यज्ञोपवीतका सूत्र ऐसा लग रहा था मानो वे रत्नत्रय युक्त हैं। मन, वचन और कायाकी शुद्धतासे जन्मसे धारण किये हुए बाल-ब्रह्मचर्यसे उज्ज्वल, रूप और महा पाण्डित्यके कारण उनका प्रभाव अद्वितीय था। उनकी प्रकृति मिथ्यात्व रहित होनेसे पवित्र थी। वलदेव और वासुदेव तो राज्यके उदयसे राजाओं द्वारा पूजित थे पर नारद काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्यकि छह गत्रुओंको जीतनेके कारण विना राज्यके ही सबके पूज्य थे।

जब नारद आकाशसे उत्तरकर सभामें आये, तब सभी राजाओं ने शीस नवा कर खड़े होकर उन्हे नमस्कार किया, भक्तिसे उनके चरण पूजे और वैठनेको आसन दिया। नारदको तो केवल सम्मान से हर्ष होता था। किसीसे उसे और कुछ नहीं चाहिए था। वसुदेव और वासुदेव सबने नारदका सम्मान किया, पर नारद नेमिनाथ

जिनेश्वरको नमस्कार करके सभामे बैठे । तीर्थकर नेमिनाथके दर्शन करके और उनके वचन सुनकर नारदको अति हर्ष हुआ । उसकी यह अभिलापा थी, कि वह निरतर प्रभुके दर्शन करता रहे, वचन सुनता रहे । फिर नारदने सभी तीर्थकरोंकी कथा और सुमेर पर्वत-की यात्राका वर्णन सभाको सुनाकर उनके मनको तृप्त किया ।

नारदका जिकर आते ही राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे नारदका हाल और उत्पत्ति पूछी । श्री गौतम गणधरने उत्तर दिया, “हे भूपेन्द्र ! यादवोंकी राजवानी सौर्यपुरके निकट दक्षिणकी ओर तापसोंका आश्रम है, जहाँ बहुतसे तपस्वी कन्दमूल और फल-पत्तोंका आहार करने वाले रहते हैं । उनमें एक तपस्वी सुमित्र है, जिसकी स्त्रीका नाम सोमयशा है । वह तपस्वी उच्छ्व वृत्ति का है ।”

राजा श्रेणिकने पूछा, “हे स्वामी ! उच्छ्व वृत्ति क्या होती है ?”

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको बताया, “नगरमें बनियोंकी दुकानके सामने अन्नके जो कण विखर जाते हैं, उन्हे जो तपस्वी इकट्ठा करके अपने उदरकी पूर्ति करे, और कभी-कभी कन्द-मूल आदि भी भक्षण करे, उनकी इस वृत्तिको उच्छ्व वृत्ति कहते हैं । सुमित्र तपस्वीके एक पुत्र नारद हुआ । इस वालककी काति चन्द्रमा-की कातिके समान थी । एक दिन भूख-प्याससे पीड़ित वे पति-पत्नी वालक नारदको एक वृक्षके नीचे सुला कर नगरमें उच्छ्व वृत्तिके लिए गये । वालक वृक्षके नीचे खेल रहा था । जब भक्त नामक एक देव आया । उस वालकको देखते ही पूर्व स्नेहवग वह देव नारदको बैताड़य पर्वत पर ले गया । वहाँ एक गुफामें इस वच्चेको रखा और कल्प वृक्षोंके भोजनसे इसे पाला-पोसा । जब यह वालक आठ वर्षका हुआ, तब देवने इसे जिनागमका रहस्य समझाया और इसे आकाश-गामिनी विद्या दी । देवने इसका नाम नारद रखा ।”

राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा, “महाराज ! इस नारद

के कुछ गुण भी बतानेकी कृपा करे ।” तब गोतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, “हे नरेन्द्र ! यह नारद अनेक शास्त्रोंका पाठी महा विद्वान् है । मुनि राजोंकी सेवा करके इसने श्रावकके व्रत लिये है । यह नारद स्वयं तो जन्मसे ही कामको जीतनेवाला तथा महाशीलवान् और अति सुन्दर है, पर जो राजा कामी हैं उनका बड़ा प्रिय है और उनका मनवाछित स्त्रीसे विवाह करा देता है । यह लोभ-रहित, प्रसन्न-वदन और हास्यरसका अनुरागी है । यह बड़ा तेजस्वी और मानी है । यदि इसका सत्कार न हो, तो क्रोधसे प्रज्वलित हो उठता है । जो इसकी स्तुति कर देता है, यह उसका हो जाता है । यह लडाई-भगडे देखनेका बड़ा प्रेमी है और वातूनियोंमें मुख्य है । देवस्थानों, तीर्थों, मन्दिरों और मुनियोंके दर्शनका बड़ा अभिलाषी है । चतुर्विध सघका बड़ा प्रेमी है । यह धर्म-प्रेमी, श्रद्धावान्, शास्त्रोंमें निपुण और चर्चा करनेमें चतुर है । यह बड़ा सज्जन स्वभावी और कौतूहली है । धूमक्कड़ इतना है, कि अढाई द्वीपमें सदा परिभ्रमण करता रहता है । यदि कहीं इसके आदर सत्कार में कमी होती है, तो उस स्थानके प्रति इसकी अरुचि हो जाती है ।”

राजा श्रेणिकने नारदके गुण सुनकर कहा, “हे प्रभो ! बड़ी धार्मिक प्रवृत्तिवाला विचित्र व्यक्ति है यह नारद ।”

यादवोंकी सभामें धर्म-चर्चा करनेके बाद नारद राजा समुद्र-विजय आदि से पूछ कर राज भवनमें गया । राज दरवारके समान ही रनवासमें भी इसकी पहुँच थी । वहाँ कृष्णकी प्राण-प्रिया पटरानी महाशीलवती सत्यभामा स्नान आदि से निवृत्त होकर वस्त्राभूषण पहन कर मणियोंके दर्पणमें अपना रूप-शृगार देख रही थी । वह अपने शृगारमें इतनी व्यस्त थी, कि उसने न नारदको देखा और न उसका सत्कार किया ।

नारदने इस उपेक्षाको अपना निरादर समझा और तत्काल क्रुद्ध होकर घरसे निकल खड़ा हुआ । उसने सोचा कि इस पृथ्वीपर

सभी मुझे देखकर आदर करते हैं और रानियाँ भी मुझे नमस्कार करती हैं। पर इस सत्यभामाने रूपके मदसे गर्वित होकर मेरी तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखा। यह विद्याधरीकी पुत्री महा ढीठ और अविनयी है। यदि मैंने इसकी सौतके वज्रके निपातसे इसके रूप-सौभाग्यके पर्वतको चकनाचूर न कर दिया, तो मैं नारद नहीं। यदि मैं ऐसा न करूँगा, तो आगे मुझे कौन खातिरमे लायेगा? इसके रूपको मात करनेवाली रत्नपूर्ण वसुधरा तुल्य सौत मैं कृष्णके घरमे लाऊँगा। जब तक मैं इसे ठण्डी आहे भरते न देखूगा, तब तक मेरी क्रोधाग्नि शात न होगी। मुझ नारदको नाराज करके कौन निश्चित और सुखी रह सकता है? सत्यभामासे अधिक रूपवान युवतीकी खोजमे नारद जगह-जगह घूमा, पर उसे सत्यभामासे अधिक रूपवान् तो क्या उसके सदृश रूपवती-सी भी न मिली।

घूमता-घूमता नारद कुण्डलपुर आया। वहाँ शत्रुओंके लिए महा भयकर भीष्म राजा राज करता था। उसके महा बुद्धिमान और अति पराक्रमी रुक्म राजकुमार और कला और गुणोमे प्रवीण रुक्मणी राजकुमारी थी। यह रुक्मणी रूप, यौवन और लावण्यमे अद्वितीय थी। रुक्मणी सध्या समय सूर्यकी लक्ष्मीके समान शोभावान थी। मानो कृष्णके पुण्यसे पूर्वोपार्जित कर्मने यह कन्या महा सुलक्षणो, महारूप और महा सौभाग्य एकत्रित करके बनाई थी। इसके हाथ, चरण, मुख रूपी कमल, जघा, नितम्ब, भुजाएँ, नाभि, उदर, भौहे, करण, नेत्र, सिर, कण्ठ, नाक और अधर आदि समस्त अग समस्त उपमाओंको जीतकर रुक्मणीके अगमे मौजूद थे। रुक्मणी अनुपम थी। नारदने राज सभामें राजा भीष्मसे नमस्कार, सत्कार और आदर प्राप्त किया। फिर वह रनवासमे गया, तो रुक्मणीके रूपको साश्चर्यसे देखकर मनमे सोचने लगा, कि मैंने अनेक राज कन्याएँ देखी हैं, पर इसके समान सुन्दरी कोई नहीं देखी। मैं इस अनुपम कन्याका विवाह कृष्णके साथ करके सत्यभामाके रूप और सौभाग्यके पदको

निवारूगा । जब नारद इस प्रकार विचार-निमग्न था, तब विनय मूर्ति और मधुर गब्दोके आभूषणोंसे सुसज्जित रुक्मणीने उसे हाथ जोड़कर प्रणाम् किया । नारदने उसकी विनयसे प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया, “हे रुक्मणी ! तू द्वारिकापति की पटरानी हो ।”

इस आशीर्वादको सुनकर रुक्मणीकी बुआने नारदसे पूछा, “हे महाराज ! ये द्वारिकापति कौन है ?” तब नारदने कृष्ण माधवके सब गुण और परिचय बताये । रुक्मणी कृष्णके गुणोंका वर्णन सुन कर कृष्णके प्रति अति आसक्त हो गई । नारदने भी वहाँ चन्द दिन रहकर कृष्णके गुण-गान गाकर रुक्मणीकी चित्त रूपी भित्ति पर कृष्णको चित्रित कर दिया । फिर रुक्मणीके रूप, वर्ण, आयु और विद्याको अपने मनमें लिखकर वह वहाँ से चल पड़ा । बाहर आकर पहले नारदने एकान्तमें तुरन्त रुक्मणीके रूपका स्पष्ट चित्र बनाया और द्वारिका जाकर कृष्णको वह मनमोहक चित्र दिखाया ।

श्री कृष्णको नारदसे जो स्नेह था, वह चित्र देखते ही दुगना हो गया । श्री कृष्णने चित्रमें सुलक्षणा अति सुन्दरीको देखकर पूछा, “हे भगवन् ! यह आपने किस कन्याका रूप-सौन्दर्य चित्रपटमें उतारा है ? ऐसा अद्भुत रूप न स्त्रियोका है और न देवियोका ।” महात्मा नारदने उत्तर दिया, “हे मित्र ! यह राजा भीष्मकी कन्याका रूपचित्र है ।” इस उत्तरको सुनकर कृष्णके मनमें रुक्मणीके पाणिग्रहणकी चिन्ता पैदा हुई ।

उधर कुण्डलपुरमें रुक्मणीकी बुआने एक दिन एकान्तमें उससे कहा, “हे वाले ! मैं तुझे एक वात बताती हूँ । एक दिन अतिमुक्तक अवधिज्ञानी मुनि यहाँ पधारे थे । तुझे देखकर उन्होंने भविष्यवाणी की थी, कि इस कन्याके ऐसे लक्षण और ग्रह पड़े हैं, कि यह वासुदेव-के हृदयमें लक्ष्मीके समान निवास करेगी । केवलकी अनेक रानियोंकी यह स्वामिनी होगी । यह कहकर मुनि तो चले गये, पर अपने घरमें

किसी ने कृष्णकी बात न सोची । ठीक ऐसे जैसे कि पूर्व जन्मकी कथा मनुष्यको याद ही नहीं आती । पर अब नारदने उस भविष्यवाणीको याद दिलाया है और इधर तेरा भाई रुक्म महाराज शिशुपालके पास गया था । वह तेरी सगाई शिशुपालसे कर आया और अब शीघ्र ही तेरा विवाह उससे होने वाला है ।”

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणीने अपनी बुआसे कहा, “मुनिके वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकते । मेरा तो एक पति वासुदेव ही है । इसलिए मेरे मनकी बात शीघ्र ही द्वारिकापतिको पहुँचा दे ।” रुक्मणीके मनकी बात जानकर उसकी बुआने एकान्तमे रुक्मणीकी तरफसे कृष्णको यह पत्र भिजवाया

“हे नाथ ! मैंने आपके नामका आश्रय लिया है और इसीसे मेरे प्राण बचे हुए है । मैं रुक्मणी आपके दर्शनकी चाह रखती हूँ । माह सुदी अष्टमी का लग्न है । इस लग्नपर आकर आप मुझे ले जाये । यदि आप न आये, तो मेरे पिता और भाई मुझे शिशुपालसे विवाह देंगे । इससे मेरा मरण ही है । आपको न पाकर मैं जीती न रहूँगी । नगरके बाहर नागदेवका मन्दिर है । वहाँ मैं लग्नके समय पहलेसे आजाऊँगी । आप मेरे आनेसे पहले ही वहाँ पधारिये और कृपा कर मेरा करग्रहण करके ले जाये ।”

रुक्मणीके इस पत्रको पाकर माधव रुक्मणीको हरण करनेके लिए तैयार हो गये ।

उधर चन्द्रेरीके राजा शिशुपालने अपनी सेना सहित कुण्डलपुरके स्वामी भीष्म राजाके निमत्रणपर विवाहके लिए आकर कुण्डलपुरके निकट डेरे डाल दिये ।

इधर नारदने एकान्तमे मोहनसे कहा कि यही मौका है । तब कृष्ण बलभद्र सहित छुपकर, विना किसीके जाने, निकले और रुक्मणी,

उसकी बुआ और सखियोंके नागदेवके मन्दिरमें आने से पहले ही वहाँ पहुँच गये। वहाँ कृष्णने रुक्मणीको देखा। पहले नारदने रुक्मणीके रूपका जो वर्णन कृष्णसे किया था, उसके सुनने से जो रागाग्नि पैदा हुई थी, वह अब पारस्परिक दर्शनसे और भडक उठी। कृष्णने रुक्मणीसे कहा, “हम तेरे लिए यहाँ आये हैं, तुम हमारे हृदयमें आ वैठो। यदि तेरा हमसे सच्चा स्नेह है, तो हमारे पास रथमें सवार हो जाओ और हमारा मनोरथ पूरा करो।”

जब कृष्णने रुक्मणीसे ये वचन कहे, तब रुक्मणीकी बुआने उससे कहा, “हे कल्याणरूपराणी! अतिमुक्तक स्वामीके कथनानुसार तेरा वर तेरे पुण्यके उदयसे तेरे पास ही आया है। यद्यपि पुत्रीको विवाहमें देनेवाले माता-पिता कहे गये हैं, परन्तु वे भी विधि अर्थात् कर्मके अनुसार ही वेटीको देते हैं। इसलिए पूर्वोपार्जित कर्म ही गुरु है।”

बुआके ये वचन सुनकर रुक्मणी कृष्णमें अति अनुरक्त तो हो गई, पर लज्जावश वह रथ पर स्वयं कैसे चढ़ती? तब कृष्णने उसके मनके भावको समझकर उस्को अपने दोनों हाथोंमें उठाकर रथमें सवार किया। उनकी आँखे चार हुईं और परस्पर अंग स्पर्श हुआ। इससे दोनोंको अति सुख मिला और कामवासना जागी। दोनोंका अद्भुत रूप था। दोनोंके सुगन्धित शरीरों और मुखके सुगधपूर्ण श्वाससे वे सुगधमें भर गये। एक दूसरेके रूपसे दोनोंके मन वजीकरण मन्त्रित हो गये। विधि वलवान होती है। जहाँका सयोग होता है, वेटी-वेटेका विवाह वहाँ ही होता है। यहाँ भी पूर्वोपार्जित कर्म रूपी विधिने रुक्मणीको शिशुपालसे विमुख और कृष्णाके सन्मुख करके इनका सयोग कर दिया।

रुक्मणीको रथमें भवार करते ही कृष्णाके मनमें विचार आया, कि वह इतना निर्वल तो है नहीं, कि रुक्मणीको चोरकी

तरह ले जाये। तब मोहनने पाचजन्य नामक शखको वजाया, जिसकी ध्वनि दशो दिशाओंमें गूँज उठी। यह एक प्रकारसे लडाई-की चुनौती थी। शखकी ध्वनि सुनते ही शत्रुकी सेना क्षुब्ध हो गई। रुक्मणीका भाई रुक्म और शिशुपाल इस वृत्तान्तको जानकर अपनी चतुरग महासेनाको लेकर कृष्ण और बलभद्रके सामने युद्धके लिए आ डटे। तब कृष्णने रुक्मणीको शत्रु सेना दिखाई। रुक्मणी इस समय कृष्णके बायें अग बैठी थी। जब उस मृगनयनीने शत्रुकी प्रवल सेनाको देखा, तो उसके मनमें पतिमरणकी आशका पैदा हुई। उसने पति कृष्णसे कहा, “हे नाथ! इधर यह मेरा भाई रुक्म कुपित है और शिशुपालकी अपार सेना है। और यहाँ केवल आप दोनों भाई हैं। आपकी सेनाको रणमें इनपर कैसे विजय प्राप्त होगी? यही सन्देह मेरे मनमें है। मैं वडी मदभागिनी हूँ। आपतो वीरातिवीर हैं। आपको युद्ध की चिन्ता क्या? पर रण रण ही है।” रुक्मणीके सन्देहपूर्ण वचन सुनकर कृष्णने उसमें कहा, “हे कोमलचित्तधारिणी! तू भय मत कर। ये सख्यामें ज्यादा हैं, तो क्या? मैं इतना पराक्रमी हूँ, कि इनके लिए एक ही वहुत काफी हूँ। मेरे होते ये क्या कर सकते हैं?”

इस पर रुक्मणीने कृष्णसे कहा, “हे नाथ! मुनि अतिमुक्तकने कहा था, जो व्यक्ति एक वारणसे मात तालके वृक्ष छेद दे, वह वासुदेव होगा। मैं इसमें सन्देह नहीं करती।” इतना सुनते ही कृष्णने अपना धनुष चढाया और एक वारणसे मात ताल वृक्षोंकी पक्कि तुरन्त छेद दी। कृष्ण तो सामान्य अस्त्रोंके अतिरिक्त दिव्यास्त्रोंको भी चलानेमें प्रवीण था। उसकी बस्त्रविद्याका क्या कहना? इतना ही नहीं, रुक्मणीकी अङ्गुलीमें वज्रमणीकी अगृथीको माधवने अपने हाथमें रगड़ कर चकनाचूर कर दिया। अब रुक्मणीका यह सन्देह तो दूर हो गया कि इस रणमें इन दोनों भाइयोंका तो बाल भी वाका न होगा। अब उसने हाथ जोड़कर विनती की, “हे नाथ!

आपसे प्रार्थना है कि इस युद्धमें मेरा भाई न मारा जाय, उसकी रक्षा करना।” कृष्णने रुक्मणीको उसके कहे अनुसार आश्वासन दिया।

अब लड़ाईके लिए कृष्ण रथमें सवार हो गया। रुक्मणी भी उसके साथ थी। वलभद्र स्वयं सारथी बना और उसने रथको शत्रुओं की ओर बढ़ाया। दोनों भाई क्रुद्ध हो बैरियोपर वाराणोंकी वर्षा करने लगे। थोड़ी देरमें लड़ाई रंग पर आ गई।

शिशुपालकी सेनाके बहुतसे सैनिक रणभूमिमें खेत रहे, वाकी इधर-उधर भाग गये। अब शिशुपाल और रुक्म उनके सामने खड़े थे। श्री कृष्णने शिशुपालको लड़नेके लिए ललकारा। यह शिशुपाल मदघोपका पुत्र था। बड़ा उन्मत्त और वीर लड़ाका था, पर कृष्णके एक वाराणने ही उसके सिरको वेध कर भूमिपर डाल दिया। उसको सावन्तपनेका जो अति मद था, उसका वह मद भग कर दिया। इधर वलभद्रने रुक्मको घायल कर दिया, पर रुक्मणीका भाई समझकर और रुक्मणीकी इच्छानुसार उसे जीवनदान दिया।

रणमें विजय प्राप्त करके वलभद्र और कृष्ण रुक्मणी सहित गिरनार गये। वहाँ कृष्णका रुक्मणीसे विधिपूर्वक विवाह हुआ। फिर वे लोग द्वारिका पधारे।

वलभद्र अपनी प्रिया रेवतीके महलमें गया और कृष्ण नववधु रुक्मणीके साथ प्रेमपूर्वक दिन विताने लगा।”

श्री गोतम गणधरने राजा श्रेणिकसे आगे कहा, “हे राजन्। जब वामुदेवने शिशुपालको मार दिया और उसकी रथसेनाको चकनाचूर कर डाला, तब सूर्य भी अपनी किरणों सकोचकर अस्ताचलके आश्रय चला गया, क्योंकि सूर्यने मनमें विचारा, कि यह माधव तेजस्वियोंका तेज नहीं देख सकता। कही ऐसा न हो कि मुझे तेजवान समझकर पकड़ ले जाये, इसलिए दिवाकर अस्त हो गया।

जब सूर्य अस्त हुआ और सध्या भी उसके पीछे चली गयी, तब समस्त जगत् काजल समान श्याम चादरसे आच्छादित हो गया। यह अधकार पटल मोहको पैदा करता है और कामको बढ़ाता है। जैसे पराक्रमी राजाके वियोगसे दुष्टजन चौर्गिर्दं सिर उठा लेते हैं, वैसे ही दिनकरके अस्त होनेपर अधकार सर्वत्र फैल जाता है। कुछ रात बीतने पर जब चन्द्रमा उदय हुआ और उसने अपनी रुपहली किरणोंसे समस्त अधकारको दूर कर दिया, तो पृथ्वीपर चारों तरफ प्रकाश फैल गया। यह चन्द्रमा सयोगी जनोका तो मित्र है उन्हे प्रमुदित करता है और जो विरही है उन्हे आताप देता है। चादनी रातमें प्रिया प्रीतमके निकट विकासको उसी प्रकार प्राप्त करती है, जैसे चन्द्रमाके स्पर्शसे कमोदनी विकसित होती है। चन्द्रमाके उदयसे कमलनी खिल उठती है, पर चकवा-चकवी वियोगसे दुखी हो जाते हैं। ससारकी गति भी कितनी विचित्र है कि चन्द्रमा जहाँ किसी एक के लिए हर्षका कारण है, तो किसी दूसरेके लिए दुखका कारण।

जब रात्रिका समय हुआ, तो मानी नायकोके मान भग हो गये। रात स्त्री-पुरुषोंको समान रूपसे सुख देती है। स्फटिक मणियोंके महल चादनीसे अति सुशोभित हो रहे थे। ऐसे मनोहर समयमें सभी यादव नृप सुख से समय विता रहे थे। और कृष्ण अपनी नववधु रुक्मणीके साथ आनन्दमग्न था। जब प्रभात हुआ और मुर्गे वांग देने लगे, तो मानो वे रातके अन्तकी सूचना दे रहे थे। पहले तो मुर्गे जरा ऊँचे स्वरसे बोलते थे, फिर वे धीमे स्वरसे बोलने लगे। मानो वे यादवोंकी रानियोंके भयसे धीरे-धीरे बोलने लगे हैं, कि उन्हे दुख न हो। जब रात थोड़ी रहती है, तब मुर्गोंका बोलना कामिनियोंको नहीं सुहाता।

प्रभात समय सध्याके समान रुक्मणी कृष्णसे पहले जागी। पतिव्रता स्त्रियोंका यही धर्म है, कि पति के शयन करनेके बाद सोये और पतिके उठनेसे पहले जागे और पतिको भोजन कराके स्वय

वादमे भोजन करे । कृष्ण अपनेसे पहले जगी रुक्मणीको देखकर अति अनुरागी हो उठा । ऐसी सुन्दर, कर्तव्य परायण और पति-भक्त स्त्री और किसके हो सकती थी ? प्रभातके समय बजते बाजों-की मधुर ध्वनि ऐसी लग रही थी, जैसे मेहकी हलकी ध्वनि होती है । द्वारिकामे घर-घर लोग जाग उठे । सब प्रजा अपने-अपने कार्य-मे प्रवृत्त हो गई । रातका जो अधकार चन्द्रमासे पूर्ण रूपसे न मिटा था, वह सूर्यके उदयसे सर्वथा नष्ट हो गया । अब सर्व पदार्थ स्पष्ट प्रकट दिखाई देने लगे । सूर्य ही दुर्निवार अधकारको मिटानेमे समर्थ होता है, जैसे धर्म मिथ्यात्त्वरूपी अधकारको दूर करता है और विधि मार्गमे प्रवृत्त होता है ।



प्रद्युम्नकुमार के पूर्वजन्म

विवाहके पश्चात् कृष्णने रुक्मणीको पटरानीका शिरोमणी पद देकर रानी सत्यभामाके महलके शिरोभागमे स्थान दिया । उसके भवनको द्वरपाल, सेवक, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि सब सुविधाओं तथा पति प्रेमसे भर दिया । इस आदरसम्मानको पाकर रुक्मणी बहुत सतुष्ट हुई ।

अब तक रुक्मणी और सत्यभामाका साक्षात् मिलाप नहीं हुआ था ।

रुक्मणी बड़ी चतुर थी । वह मनमे जानती थी, कि सत्यभामा महा सुन्दर है और कृष्णके मनको अधिक भाती है । इसलिए वह चाहती थी, कि किसी प्रकार कृष्णकी उसपर अधिक कृपा हृष्ट रहे । उसे सत्यभामासे ईर्ष्या हो गई । इसलिए वह श्री कृष्णको अधिक से अधिक प्रसन्न रखने लगी । कृष्णको भी उससे अति स्नेह हो गया ।

एक दिन कृष्ण रुक्मणीके मुखके सुगंधित ताम्बूलका उगाल अपने पीताम्बरके पल्ले वाधकर सत्यभामाके रनवासमे गये । वे वही सो गये । उस ताम्बूलकी सुगंधसे सारा शयनगृह महक उठा । सत्यभामा उस सुगंध पर मोहित हो गई और कृष्णके पल्लेसे उसको खोलकर और पीसकर अपने अगोपर लगा लिया । इस पर माधव-

मुस्कराये । सत्यभामाने ईज्यसि कुपित होकर कहा, “रुक्मणी तो मेरी वहन है, आप क्यों हसते हो ?” हरिकी इस समयकी चेष्टाओं को देखकर सत्यभामाने समझा, कि उसकी सौत रुक्मणी अति सौभाग्यशालिनी है । इसलिए उसके मनमे उसके रूप लावण्यको देखनेकी अभिलाषा पैदा हुई । उसने अपने पतिसे कहा, “हे नाथ ! मुझे रुक्मणी दिखाओ । उसके गुणोंको मैं सुन चुकी हूँ । अब उसके दर्शनों से मेरी आँखोंको तृप्त करो ।”

कृष्ण सत्यभामाको रुक्मणीसे मिलानेके लिए मरणवापिकाके निकट बिठाकर स्वयं रुक्मणीको लाने गये । कृष्ण सत्यभामासे ताम्बूल सम्बन्धी एक विनोद पहले कर चुके थे । अब उन्होंने एक विनोद और किया । उन्होंने रुक्मणीको तो वनमे प्रवेश करनेको कहा और स्वयं पीछे आनेको कहकर वृक्षोंके पीछे से सब कुछ देखनेके लिए छिप गये । जब रुक्मणी वनमे पहुँची, तो सत्यभामाने उसके रूप-मौनदर्यको देखकर मनमे सोचा, कि यह वनदेवी है । उस समय रुक्मणी सुन्दर वस्त्रो और अद्भुत आभूषणोंको पहने हुए आमके वृक्षकी डाल पकड़े खड़ी थी । उसकी चोटीके केंग कुछ ढीले हो गये थे । और वह उन्हे बाये हाथसे सवार रही थी । उसका अग कुछ नम्रीभूत था । यदि ऐसी गोभापूर्ण सुन्दर खड़ी रुक्मणीको सत्यभामा ने वनदेवी समझ लिया, तो इसमे आश्चर्य ही क्या था ? सत्यभामा-के चित्तमे तो सौतिया डाहका काटा पहले ही से चुभ रहा था । उसे देखते ही सत्यभामाने उसके चरणोपर पुष्पाजलि चढ़ा कर अपने मुहाग और सौत रुक्मणीके दुर्भाग्यकी याचना की । ठीक उसी समय कृष्ण वहाँ आकर सत्यभामासे हसकर कहने लगे कि तुमको आनी वहनका भली-भाँति अपूर्व दर्जन हुआ । सत्यभामा सब रहस्य-को समझ कर कृष्णने कोप करके कहने लगी, “हम तो आपसमे पहने ही मिल रही हैं । आप क्या मिलाओगे ?” इस पर कृष्ण कुछ मुस्करा दिये । पर वडे कुलमे उत्पन्न स्त्री-पुरुषोंके विनय लक्षणसे

युक्त रुक्मणीने तुरन्त सत्यभामाको नमस्कार किया। इसके पश्चात् कृष्णने दोनों रानियोंके साथ लताओंसे मडित उस वनमें चिरकाल विहार और सैर की। फिर वे अपने घर लौट आये, जहाँ आनन्द सुखमें मग्न कृष्णके बहुत दिन एक दिनके समान बीतने लगे।

एक दिन हस्तिनापुरके अधिपति दुर्योधनने स्नेहपूर्वक अपने दूतके द्वारा श्री कृष्णको यह सन्देश भेजा, “आपकी दोनों रानियाँ सत्यभामा और रुक्मणी गर्भवती हैं। उनके पहले पैदा होने वाला पुत्र ही मेरी पुत्रीका वर होगा।” कृष्णने दुर्योधनके निवेदनको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके दूतको बड़े सम्मानसे विदा किया। दूतने अपनी कार्यसिद्धिका समाचार अपने स्वामी दुर्योधनको सुनाया।

सत्यभामाने यह बात सुनकर अपनी दूती द्वारा रुक्मणीको यह सन्देश भेजा, “हे वहन! हम दोनोंमें जिसके पुत्र होगा, वह पुत्र ही दुर्योधनकी पुत्रीको व्याहेगा। पर शर्त यह है कि यदि तुम्हारा पुत्र उसे व्याहे तो वह मेरे सिरके केश मुड़वाकर उनपर पाँव रख कर व्याहने जाय और यदि मेरा पुत्र व्याहने जाये तो वह तुम्हारे केशों पर पाँव रख कर व्याहने जाय।” रुक्मणीने सत्यभामाकी बात मान ली।

एक रात रुक्मणीने स्वप्नमें देखा कि वह हस्तिनमें आकाशमें विहार कर रही है। कृष्णने उसे उसका फल बताया, कि तेरा पुत्र एक महापुरुष और आकर्षणमी होगा। यह सुनकर रुक्मणीके हृषके सीमा न रही।

सोलहवें स्वर्गका अच्युतेन्द्र उपेन्द्र रुक्मणीके गर्भमें आया। उसी दिन सयोगसे सत्यभामाको भी शुभ-स्वप्न आये और गर्भ रहा। कृष्ण, रुक्मणी और सत्यभामा सभी परम सुखी और प्रसन्न हुए।

नी महीने पूरे होने पर रुक्मणी और सत्यभामाके माथ-साथ पुत्र पैदा हुए। दोनों रानियोंकी तरफमें श्री कृष्णको शुभ समाचार

सुनाने और वधाई देनेवाले रातके समय ही एक साथ आये । कृष्ण उस समय सो रहे थे । सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिकी वधाई देनेवाले गर्ववग कृष्णके सिरहाने खडे हो गये । उन्होने सोचा था कि कृष्ण-की हृषि पहले उनपर पड़ेगी । रुक्मणीके पुत्र-जन्मकी वधाई देनेवाले कृष्णके पायते खडे थे । जब कृष्णकी आँखे खुली, तब उन्होने पहले रुक्मणीके सेवकोको देखा और उनकी वधाईके प्रत्युत्तरमें वधाई दी । फिर सत्यभामाके सन्देशवाहकोको । इससे प्रथम पुत्रका पद रुक्मणीके पुत्रको मिला । और सत्यभामाका पुत्र दूसरा बना । कृष्णने प्रसन्न होकर उन्हे आभूषण भेट दिये ।

इसी समय एक दुखद घटना हुई ।

उसी समय एक महावलवान असुर धूमकेतुका अग्निके समान प्रज्वलित विमान रुक्मणीके मन्दिर पर अटका । कुअवधिसे उसने रुक्मणीके पुत्रको अपना गत्रु समझा । क्रुद्ध होकर अग्निके समान लाल आँखें करके विमानसे नीचे उतर कर उसने प्रच्छन्त रूपसे रुक्मणीके प्रसूतिगृह मे प्रवेश किया । नवजात गिरुको देखते ही उसकी पूर्व वैर-रूपी अग्नि भड़क उठी । यद्यपि रुक्मणीके महलकी वडी सुरक्षा थी, कोई वहाँ पैर भी न मार सकता था, पर उस असुरने अपनी मायासे रुक्मणीको निद्रा मग्न कर दिया और वालकको वहाँसे उठा लिया । वह वालक अपने पुण्यके भार से पर्वत समान था, परन्तु वह मलिन बुद्धि असुर उसे लेकर आकाश मे चल दिया । ऊपर जाकर उसने मनमे सोचा कि यह मेरा गत्रु स्त्रीको हरनेवाला है । इसे मैं या तो हायोसे मसलकर मार दू या नाखूनोसे चीर-फाड कर पक्षियोके खानेको छोड दू या इसे मगरमच्छोसे भरे समुद्रमे डाल दूँ । फिर उसने सोचा कि यह तो तुरन्त का जन्मा मासका पिण्ड है, इसको मारनेसे क्या लाभ ? यह तो विना रक्षा, देख-भाल अपने आप ही मर जायेगा । फिर वह असुर आकाशमे नीचे उतर

कर एक बड़ी भारी शिला के नीचे बालक को दबाकर स्वयं अदृश्य हो गया ।

उसी समय मेघकूट नगर का अधिपति कालसम्वर विद्याधर अपनी कनकमाला पत्नी सहित विमान में बैठा वहाँ से गुजर रहा था । बालक के पुण्य से उसका विमान वही अटक गया । तब उसने एक शिला को हिलते देखा । विद्याधर ने अपने विद्याबल से उस शिला को उठाया, तो उसे वहाँ एक अखण्डित अग, स्वर्ण समान प्रभावान और साक्षात् कामदेव सा बालक दिखाई दिया । उस बालक को वहाँ से उठाकर अपनी पत्नी कनकमाला को देनेको तैयार हो गया ।

कालसम्वर विद्याधर ने अपनी रानी कनकमाला से कहा, “हे रानी ! तेरे पुत्र नहीं है, तू इसे ले ले ।” पहले तो कनकमाला ने शिशु को लेने के लिए हाथ फैलाये, परन्तु किसी विचार के आने से उस दीर्घ-दर्शनी गम्भीर विचार वाली विद्याधरी ने अपने हाथ खीच लिये । तब राजा ने उसे कहा, “हे प्रिये ! ऐसे सुन्दर बालक को तू क्यों ग्रहण नहीं करती ?” तब इस पर रानी ने उत्तर दिया, “हे नाथ ! आपके पाँच सौ पुत्र हैं और उनके ननसाल वाले बड़े राजा हैं । यह बालक हमे जगल में पड़ा पाया है, जिसका न कुल मालूम, न माता-पिता का नाम मालूम । उन पुत्रों के सामने इसे कौन गिनती में लायेगा ? यह मारा-मारा फिरेगा और हर कोई इसको सिर में चाटे मारेगा । मुझसे यह देखा न जायेगा । उस क्लेश से तो मैं अपुत्रवती ही भली ।”

रानी के ये वचन सुन कर विद्याधर कालसम्वर ने धैर्य वधाते हुए रानी के कानों के कर्ण पत्र पर यह लिखा, कि मेरे जीवन काल में यह बालक युवराज रहेगा और मेरे पश्चात् राजा होगा । फिर उसने उस यत्र को पट्टे के साथ बालक के बाध दिया । तब कनकमाला ने उस बालक को छाती से लगा लिया । रानी कनकमाला राज विद्या में बड़ी निपुण थी ।

इसके पश्चात् राजा कालसम्वर और रानी कनकमाला पुत्र सहित मेघकूट नगर गये। उस समय वह वालक कुल एक दिन का था और उन्हे जब रातके समय पाया था, तब वहा और कोई न था। नगर में जाकर राजाने कहा कि रानीको गूढ़ गर्भ था, किसीको उसके गर्भ-की वात मालूम न थी। उसने मार्ग में इस वालकको जन्म दिया। इस वालकके जन्मके उपलक्ष्मे नगर भरमे बड़ा उत्सव मनाया गया।

तब इस वालक का नाम प्रद्युम्न कुमार रखा गया, क्योंकि इसकी काति स्वर्णकी चमकको जीतने वाली थी और प्रद्युम्न स्वर्ण को कहते हैं। बड़े लाड चाव और दुलार से प्रद्युम्न कुमारका पालन-पोपण होने लगा।

कुछ देर पश्चात् जब रुक्मणी जागी और उसने अपने वालक-को अपने पास न पाया, तो उसने अपनी धायको वालकको हूँढ़नेके लिए कहा। सारे महलमें बच्चेकी तलाश की गई, पर वह कही भी न मिला। पुत्रके न मिलने पर रुक्मणीके गोककी सीमा न रही। वह विलाप कर-करके कहने लगी, “हाय पुत्र, तुझे किस बैरी ने हर लिया। मेरे पूर्वोपार्जित किसी पुण्य ने मुझे पुत्र रत्न दिया, पर परभव में मैंने किसी स्त्री के पुत्र को हरा होगा, जिसका यह फल मुझे मिला।” रुक्मणी के विलापको सुनकर सबको करुणा पैदा हुई।

रुक्मणीके महाविलापको सुनकर कृष्ण, बलभद्र, दूसरे कुदुम्बी-जन और सभी रानिया वहा आ गई। कृष्णने अपने भुजबल और सावधानी की निंदा की, उन्हे धिक्कारा। तब कृष्णने कहा, “जगत-में दैव और पुरुषार्थ दोनों पदार्थमें दैव ही प्रबल है। जो पुरुषार्थ-का गर्व करे, उसे धिक्कार है। जो पुरुषार्थ दैवसे प्रबल होता, तो मुझ नगी तलवार समान तेजस्वी कृष्णके पुत्रको कोई शत्रु कैसे ले जाता?” यह विचार कर के कृष्णने रुक्मणीको धैर्य वधाते और

आश्वासन देते हुए कहा, “हे प्रिये ! तू शोक मत कर, धैर्य धर । तेरा पुत्र स्वर्गसे आया है और पुण्याधिकारी है । वह अल्पायु नहीं हो सकता । तुम्हारे सदृश माता और मुझ समान पिताके यहा पुण्य-हीन और अल्पायु पुत्र नहीं हो सकता । यह कोई भावी ही ऐसी थी, जो ऐसा हुआ । तेरी आखोके तारेको मैं अवश्य लाऊगा । जैसे सूक्ष्म हृष्टिवाले आदमी दूजके चन्द्रमाको आकाश में देख ही लेते हैं, मैं भी उसे देखँगा ।” इस प्रकार वासुदेवने रुक्मणीको धैर्य वधाया । उसका मुह धुलवाया । अब कृष्ण बालकको तलाश करने का उपाय करने लगे ।

उसी समय वहा नारदजी आ पहुचे । रुक्मणीके पुत्रहरणकी बात सुनकर वह क्षणिक शोक कर के नतमुख हो गया । उसने सब यादवोके दग्धकमल सरीखे मुख देख कर कृष्णसे कहा, “हे भाई ! तू शोक मत कर, मैं तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊगा । मैं पूर्व विदेहमे सीमंधर स्वामीसे पूछ कर तेरे पुत्रका समाचार लाऊगा । इस प्रकार बलदेव आदि सब यादवोका धैर्य वाध कर वह शोकान्तिसे दग्ध मुखारविन्दवाली रुक्मणीके पास गया । शोकचित्त रुक्मणी नारदको देखते ही धैर्य कर उठ बैठी और नारदको नमस्कार करके पास आ बैठी । अपने हितैषीको देख कर पुराना पड़ा हुआ शोक भी नया बन जाता है । इसी कारणसे रुक्मणी नारदको देखते ही फूट-फूट कर विलाप करने लगी । दुख समुद्रसे निकलनेके लिए विवेकी कृष्णप्रिया रुक्मणीको सात्वना देते हुए कहने लगा, “हे पुत्री ! तू शोकको छोड़ दे । तेरा पुत्र जीवित है और किसी स्थानपर सुखसे है । किसी पूर्वजन्मके बैरीने उसे हरा है । वह महात्मा है, चिरजीवी है । तुम्हारे उदरसे पुण्यहीन बालक जन्म नहीं ले सकता । हे बेटी ! इस ससारमे जीवोके लिए सयोग और वियोग दोनों सुख-दुख के देने वाले होते हैं । तेरे दुखसे मुझे दुख हुआ है । यह यादवोका बड़ा कुल है । इस कुलमे ज्ञानवान् व्यक्ति विशेष हैं और कार्यों के

रूप तथा फल को जानते हैं। इनके कुलमे दुखदायी उत्पन्न नहीं हो सकता। तू जिन-शासनके रहस्यको जानती है, ससारकी भूठी माया को भी भली प्रकार जानती है। यह संसार अपार है, इस लिए शोकातुर न हो। मैं तेरे पुत्रका समाचार शीघ्र लाऊ गा।” इस तरह रुक्मणीके धर्मपिता नारद अमृत रूपी बचनोसे उसे सतोप देकर तीर्थकर सीमधरके पास आ गये। उन्हे नमस्कार करके नारद भ्रवचन सभा मे जा वैठे।

वहा सभोसरणमे बहुत ऊँचे कद वाला पद्मरथ चक्रवर्ती अपनेसे छोटे कदके नारदको देखकर चकित हो गया। उसने नारद को हाथोमे उठाकर तीर्थकर सीमधरसे पूछा, “हे नाथ! यह मनुष्याकार का कौन व किस जातिका जीव है?” भगवान् सीमधरने पद्मरथ चक्रवर्तीसे कहा, “यह नारद कृष्णका मित्र है।” तब धर्मचक्रके धारक भगवान् सीमधरने चक्रवर्तीको सब कथा सुनाई। और कहा, “हे राजन्! कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको उसके पूर्वजन्मका शत्रु हर कर ले गया। सोलह वर्ष बीतनेपर वह रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्याओका धारक इतना प्रबल पराक्रमी होगा, कि देव भी उसे न जीत सकेंगे। फिर वह अपने माता-पिता से मिलेगा।”

प्रद्युम्न कुमारका चरित्र और उसके हरणका कारण पूछनेपर सीमधरने नारदके सामने चक्रवर्तीसे कहा, “जम्बूद्वीपमे मगध देशमे शालिग्राम नगरमे सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी अग्निला रहते थे। वह स्त्री अग्निकी दीप्तिके समान पतिके लिए सुखदायी थी। उनके दो पुत्र अग्निभूति और वायुभूति थे।

ये दोनो पुत्र वेद-विद्याओमे प्रवीण थे और उन्होने अपनी विद्या से दूसरे ब्राह्मणोकी कातिको मन्द कर दिया था। वे वेद पाठियोमें ऐसे थे, जैसे नक्षत्रों मे शुक्र और वृहस्पति होते हैं। वेदाभ्यास से उनको गर्व हो गया। और ये वडे वाचाल थे। माता-पिताके लाड-

चावके कारण ये भोग-विलास में तत्पर रहते थे । परलोककी चर्चा से इन्हे द्वेष ही था । लोक सुधारनेकी वात इन्हे सुहाती ही न थी ।

एक दिन श्रुतसागरके पारगामी नन्दी वर्धन मुनि एक उद्यानमें आकर विराजे । उस गांवके चारों वरणोंके स्त्री-पुरुष मुनि वन्दना और दर्शनको जा रहे थे । इन दोनों भाइयोंने जनताके जानेका कारण पूछा । तब एक ब्राह्मणने वहाँ मुनिके आने और उनके दर्घनार्थ जनताके जानेका कारण बताया । तब इन दोनों भाइयोंने सोचा, कि क्या हमसे बड़ा भी कोई विद्वान है ? वे दोनों अभिमानी भाई मुनि का माहात्म्य देखने गये ।

वहा मुनि सघके एक मुनि सात्त्विक गुरुसे परे बैठे थे । उन दोनों विप्रपुत्रोंको देखकर उसने मनमें विचार किया, कि ये अभिमानी हैं और गुरुके पास जाकर विवाद करके सभामें क्षोभ और गडबड करेंगे । इस लिए सात्त्विक मुनिने उन्हे वहाँ ही ठहरानेकी वात सोची ।

उस मुनिने उन दोनों विद्वान ब्राह्मणोंको बुलाकर अपने पास बिठाया । उनको विवाद करने में तत्पर और अभिमानी देखकर वहाँ बहुतसे लोगोंकी भीड़ ऐसे लग गई, जैसे वर्षा ऋतुमें घरमें पानी भर आता है ।

मुनिने उन ब्राह्मणोंसे पूछा, “आप कहा से आये हैं ?”

“गावसे”, उन्होंने उत्तर दिया ।

मुनिने फिर कहा, “यह तो मैं भी जानता हूँ और तुम शालिग्राम गावके निवासी हो । मैं तो यह पूछना चाहता हूँ, कि इस ससारमें भ्रमण करते-करते तुम कौनसी गतिसे आये हो ?” ब्राह्मणोंने कहा, “यह ज्ञान हमें तो क्या किसी को भी नहीं है ।”

तब उस मुनिने उन्हे बताया, “पहले जन्ममें तुम दूर गाव के निकट श्याल थे। परभवमें भी तुम में प्रीति थी। इस गावमें एक प्रवरक नामक किसान ब्राह्मण रहता था। एक बार सात दिन तक वर्षा हुई, तेज वायु चली और विजलियां गिरी। ठण्डसे उस ब्राह्मण का शरीर कापने लगा। तब उसने एक बड़के वृक्षके नीचे आश्रय लिया। वर्षसे ब्राह्मणके जूते तथा कपडे आदि खूब भीग गये। दोनों श्यालोने धूधा पीड़के कारण जो मिला वही खा लिया। इससे उनके पेटमें वायुशूल का ऐसा दर्द उठा, कि उनसे सहा ही नहीं गया और वे मर गये। वे मर कर मनुष्य योनि में जन्मे। तुम सोम देव ब्राह्मणकी अग्निला स्त्रीके अग्निभूति और वायुभूति पुत्र हुए और तुम्हे कुलका घमण्ड है। यह कुलमद भूठा है। प्राणियोंके पापके उदयसे दुर्गति और पुण्यके उदयसे सद्गति प्राप्त होती है। इसलिए कुल या जातिका मद क्यों? गर्व करना वृथा है। जब वह किसान ब्राह्मण खेत में आया, उसने मरे हुए श्याल देखे और उनकी खालोंकी वाथडिया थैले बनवाये। ग्राज भी वे दोनों बाथ-डियाँ उसके घरमें हैं।

उन ब्राह्मण विद्वानोने मुनिसे पूछा, “महाराज! फिर क्या हुआ?” मुनिने उत्तर दिया, “वह प्रवरक ब्राह्मण मर कर अपने वेटेका वेटा हुआ। उसे जाति स्मरण हो गया और अपने पिछले जन्मकी बाते याद करते ही गूगा हो गया। वह अपने भाइयों में बैठा अब मेरी ओर देख रहा है।”

इतना कहकर मुनिने उस गूगे आदमीको अपने पास बुलाया और कहा, “हे भाई! तू प्रवरक ब्राह्मण है और वेटे का वेटा हुआ है। अब तू गोक को छोड़ दे और गूगापन भी तज कर अमृत वचन बोल। डस ससारमें यह जीव नटकी तरह नाच नाचता है। वह स्वामीसे सेवक और सेवक से स्वामी होता है। पिता से पुत्र और पुत्र से पिता बनता है और पत्नीसे माता। संसारका स्वरूप ही उलट-फेर रूप है।

जैसे अरहटमे ऊपर की घडिया नीचे और नीचे की घडिया ऊपर हो जाती है, और भरी घडिया खाली हो जाती है और खाली घडिया भर जाती है, इस प्रकार ऊपर नीचे होता रहता है। यह जीव अनादि काल से ससार में भ्रमण कर रहा है। इसलिए हे पुत्र ! तू ससार के असार और महाभयकर रूपको समझ कर सार पदार्थ का सग्रह कर। ससारमें दया धर्म मूल वाले पञ्च महाव्रत—अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय—ही सार है।” इस प्रकार उस सात्त्विक मुनिने प्रवरक नामक किसान ब्राह्मणके जीवको समझाया। इस पर वह ब्राह्मण मुनिकी प्रदक्षिणा करके उसके पाव पड़ा। उसने मुनिको नमस्कार करके गद्गद् वाणीसे कहा, “हे ईश्वर ! आप सर्वज्ञ तुल्य ससारकी वस्तुओंका स्वरूप प्रत्यक्ष देखते हो। तीन लोककी रचना भी आपसे छिपी नहीं है। हे गुरु ! अब तक मेरा मन अज्ञान के पर्दे से ढका हुआ था। आपने ज्ञानके अजनकी सलाई-से उसे दूर कर दिया है। आपने मुझे अधिकारसे निकाल कर प्रकाश-में लाकर मुक्तिमार्ग दिखाया है। आप प्रसन्न हो मुझे मुनिदीक्षा दो ?” यह कहकर वह प्रवरक किसान ब्राह्मण मुनि हो गया और दूसरे कई आदमियोंने भी मुनि तथा श्रावकके व्रत-नियम लिये।

यह सब देख-सुनकर वे दोनों भाई अग्निभूति और वायुभूति घर गये। इनके माता-पिताने इनकी बड़ी निन्दा की। रातके समय वे दोनों सात्त्विक मुनिको मारने गये। वह मुनि एकान्तमें ध्यान मग्न खड़ा था। उन्होंने मुनिको मारने के लिए खड़ग चलाई, पर वन के अधिष्ठाता यक्ष देवने उनसे मुनि की रक्षा की और उन दोनों भाइयों को वही कील दिया। प्रभात होने पर जिसने इन्हें देखा, उसने इनकी निन्दा की, धिक्कारा। स्वयं इनको भी अपने काम पर लज्जा आई। इन्होंने मनमे सोचा, कि हमने प्रभावगाली मुनिके प्रति विनयाचार को उलघा और फल स्वरूप हम कीले गये। उन्होंने मनमे सोचा, कि यदि अब हम इस वधनसे छूटे, तो जिनधर्मका आराधन करे।

जब इन दोनों भाइयोंके दुष्कर्म और कीले जानेका समाचार इनके माता-बापने सुना, तो वे मुनिके पाव पड़े और उन्होंने उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया । मुनि तो महा दयावान थे, ध्यान मग्न बैठे थे । मुनिने यक्षसे कह कर उन दोनों ब्राह्मण पुत्रोंके बधन खुलवाये । फिर इन दोनों भाइयोंने गृहस्थ धर्मका रूप मुनिसे सुनकर गृहस्थके अगुव्रत ग्रहण किये और मरनेके पश्चात् प्रथम स्वर्गलोक गये ।

पर इनके माता-पिता अश्रद्धापूर्वक मरनेके कारण कुगतिको गये ।

वे दोनों भाई स्वर्गलोकके सुख भोगकर अयोध्यापुरीमें समुद्रदत्त सेठकी धारणी नामक सेठानीके यहाँ पूर्णभद्र और मणिभद्र दो पुत्र हुए और जैन धर्मावलम्बी हुए ।

एक दिन ये दोनों भाई रथ पर सवार होकर मुनिदर्शनको जा रहे थे । मार्गमें एक चाण्डाल और कुतियाको देखकर इनके मनमें उनके प्रति ग्रिति स्नेह पैदा हुआ । तब इन्होंने गुरुसे इस अनुरागका कारण पूछा । मुनिने उन्हें बताया कि ब्राह्मण जन्ममें ये उनके माता-पिता थे, पर पाप कर्मके फलस्वरूप नरकमें गये । वहाँके दुख भोग कर ये चाण्डाल और कुतिया हुए हैं ।

श्री गुरुसे यह बात सुनकर वे दोनों भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र उस चाण्डाल और कुतियाके पास गये और उन्हे उनके पूर्व जन्मकी बात कहकर धर्मोपदेश दिया । उस धर्मोपदेशसे उन्हें शान्ति प्राप्त हुई । उस समय चाण्डालकी आयु एक मास मात्र शेष थी । इसलिए उसने श्रावकके व्रत लेकर सब प्रकार के आहारका त्याग करके समाधि मरण किया और नन्दीश्वर द्वीपका अधिष्ठाता देव जन्मा । इस प्रकार उसने चाण्डालके अरीरसे देव योनि पाई । उस कुतियाने भी श्रावकके व्रत ग्रहण किये, समाधि मरण किया और फलस्वरूप अयोध्या के राजाके घर राजकुमारी हुई । जब यह नवयुवती विवाह योग्य

हुई, तो उसके स्वयम्बरकी तैयारी की गई। इसका नाम अग्निज्वाला था। स्वयम्बर-मण्डप सजाया गया और उसमें देग-देगके बहुतसे नृप आदि एकत्रित हुए। स्वयम्बर विजेता वननेकी इच्छासे सम्मिलित हुए। जब अग्निज्वाला वरमाला हाथमें लेकर नवयुवकोंको देख रही थी, तब वहाँ पर एक देव आ निकला। उसने इस नवयुवती-के कानमें विवाहसे विरक्ति लानेकी बात कही, उसे धिक्कारा। तभी इस राजकुमारीने वरमाला फेंक दी, आभूपण उतार दिये और ससारको असार समझकर साध्वी बन गई। अब उसके गरीर पर एक सफेद साढ़ी थी।

ये दोनों भाई पूर्णभद्र और मणिभद्र थावकके ब्रत लेकर समाधिमरण करके स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे ये अयोध्याके राजा हेमनाथ-की धरावती रानीसे मधु और कैटभ पुत्र जन्मे। जब ये राजकुमार बड़े हुए, तब राजा हेमनाथने वडे राजकुमार मधुको राज सौप दिया, कैटभको युवराज बना दिया और स्वय मुनि दीक्षा ले ली।

दोनों भाई मधु और कैटभ सुखसे राज करने लगे। इसी समय एक पहाड़ी राजा भीमने राजा मधुकी आज्ञाका उल्लंघन किया और इसके राज्यमें गडवड करने लगा। राजा मधु अपनी सेना लेकर उसे दबाने चला। मार्गमें राजा मधुने अपने मित्र और भक्त राजा वीरसेनके नगर वटपुरमें विश्रामके लिए डेरे डाल दिये। राजा वीरसेनने उनका राज्योचित आदर-सम्मान और आतिथ्य किया।

वहाँ राजा वीरसेनकी रानी चन्द्राभाने अपने रूप और मधुर भाषण-से राजा मधुके मनको जीत लिया। यद्यपि राजा मधु नीति और धर्म शास्त्रोंका जाननेवाला था, पर वह अपने मनको न रोक सका, वह मन्द बुद्धि हो गया। तब प्रधान मन्त्रीने राजाको सलाह दी, कि इस समय हमें राजा भीमको वशमें करना है और उपद्रव न उठाओ।

राजाने मत्रीकी बात मान ली और राजा भीमको पराजित करके अयोध्या वापस आ गया ।

पर राजा मधुका मन तो रानी चन्द्राभापर आसक्त था । उसने उस रानीको प्राप्त करनेके लिए वसन्तोत्सवका प्रपञ्च रचा और सब राजाओंको उसमे आनेका निमत्रण दिया । राजा वीरसेन अपनी रानी चन्द्राभा सहित उत्सवमे सम्मिलित हुआ । दूसरे राजाओंको आदर-मान-उपहार आदिके साथ विदा किया । राजा वीरसेनको भी अविक आदर-मानके साथ विदाकर दिया गया । पर रानीको यह कहकर रोक लिया कि उसके योग्य वस्त्राभूषण थोड़े दिनोंमे बनेगे । वीरसेन भोला राजा था, राजा मधुके धोकेमे आ गया । फिर राजा मधुने रानी चन्द्राभाको सब रानियोंमे पटरानी बनाकर अपने महलमे रख लिया ।

राजा वीरसेन अपनी पत्नीके वियोगमे पागल सा होकर चन्द्राभा चन्द्राभा पुकारता धूमता-धूमता अयोध्या आ गया । रानी चन्द्राभाने अपने पति वीरसेनको महलके भरोखेसे देख लिया । उसने राजा मधुको भी अपने पूर्व पतिको विलाप करते दिखाया । राजाने कोई उत्तर न दिया ।

इसी समय नगरके कोतवालने किसी परगारीको हरण करनेवाले एक अपराधीको राजाके सामने न्यायके लिए पेश किया । राजा मधुने उस अपराधीको हाथ-पाव और सिरकाटनेके दण्डोंमे से कोई दण्ड देनेको कहा । रानी चन्द्राभाने राजासे पूछा, “हे राजन् ! यह दण्ड प्रजाके लिए ही है या राजाके लिए भी है ?” “सबके लिए” राजाने उत्तर दिया ।

इस उत्तरको मुनकर रानी नीचे मुह करके मुस्करा दी, मानो वह कह रही थी, “हे राजन् ! आप भी परदारारत अपराधी व पापी हो । दण्डके योग्य हो ।”

रानीके प्रश्न कटाक्षने राजा मधुके अतरंगकी आँखे खोल दी । राजा मनमे समस्त बात समझ कर ऐसे मुरझा गया जैसे धूपसे जला हुआ कमल । राजाने इसे अपने कल्याणकी बात समझ कर रानी चन्द्राभाका उपकार माना । वह ससारसे विरक्त हो गया ।

उसी समय अयोध्यामे मुनि विमल वाहन पधारे । राजा मधु और उसका छोटा भाई कैटभ मुनिसे धर्म श्रवण कर दीक्षा ले मुनि बन गये । रानी चन्द्राभा भी आर्यिका बन गयी । नगरके और बहुत से स्त्री-पुरुषोने भी उनका अनुसरण कर दीक्षा ले ली ।

राजाका पुत्र माधव सिंहासन पर बैठकर राजकार्यका सचालन करने लगा ।

मधु और कैटभ मुनि बन कर महाव्रतोका पालन करने लगे, वे कठोर-से-कठोर तप, उपवास करने लगे । वे ग्रीष्म ऋतुमे तपते पहाड़ो पर तप करते, वर्षामे वृक्षोके नीचे ध्यान करते और गीत-कालमे वे नदी या सरोवरके किनारे ठण्डी-ठण्डी पवनोके बीच तप करते । तपस्थियोमे ये दोनो मुनि आदर्श उदाहरण बन गये । ये तीर्थराज सम्मेद शिखरसे देवलोक गये ।

स्वर्गसे मधुका जीव तो श्री कृष्णकी रानी रुक्मणीकी कूखसे प्रद्युम्न पैदा हुआ और कैटभ श्री कृष्णकी दूसरी रानी जाववतीके सम्बुकुमार पुत्र होगा और वह वटपुरका राजा वीरसेन रानी चन्द्राभाके विरहके सतापमे दुर्विचारोके साथ मर कर कई योनियोमे अमरण करके धूमकेतु नामका असुर बना और अपने पूर्व जन्मके वैरी राजा मधुके जीव प्रद्युम्नको जन्मते ही उठा कर ले गया । यह वैरभाव पापको बढ़ाने वाला है । इसी वैरके कारण प्रद्युम्न हरा गया । पर उसने मुनि बनकर जो तप किया था, उसके प्रतापसे प्रद्युम्नकी रक्षा मेघकूटके विद्याधर कालसम्वरने की ।”

ये सब बाते सीमधर जिनेन्द्रने पद्मरथ चक्रवर्तीको बतायी। नारद भी सब बाते सुननेके पश्चात् सीमन्धर स्वामीको प्रसाम करके प्रसन्न-चित्त मेघकूट नगर अपनी आँखोसे प्रद्युम्न कुमारकी दशा देखने गया। कालसम्वर विद्याधरने नारदजीका बड़ा सम्मान किया। वहाँसे नारद रनवासमे विद्याधरी कनकमालाके पास गया। उसने बड़ी विनयसे नारदको नमस्कार किया। नारद प्रद्युम्न कुमारको सकुशल देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

वहाँसे नारद तुरन्त आकाशमार्गसे द्वारिका लौट आया और उसने सीमन्धर स्वामीसे सुनी समस्त बात तथा मेघकूटमे अपनी आँखो देखे प्रद्युम्नके सब वृत्तान्तको कृष्ण और दूसरे यादवों को सुनाया।

प्रद्युम्नकी सुरक्षाका समाचार सुनकर सबको अति हर्ष हुआ। फिर प्रफुल्लित मुखकमल नारद रुक्मणीके पास जाकर कहने लगा, “हे रुक्मणी! तेरा पुत्र मेघकूट नगरमे कालसम्वर विद्याधर और उसकी रानी कनकमालाके यहाँ सकुशल है। वह सोलह वर्षकी आयुमे प्रज्ञप्ति विद्याको प्राप्त कर यहाँ आयेगा। जिस दिन आयेगा, उस दिन तेरे नगरके उपवनोमे बिना समय मोर नाचेगे, ध्वनि करेगे, सूखे तालाब जलसे भर जायेगे और तेरा शोक दूर करनेके लिए अगोक वृक्ष प्रफुल्लित हो जायेगे, इतना ही नहीं, गूँगे वाचाल हो जायेगे और कुबडोका कुवडापन जाता रहेगा। तब तुम अपने प्रिय पुत्रका आगमन समझना। ये सीमन्धर स्वामीके वचन हैं, अन्यथा नहीं हो सकते।”

नारदके मुखसे अपने पुत्रकी इतनी बाते सुनकर, उसकी जानमे जान आई और स्तनोमे दूध भर आया।

रुक्मणीने नारदका आभार मानते हुए कहा, “हे भगवन् ! यह काम आप जैसा भाई ही कर सकता है, दूसरा नहीं। मैं तो छोटीसी बालिका ही हूँ। मैं पुत्रके शोककी आगसे जल रही थी। मेरा कोई सहारा नहीं था। परन्तु आपने हस्तावलम्ब देकर मुझे थामा है। जो कुछ सीमन्धर स्वामीने कहा है, वह सत्य ही है। मुझे जीवित पुत्रके दर्शन अवश्य होगे। मैं जिनेश्वरके वाक्यपर ही जीवित हूँ। आप इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकते हो, पर जीघ्र दर्शन देना।” इस तरह रुक्मणीने नारदसे मीठे वचन कहकर प्रणाम किया। नारदने भी उसे आशीर्वाद दिया और चला गया।



कृष्णके और विवाह

कृष्णके सुभद्रा और रुक्मणीके साथ विवाहोंका वर्णन पीछे दिया जा चुका है। यहाँ उसके और विवाहोंकी बात बताई जायेगी।

एक दिन नारद कृष्णके पास आकर पारस्परिक क्षेम-कुशल पूछनेके पश्चात् कहने लगा, “हे कृष्ण! विजयद्वि पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे जम्बुपुर नगरका राजा जाम्बूब विद्याधर है, जिसकी रानी शिवचंद्रा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शरीरवाली है। उसके विश्वक श्रेणी पुत्र और जाम्बवती राजकुमारी है। उस राजकुमारीको मैंने उसकी सखियोंके साथ गगामे स्नान करनेके लिए प्रवेश करती देखी। वह रूप-सौन्दर्यमे ऐसी सोहती थी, मानो तारो से युक्त चन्द्रकाति ही गोभायमान हो।”

इतना सुनते ही कृष्ण जाम्बवतीको प्राप्त करनेको तैयार हो गया। वह अपने बडे भाई अनावृष्टिके साथ गगा पर गया और ज्यो ही कृष्ण और जाम्बवतीने एक दूसरेको देखा, उनकी आँखे चार हुईं, आपसमे उनका प्रेम हो गया। कृष्णने उसे अपनी दोनो भुजाओंमे उठा लिया। जाम्बवतीको उठाते ही उसकी सखियोंने विलाप करना आरम्भ कर दिया। उसका पिता राजा जाम्बूब तुरन्त अपनी सेना तैयार करके कृष्णसे लड़ने और अपनी पुत्रोंको छुड़ाने आ गया। पर अनावृष्टिने लड़ाईमे उसे पराजित कर दिया और वाध कर लानेके पश्चात् कृष्णको सौंप दिया। तब उस राजाको विरक्ति हो गई।

कृष्णके और विवाह

और उससे अपना राज्य अपने पुत्र विश्वकर्सेनको सौंप कर स्वयं मुनि दीक्षा ले ली । विश्वकर्सेनने अपनी बहन जाम्बवती का विवाह विधिपूर्वक कृष्णसे कर दिया । द्वारिकामे रूक्मणीके महलके निकट ही जाम्बवतीको निवास स्थान दिया । और उन दोनोंमे गहरा प्रेम हो गया ।

इसके पश्चात् कृष्णने सिंहल द्वीपके राजा श्लक्षणरोमसे लड़ कर उसकी राजकुमारी लक्षणाको हर कर लाकर विवाह किया । कृष्णने उसे जाम्बवतीके निकट भवन दिया ।

फिर राष्ट्रवर्धन देशकी अजासुरी नगरीके राजा सुराष्ट्रकी विनयारानी, महापराक्रमी तथा महाबुद्धिमान नेमित पुत्र और सुसीमा राजकुमारी थी । सुसीमा जैसी वनिता वसुधापर और कोई न थी । राजा सुराष्ट्रने पुत्रको युवराज पद दे दिया । एक दिन राजकुमार नेमित कुमार अपनी बहन सुसीमाके साथ समुद्रपर स्नान करने गये । नारदने कृष्णको बताया कि सुसीमा रूप-गुणकी खान है । कृष्ण अपनी सेना लेकर सुसीमा को लेने गये । नेमितको लड़ाईमे पराजित करके कृष्ण सुसीमाको द्वारिका ले आया । कृष्णने सुसीमाको लक्षणाके महलके समीप निवास दिया ।

सिंधु देशके इस्वाकु कुलके राजा मेरूकी पुत्री गौरी थी । वह साक्षात् गौरी यानी पार्वती समान और मूर्तिवती विद्या ही थी । कृष्णने राजा मेरूके पास अपना राजदूत भेजा । उसे किसी निमित्त ज्ञानीने पहले ही बता रखा था, कि उसकी बेटी गौरीका पति कृष्ण होगा । मेरूने सहर्ष अपनी पुत्री गौरी श्री कृष्णसे विवाह दी ।

अरिष्टपुरका राजा हिरण्यनाभि वलभद्रका मामा था । उसकी रानीका नाम श्रीकान्ता और पुत्रीका नाम पद्मावती था । वह साक्षात् लक्ष्मीके सहस्र थी । उसके स्वयम्बरका समाचार सुनकर कृष्ण, वलभद्र और बड़ा भाई अनावृष्टि वहाँ गये । राजाने उन सब-

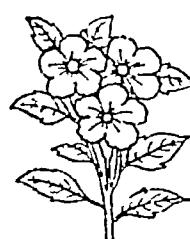
का बड़ा आदर-मान किया । राजकुमारी पद्मावतीने स्वयम्भरमे कृष्णाको फूलमाला पहनाई । उनका विवाह हो गया । हिरण्यनाभके बडे भाई रेवतकी चार राजकुमारियो—रेवती, वन्धुवती, सीता और राजीवनेत्रा—की सगाई पहले ही वलभद्रसे हो चुकी थी । इसलिए इस अवसरपर उनके विवाह भी वलभद्रसे कर दिये गये । दोनों वलभद्र और कृष्ण अपनी नववधुओंके साथ द्वारिका वापिस आये ।

गाधार देशकी पुराकलवती नगरीके राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरुमतीकी राजकुमारी गाधारी थी । उसके भाईका नाम हिमगिरि था । उसने अपनी बहनकी सगाई हयपुरके राजा सुमुखसे की थी । नारदने कृष्णाको यह सब बात सुनाई । कृष्णने युद्धमे हिमगिरिको पराजित करके गाधारीसे विवाह किया ।

ये कृष्णाकी आठ पटरानियाँ थी । उसकी बहुत सी रानियाँ और भी थी ।

कृष्णने पुण्यसे प्राप्त नारायण पदके भोग रूप फलोंको भोगा । उसके राजमे कोई भी पुरुष दुखी नहीं था । वह धर्मका रक्षक राजनीतिमे प्रवीण और सन्मुख आनेवाले नत्रुओंको क्षणमात्र मे तृणके समान उखाड़ डालनेवाला था ।

जिन-धर्मके पालनसे कृष्णाके समान मुनवाछित सुख प्राप्त होते हैं ।



: २८ :

कौरव, पांडव और द्रौपदी स्वयम्भव

राजा समुद्रविजय आदि दस भाइयोंके प्रसिद्ध पाच पाण्डव युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भानजे थे । राजा श्रेणिकने पाण्डवोंका नाम सुनते ही श्री गौतम गणधरसे पूछा, “हे प्रभो ! ये पाण्डव कौन हैं और किस वशमे पैदा हुए हैं ?

उत्तरमे गौतम गणधरने पाण्डवोंकी उत्पत्ति और उनका नीचे लिखा वृत्तान्त सुनाया

“सोमप्रभ श्रेयासके वशमे राजा कुरु हुए थे । उसके वशमे तीन तीर्थकर शातिनाथ, कुथुनाथ और अरहनाथ हुए । इस वशके सभी राजा चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके साधक हुए थे । इस वशमे बहुतसे बड़े-बड़े राजा हुए । कुरुजागल देशमे हस्तिनापुरमे पृथ्वीके आभूषण प्रथम तीर्थकर ऋषप्रभ देवके समय राजा सोमप्रभके पुत्रका नाम जय कुमार था, उन्हे मेघेश्वर भी कहते थे । यह मेघेश्वर भरत चक्रवर्तीका मन्त्री था । इनके कुरु नामका पुत्र हुआ । राजा कुरुके कुरुचन्द्र पुत्र हुआ । इस प्रकार प्रथम तीर्थकर ऋषप्रभनाथसे लेकर वाईसवे तीर्थकर नेमिनाथके समय तक इस वशमे करोड़ो राजा महाराजा हुए । बहुतसे राजाओंके पश्चात् चौथे चक्रवृत्ती सनत्कुमार कुरुवशमे ही हुए । इसी वशमे राजा विश्वसेन और रानी एराके पवम चक्रवर्ती सोलहवे तीर्थकर शातिनाथ हुए । इनसे बहुत समय पश्चात् राजा सूर्य और रानी श्रीमतीके यहाँ

भगवान् कु शुनाथ सतरहवे तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती हुए। इनके पीछे अनेक राजा और हुए। फिर राजा सुदर्शन और रानी मित्राके घरमे अठारहवे तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ सातवे चक्रवर्ती हुए। महापद्म नवे चक्रवर्ती भी इसी वशमे बहुत बादमे हुए।

अनेक राजाओंके पश्चात् राजा धृतराज हुआ, उसकी तीन रानियाँ अविका, अबालिका और अवा थी। धृतराजकी रानी अविकासे धृतराष्ट्र पुत्र हुआ, अबालिकासे पाण्डु पुत्र हुआ और अवा से विदुर पुत्र हुआ। ये तीनों पुत्र महाज्ञानवान थे। राजा धृतराजके भाई रुक्मणके यहाँ रानी गगासे भीम पुत्र हुआ।

राजा धृतराष्ट्रकी रानी गाधारीके दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए जिनमे आपसमे बड़ा प्रेम था। ये सब भाई शस्त्रविद्यामे प्रवीण थे। राजा पाण्डु की दो रानियाँ कुन्ती और माद्री थी। कुन्तीके कर्ण तो गाधर्व विवाहसे हुआ और फिर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन हुए और माद्रीसे दो पुत्र नकुल और सहदेव हुए। ये पाँचों भाई महा जिनधर्मों और पचपरमेष्ठीके दास थे। कुछ समय पश्चात् पाण्डुने मुनि दीक्षा और माद्रीने आर्यिका दीक्षा ले ली और स्वर्ग गये।

धृतराष्ट्रके सौ पुत्रों और पाण्डुके पाँच पुत्रोंमे राज्यके बटवारे-पर विरोध पैदा हो गया। तब भीष्म, विदुर और दुर्योधनके मत्री शकुनिने मध्यस्थ बनकर पाँच पाण्डवों और धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमे आधा-आधा राज्य बांट दिया।

परन्तु दुर्मोधन आदि सौ भाई इस बटवारेसे असतुष्ट और अप्रसन्न थे।

इसी समय जरासिंघ, दुर्योधन और कर्णमे एकान्तमे वातचीत हुई और इनमे अटूट प्रेम हो गया।

धनुर्विद्याके प्रसिद्ध आचार्य भार्गवाचार्यके वशमे द्रोणाचार्य बड़े नामी शस्त्रविद्या विशारद थे । ये पांचो पाण्डवों और दुर्योधन आदि सौ भाइयोंको 'धनुर्वेद' समान भावसे सिखाते थे ।

द्रोणाचार्यका नाम सुनते ही राजा श्रेणिक गौतम गणधरसे पूछने लगे, “हे प्रभो ! भार्गवाचार्यके वशज द्रोणाचार्यके वशकी कथा मुझे सुनाओ ।” गौतम गणधरने कहा, “पहले आत्रेय हुए थे । उनका पुत्र और शिष्य कौशुमि था । उसका पुत्र अमरावर्त, उसका सित्व, उसका वामदेव बेटा हुआ । फिर कपिष्ठल जगस्थामा, सरवण और सरासरण हुए । सरासरणका पुत्र विद्राबण हुआ, जिसका पुत्र द्रोणाचार्य हुआ । द्रोणाचार्यकी अश्विनी रानीसे अश्वस्थामा बड़ा धनुर्धारी पुत्र था । उसके सामने सिवाय अर्जुनके और कोई नहीं आ सकता था ।”

गौतम गणधरने द्रोणाचार्यका वृत्तान्त सुनानेके पश्चात् फिर पाण्डवोंकी बात कहनी आरम्भ करदी । “अर्जुनके प्रताप और धनु-विद्या ज्ञानको दुर्योधन आदि सौ भाई सहन न कर सके । पहले राज्य का जो विभाजन और सधि हुई थी, वे उसमे दोष निकालने लगे । उनको यह बात ही सहन न थी, कि आधे राज्यके पाँच पाण्डव मालिक बने और आधे के वे सौ भाई ।

दुर्योधन आदिके मनके असन्तोषकी बात पाण्डवोंने सुन ली । युधिष्ठिर तो महावीर था, इसलिए यह सुनकर उसे क्रोध पैदा न हुआ । पर दूसरे चारों छोटे भाई यद्यपि समुद्र समान निर्मल और गम्भीर थे, दुर्योधन आदिके वचन सुनकर उन्हें भी क्षोभ हो गया । सबसे पहले अर्जुनने उठकर कहा कि मैं वाणीकी वपसि शत्रुओंको नष्ट कर दूँगा । तब युधिष्ठिरने उसे शात किया । फिर भीम बड़े अंजगरके समान फुकार कर कहने लगा, “मैं अपनी हृषिक्षे सौ शत्रुओंको भस्म कर दूँगा ।” उसे भी बड़े भाईके वचनोंने मन्रवत्

शात् किया । इसी प्रकार नकुल और सहदेवको भी युधिष्ठिरने क्रोध करनेसे रोका । ये सभी चारों भाई युधिष्ठिरके लिए प्राण समान थे और वे बड़े भाई की आज्ञा मानते थे । वे सब गातिसे घरमें रहने लगे ।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि तो बड़े कपटी थे । उन्होंने उस घरको रातके समय आग लगा दी, जिसमें पाण्डव सो रहे थे । अग्निसे बचनेके लिए पाँचों पाण्डव माता कुन्ती समेत सुरगके मार्गसे निकलकर विदेश चले गये ।

छल प्रपञ्चसे पाण्डवोंको मारनेके कारण दुर्योधनका बड़ा अप-यश हुआ, हस्तिनापुरकी समस्त प्रजा, स्त्री-पुरुष, उसकी निन्दा करने लगे ।

सुरगसे निकलकर इन पाँचों भाइयोंने गगा पार करके भेष पलट लिया और पूर्वकी ओर चल पड़े । मार्गमें वे कोसिकपुरी पहुँचे, जहाँका राजा वर्ण था । उसकी रानी प्रभावती और पुत्री पुष्पके समान कोमल सुदर्शना थी । इस राजकुमारीने युधिष्ठिरके रूप-शौर्यकी प्रशसा पहले सुनी थी । इसलिए उसे युधिष्ठिरके प्रति अनु-राग था । अब दोनोंने एक दूसरेको देखा, तो वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये । पर युधिष्ठिरने दूरदर्शितासे उसे भविष्यमें विवाहके सकेतसे आश्वासन दिया । सुदर्शना भविष्यमें युधिष्ठिर मिलनकी आशा से सखियोंमें विनोद करती हुई अपना समय बिताने लगी ।

ब्राह्मणोंके भेषमें ग्राम-ग्राम नगर-नगर जाते हुए पाँचों राज-कुमार सबके मनोंको मोह लेते थे और इन्हे रास्ते भर स्वादिष्ट भोजन और सभी सुविधाएँ मिलती रहती थी । इन्हे कोई कष्ट नहीं हुआ ।

आगे इन पाँचों पाण्डवोंने ब्राह्मणोंके भेषसे तपस्त्वयोका भेष बदल लिया । ये मूलेष्मान्तक तपोवनमें तपस्त्वयोके अति रमणीक

आश्रममें विश्राम करने लगे। वहाँ आश्रममें कुन्ती और युधिष्ठिरका एक तपस्त्विनीसे अकलिप्त और अपूर्व मिलन हुआ। इसका नाम वसन्त सुन्दरी था। वह वसुन्धरपुरके राजा विध्यसेन और रानी-नर्मदाकी राजकुमारी थी। उसके माता-पिताने राजा युधिष्ठिरसे उसका विवाह करनेकी बात सोची थी। पर उनके जल जानेका समाचार सुनकर यह वसन्त सुन्दरी राजकुमारी अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंकी निन्दा करती हुई तपस्त्वियोंके आश्रममें इस विचारसे तप करने लगी, कि उसके फलस्वरूप जन्मातरमें युधिष्ठिर ही उसका पति होगा। अत्यन्त रूप लावण्य वाली यह तपस्त्विनी पाटवरकी साड़ी पहने और सिरपर जटा बढ़ाये, कानों तक फैले विगाल और तीक्षण नेत्रों और लाल फूलोंसे होठोवाली, चन्द्रभुखी देवताओंके मनोको भी हर लेनेवाली थी। सभी तपस्त्विनियोंकी वह पूज्य वनी हुई थी और चन्द्रकला समान निर्मल वह समस्त तपोवनको उज्ज्वल कर रही थी। जब पाण्डव उस आश्रममें पहुँचे तो उस वसन्त सुन्दरी तपस्त्विनीने उनका समुचित आतिथ्य-सत्कार किया, मधुर वचनोंसे उनके मार्ग यात्राके कष्टोंको दूर किया।

ज्योही माता कुन्तीने उसे देखा उसने स्त्री-स्नेह वश वसन्त सुन्दरीसे पूछा, “हे बाले! हे कमल कोमली! तूने नवयौवनमें किस कारणसे वैराग्य धारण किया?” तब उस मृगनयनी मधुर भाषिणी राजपुत्रीने अपने वचनोंसे माता कुन्तीका मन हरते हुए अपने पिताके युधिष्ठिरके साथ उसका विवाह करनेके विचारको बताया। उसने यह भी बताया कि पाण्डवोंके जल जानेके समाचारको सुनकर वह इस जन्ममें युधिष्ठिरको पानेकी आशा छोड़ उसे अगले जन्ममें पति रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे तपस्त्विनी वन गई। वह कहती चली गई कि उचित तो यह था पतिके अग्निदाहका समाचार सुनते ही वह भी अग्निमें प्रवेश करके प्राण त्याग देती, पर हीन शक्ति होनेके कारण वह ऐसा न कर सकी। माता कुन्तीने उसकी दूर-दर्शिता, विचारशीलता और पतिप्रेमकी सराहना की।

इसी समय युधिष्ठिर भी माके पास आकर खड़ा हो गया और माँ और राजकन्या तपस्विनीकी बात सुनने लगा । युधिष्ठिरने उन दोनोंको धर्मोपदेश देकर शान्त किया और धीरज बधाया । युधिष्ठिरके रूप और राजलक्षण आदि देखकर वसन्त सुन्दरीने उन सबको हर प्रकारका सुख दिया । प्रातःकाल पाँचो पाण्डव और कुन्ती आश्रमसे यात्राके लिए चलनेको तैयार हुए । चलते समय युधिष्ठिरने वसन्त सुन्दरीसे भविष्यमें मिलनेकी आशा प्रकट की और आगे चल पड़े ।

वसन्त सुन्दरी श्राविकाके पचाशुन्नत लेकर भविष्यमें पति मिलन की आशासे वही तपोवनमें रहने लगी ।

तपोवनसे निकलते ही पाण्डवोंने तपस्वी भेष त्यागकर फिर ब्राह्मण भेष बना लिया और इहापुर नगर चले गये ।

जब राजा समुद्रविजयने द्वारिकामें यह सुना कि दुर्योधनने मायाचारसे कुन्ती और पाँचो पाण्डवोंको अग्निमें जला दिया है और वे मर गये हैं, तब वह दुर्योधनपर बड़ा क्रुद्ध हुआ और कौरवोंको नष्ट करनेको तैयार हो गया ।

इधर इहांपुरमें भीमसेनने एक नर भक्षी राक्षस भृंगको मारकर जनताका भय दूर किया और यश प्राप्त किया ।

वहाँसे चलकर पाँचो पाण्डव कुन्ती सहित तृशृण नगर पहुँचे । वहाँके राजा चडवाहनकी दस सुन्दर कन्याएँ थीं । राजाने उन लड़कियोंका विवाह युधिष्ठिरके साथ करनेका विचार किया था । पर जब उसने पाण्डवोंके अग्निमें जल जानेकी बात सुनी । तब उन लड़कियोंने श्राविकाके अग्नुन्नत लिये । उसी नगरके एक बड़े धनवान सेठ प्रियमित्रने भी अपनी दो पुत्रियोंके विवाह युधिष्ठिरके साथ करनेका विचार किया था । पाण्डवोंके परलोक सिधारनेका समाचार सुनकर उन दोनों लड़कियोंने भी श्राविकाके अग्नुन्नत ले लिये ।

फिर वे पाँचो भाई चम्पापुरी गये। वहाँ राजा कर्णा राज करता था। वह दुर्योधन और जरासिंधका मित्र था। उस नगरमें भीमसेनने एक उपद्रवी हाथी को मद-रहित करके प्रजाको उसके उपद्रवोंसे मुक्त किया। पर वहाँ भीमने अपने आपको प्रकट नहीं किया।

इसके पश्चात् पाँचो पाण्डव अपनी माता कुन्ती सहित वैदिसि-नगर पहुँचे। वहाँ राजा वृषध्वज राज करता था। उसके द्यसानन्दा बड़ी यशवाली और निर्मल चरित्रकी लड़की थी। भीम उस राजाके घर भिक्षा मागने गया। पर राजाने भीमको महा पुरुष जानकर अपनी पुत्री द्यसानन्दाको ही उसे भिक्षामें देना चाहा। तब भीमने कहा, कि वह स्वतन्त्र नहीं है। अपनी माता और बड़े भाईकी आज्ञा बिना इसे स्वीकार नहीं कर सकता। उनकी आज्ञा पाकर भीमसेनने द्यसानन्दाका पाणिग्रहण किया।

आगे नर्मदा नदीको पार करके पाण्डव सध्याकार नगरमें पहुँचे। वहाँके राजा सिंहघोष की अति सुन्दर पुत्री हृदयसुन्दरी थी। त्रिकू-टाचलके राजा मेघघोषने राजासे हृदयसुन्दरीको विवाह में मागा, पर राजाने उसकी माग अस्वीकार कर दी। किसी निमित्त ज्ञानीने राजा सिंहघोषको बताता कि राजा मेघघोष विध्याचल पर्वतपर गदा नामकी विद्याको साधता है। जो वीर पुरुष राजा मेघघोषको मारेगा, वही हृदयसुन्दरीका पति होगा। भीमसेनने युद्धमें राजा मेघघोषको मार कर गदा और हृदयसुन्दरीको विवाहमें प्राप्त किया।

फिर पाण्डु-पुत्र देश-विदेशमें विहार करते हस्तिनापुर जानेकी इच्छासे मार्गमें देवपुरोके समान माकदी नगरीमें आये। वहाँके राजा का नाम द्रूपद था। उसकी रानी भोगवती, धृष्टद्युम्न आदि पुत्र और पुत्री द्रोपदी थी। द्रोपदीका शरीर रूप लावण्य, सौभाग्य और कलाओंसे अलकृत तथा शोभित था। उसके समान और सुन्दरी नहीं थी, और स्त्रियोमें वह वेमिसाल-अनुपम थी।

सभी राजकुमार इससे विवाह करनेके लिए राजा द्रुपदसे द्रोपदी की याचना करते थे । राजा द्रुपदने किसीकी प्रार्थनाको भग न करने के विचारसे द्रोपदीका स्वयम्बर रचा और सभी राजाओंको उसमे निमत्रित किया । स्वयम्बरकी गर्त यह थी, कि जो राजकुमार गाड़ीव धनुषको गोल करके चन्द्रक यत्रको वीधेगा वही द्रोपदीका पति होगा ।

द्रोपदीके रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर कर्ण तथा दुर्योधन आदि सभी राजाओंका समूह माकदी नगरीमे स्वयम्बरमे भाग लेनेके लिए आये । अर्जुन आदि भी उस स्वयम्बरमे सम्मिलित हुए । द्रोण और दुर्योधन आदि धनुषके समीप आये और आकर उसे देखा । वह देवाधिष्ठित धनुप था, उसे वे चढ़ा भी न सके । तब द्रोपदीके भावी पति अर्जुन उस धनुपके समीप आया और उसने धनुपको ऐसे चढाया जैसे पति पतिनिता स्त्रीको वज्रमे कर लेता है, वैसे ही उस धनुपकी फिडचि अर्जुनके वज्रमे हो गई । फिडचिके चढाने मात्रसे इतने जोरका शब्द हुआ कि कर्ण और दुर्योधनादि के कान बहरे हो गये और वहाँ और कोई आवाज सुनाई न दी । अर्जुनके गाड़ीव धनुपको चढाते ही द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदिको यह शका हुई कि कही यह व्यक्ति अर्जुन ही न हो, मरकर दुवारा न पैदा हुआ हो, क्योंकि और किसी वनुपधारीके पास यह विद्या कहाँ ? उन्होंने उसकी दृष्टि, मुट्ठी और चतुराईकी प्रशंसा की । इधर तो यह जका और विचार हो रहा था, उधर वेघ-विद्यामे प्रवीण अर्जुनने अपना निगाना लगाकर चन्द्रक यत्रको वीध दिया । निगानेका लगना था, कि द्रोपदीने गीत्र आकर अपने करकमलोंसे इसके सुन्दर कण्ठमे जयमाला डाली । जल्दीवाजीके कारण जयमालाका धागा टूट गया और मालाके पुष्प वायुकी तेजीसे अर्जुनके गलेके साथ टूसरे चारो पाण्डवोंपर भी आ पड़े । तब किसी विवेकहीन मनुष्यने यह कह दिया, कि द्रोपदीने तो इन पाँचों राजकुमारोंको वरा है । महासती

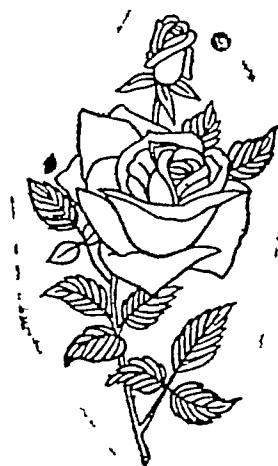
द्रौपदी अर्जुनको वर कर उसके पास खड़ी लताके समान लग रही थी। कुशल अर्जुन तभी नूपुर पहनी उस पार्वतीको राजाओंके बीचसे अपनी माता कुन्तीके पास ले जाने लगा।

द्रौपदीके जाते ही स्वयम्बरमेआमन्त्रित कुछ राजा लडनेको तैयार हो गये, पर नीति चतुर राजा द्रुपदने सबको रोका, मना किया, पर वे राजा अपने बलके नशेमें चूर थे और न माने। वे तब अर्जुनका पीछा करने लगे। भीम अर्जुन और धृष्टद्युम्न तीनों धनुषधारियोंने उन्हें आगे न आने दिया, वे पीछे भी न जा सके। धृष्टद्युम्न अर्जुनके साथ रथमें सवार था। तब उसने अर्जुनसे निवेदन किया कि वह भीष्म और द्रोणाको अपने व्यक्तित्वसे परिचित कराये। तब अर्जुनने अपने नामका पत्र लिखकर बाणके साथ द्रोणके पास फेका और वह पत्र द्रोणकी गोदमें पड़ा। इस परिचय-पत्रको पढ़ कर द्रोण अश्वत्थामा, भीष्म और विदुरको बड़ा हर्ष हुआ। सबका यह मिलन कितना आळादकारी था। उन्होंने दुर्योधनको भी वहाँ बुलाया। सभी कौरव-पाण्डव अर्जुन और द्रौपदीके विवाहमें सम्मिलित हुए। विवाहके बाद दुर्योधन आदि भी पाँचों पाण्डवों, कुन्ती और द्रौपदी आदिको लेकर हस्तिनापुर आये। आधा राज पाण्डवोंको दे दिया।

इसके पश्चात् युधिष्ठिरकी सभी मगेतरोका युधिष्ठिरसे और भीम-सेनकी मगेतर राजा वृषध्वजकी पुत्री द्यसानन्दाको बुला कर उन्हें विवाह दिया गया। द्रौपदी भी अर्जुनके साथ सुखपूर्वक रहने लगी। वह युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनके दोनों बड़े भाइयोंके लिए पुत्रवधु तुल्य थी और नकुल और सहदेव अर्जुनके दोनों छोटे भाइयोंकी भाभी इनके लिए माता सहज थी।

इन पाँचों पाण्डवों और द्रौपदीके विरुद्ध विवेकहीन मनुष्योंका यह कथन कि द्रौपदीके पाँच पति थे, वडा ही पाप पूर्ण है। दूसरेके

सच्चे दोषको भी प्रकट करना पापका कारण है, पर जो दूसरेमे वृथा भूठा दोष लगाता है, उसके पापको क्या कहा जाये ? जो आदमी छोटे-से-छोटे मनुष्यके सच्चे दोषको भी कहता है, वह कुगति मे जाता है, ससारमे उसकी निन्दा होती है । सज्जन पुरुष परदोष को नही कहते । स्त्रीकी सच्ची निन्दा करने की अपेक्षा सत्पुरुष मौन रहते है और दूसरोको मना करते है । आदमीका कर्तव्य है कि वह निन्दा सूचक असत्य वचनोको छोड़े और निष्पाप तथा दयामयी जो सत्य वचन है उन्हे बोले ।



: २६ .

कीचक निर्वाण

धीर-धीर पाण्डवोंके हस्तिनापुरमें रहते समय उनकी उत्कृष्ट विभूति और यशको देखकर सौ कौरव पहलेके समान उनसे फिर ईर्ष्या करने लगे और वचन मर्यादा तथा राज विभाजनके इकरारसे विचलित हो गये। मन्त्री शकुनिकी सम्मतिसे दुर्योधनने कपटके पासोंसे भोले-भाले युधिष्ठिरको जुएमें जीत लिया। दुर्योधनने हारे हुए युधिष्ठिरसे कहा, “हे युधिष्ठिर! तुम सत्यवादी हो, प्रतिज्ञाको पूरा करनेवाले हो, इसलिए यहाँसे चले जाओ और वारह वर्ष तक छिप कर ऐसी जगह रहो, जहाँ तुम्हारा नाम तक किसीको मालूम न हो।”

दुर्योधनके इस वचनसे यद्यपि भीमसेन आदि छोटे भाइयोंको बड़ा क्षोभ हुआ, पर युधिष्ठिरने उन्हें शान्त कर दिया। वे सब राज-पाट छोड़ कर हस्तिनापुरसे वारह वर्षके लिए चल पडे। जैसे चादनी चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है, वैसे ही प्रेम और हर्षके साथ द्रौपदी भी अर्जुनके पीछे-पीछे अज्ञातवास के लिए चल पडी।

पाँचों पाण्डव कृपणके यहाँ आश्रय पानेके लिए चल दिये। चलते-चलते वे कालान्जना नामक वनीमें पहुँचे। उस समय वहाँ प्रकीर्णक विद्याधरका पुत्र असुरोद्धीप नगरसे सुतार विद्याधर अपनी पत्नी कुसुमावलीके साथ वनीमें क्रीड़ा कर रहा था। पति-पत्नीने भीलो-का भेष बनाया हुआ था। अर्जुन और उस विद्याधरमें घनुर्घट्ट होने

लगा और बाणोसे सब दिशाएँ आच्छादित हो गयी। फिर दोनोंमें वाहुयुद्ध होने लगा और अर्जुनने उस विद्याधर की छातीमें ऐसे जोर-से मुक्का मारा कि वह जमीनपर गिर पड़ा। तब उसकी स्त्री कुसुमावलीने पतिके प्राणकी भीख मारी और दयावान अर्जुनने उसे क्षमा कर दिया। तब वह विद्याधर अर्जुनको नमस्कार करके विजर्यद्विगिरिकी दक्षिण श्रेणीमें चला गया।

चलते-चलते ये पाण्डव मेघदल नगर पहुँचे। वहाँके राजा सिंह-की रानी कनकमेखला थी और राजकुमारी कनकावती थी, जो महासुन्दर थी। उसी नगरके मेघ वरिगिरिकी अल्का पत्नी थी। उनके लक्ष्मीकान्ता पुत्री थी। किसी निमित्तज्ञानीके कहनेके अनुसार उन दोनों पुत्रियोंकी माताओंने उन्हें भीमसेनको देने का निश्चय किया। भीमसेन भेष बदलकर उनके यहाँ भिक्षा मांगने गया और भिक्षामें पुण्यके योगसे ये दोनों कन्याएँ मिलीं।

इसके पश्चात् ये सब पाण्डव भाई कौशल देश गये। कुछ समय वहाँ रहकर वे रामगिरि पर्वत गये, जहाँ उन्होंने राम लक्ष्मण द्वारा निर्मित जिन-चैत्यालयोंके दर्शन किये।

इस प्रकार स्वेच्छासे इन पाण्डवोंने छिपकर ग्यारह वर्ष व्यतीत किये। और किसीको इनके वारेमें पता न चला।

विराट नगरका राजा विराट और उसकी रानी सुदर्शना थी। ये पाण्डव वहाँ पहुँच गये। पाण्डव और द्रोपदी अपना भेष बदल कर विराट नगरमें रहने लगे। वहाँ उनका बड़ा सम्मान हुआ। युधिष्ठिर तो पण्डित वनकर रहने लगा। भीमसेन रसोइया वन गया। अर्जुन नृत्यकाली, नकुल सहदेव सलोहतरी यानी साइस और द्रोपदी मालिन वन कर वहाँ रहने लगी। ये बड़े विनोद और आनन्दसे वहाँ अपना समय विताने लगे।

इसी समय वहाँ नीचे लिखी यह घटना हो गयी।

चूलिका नगरीका राजा चूलिक था । उसकी रानीका नाम विकचा था, जो खिले कमलके समान मुख वाली और सा पुत्रोंकी माँ थी । उन पुत्रोंमें सबसे बड़े पुत्रका नाम कीचक था और वह दुराचारियोंमें सबसे बड़ा और रूप, यीवन, चतुराई, शूरवारता और धनके मदमें चूर रहता था । कीचककी वहन सुदर्शना राजा विराट की रानी थी । एक बार कीचक अपनी वहनसे मिलने विराट नगर आया । वहाँ उसने द्रोपदीको देखा और उसपर आसक्त हो गया । वह पापी यह नहीं जानता था, कि यह महासती है । अत्यन्त मानी कीचक भी द्रोपदीके रूपके सामने मानहीन-दीन समान प्रेमकी भीख मांगने लगा । उसने अनेक उपायो, लोभ-लालच और राग पूर्ण वचनोंसे फुसलानेका प्रयत्न किया । दूसरोंके द्वारा भी कीचकने द्रोपदीको प्रलोभन दिलवाये, पर उस महासतीके सामने वे सब वेकार । परन्तु कीचकके वार-वार आग्रह करने पर भी द्रोपदीने उसे इस दुस्साहसका मजा चखानेके लिए मिलनेका भूठा विश्वास दे दिया ।

द्रोपदीने कीचककी सब बात अपने जेठ भीमसेनसे कह दी । भीमसेन तो इतना सुनते ही आग-बगूला हो गया, उससे द्रोपदीके द्वारा कामातुर कीचकको सायकाल एकान्त स्थानमें मिलनेकी बात पक्की करा ली । फिर भीम शैलघ्री (द्रोपदी) का रूप बनाकर उस स्थान पर जा पहुँचा । भीम अत्यन्त बलवान् तो था ही, नियत समय पर मस्त हाथीके समान वह कामातुर कीचक मीतके मुँहमें जा पहुँचा । भीमसेनने तुरन्त अपनी दोनों भुजाओंसे उसे गलेसे लगा कर और गला दबोच कर पृथ्वी पर पटक मारा और उसकी छाती पर चढ़ बैठा । फिर मुक्कों पर मुक्के मार कर उस परदारान कामी-तथा कुशीलाभिलाषीको पापका फल चखा कर दया करके छोड़ दिया ।

यह दुर्गत और ठुकायी कीचकके लिए वरदान सिद्ध हुई ।

विप्यासक्ति जनक पापका फल प्रत्यक्ष देख-भोग कर उसके अतरंग की आँखे एक दम खुल गयी और उसे संसारसे अत्यन्त विरक्ति हो गयी। उसने रतिवर्द्धन मुनिसे मुनि-दीक्षा ले ली। अब क्या था? कीचक मुनि आत्म स्वरूप चितन, गास्त्राध्ययन और भाव शुद्धिके बोर तप कार्यमें तल्लीन हो गया। वह रत्नत्रयकी प्राप्तिका उद्यम करने लगा।

कीचकके मुनि वनने की वात उसके भाइयोको भी मालूम न हुई। जब उन्होने कीचकको न देखा, तो वे बहुत चिंतित हुए, घबराये। उन्होने कीचककी जगह-जगह खोज की, पर उन्हे उसका पता तक न मिला। फिर उन्होने एक जलती चिता देखी और किसीने उन्हे कह दिया, कि यह कीचककी ही चिता है। उन्होने सोचा कि इस मालिन (द्रोपदीके) कारण ही कीचक मारा गया है। वे द्रोपदीको जलानेको तैयार हो गये। उन पापियोने अग्नि जलाई और जब उन्होने द्रोपदीके भेपमें भीमको जलाना चाहा, तब उस महाबली भीमने उन सभी भाइयोको जलती चितामें डाल दिया और वे जलकर राख हो गये। उसने उन सब पापियोका नाम-निशान ऐसे मिटा दिया जैसे एक शेर अनेक हाथियोको नष्ट कर देता है।

मुनि-मार्गपर चलना बड़ा कठिन है। फिर देवता, यक्ष और परीक्षा प्रधानी गृहस्थ मुनिको हर समय परीक्षा करते रहते हैं। जब मुनि कीचक वनमें एकान्तमें ध्यानारूढ़ था, तब एक यक्षने उन्हे देखा। यक्षने सोचा कि यह तो द्रोपदी पर आसक्त था, देखूँ अब इसके मनमें कितनी दृढ़ता है। मुनि कीचकके चित्तकी परीक्षाके लिए वह यक्ष आधी रातके समय द्रोपदीका रूप बना कर मुनिके सामने जाकर कामोन्माद पूर्ण चेष्टाएँ करने लगा, जिससे उसका मन डिगे, वह उसके प्रति राग प्रकट करे। पर कीचक तो मानों आँखोसे अधा और कानोसे वहरा बना हुम्रा ध्यान मरन था, न उसने द्रोपदी रूपी यक्षकी काम चेष्टाएँ देखी और न राग भरी वाते सुनी। उसने तो

अपनी सभी इन्द्रियों को बशमे कर रखा था, उन्हे जीत लिया था और मनको तपाग्निमें शुद्ध कर लिया था। यक्षकी एक न चली। वह हार गया और मुनि कीचक इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया।

इसी समय मुनि कीचकको केवल ज्ञान पैदा हुआ, उन्हे त्रिकाल और त्रिलोककी सब वस्तुएँ—बाते हस्तकमलवत् ज्ञानमें उन्हे भलकर लगी। केवल ज्ञान उत्पन्न होते ही यक्षने असली रूपमें प्रकट होकर उन्हे नमस्कार किया और क्षमा याचना की।

फिर यक्षने मुनि कीचकसे द्रोपदीके प्रति इतना मोह पैदा होने का कारण पूछा क्योंकि बिना कारण ऐसा तीव्र मोह होना कठिन है।

तब कीचक मुनि यक्षसे अपने और द्रोपदीके कुछ पूर्व जन्मों का वृत्तान्त बताने लगे, जिससे इस मोहका कारण मालूम हो जाय।

कीचक मुनिने कहा, “हे यक्ष! एक समय मैं तरञ्जिणी और वेगवती नदियोंके सगम पर रहनेवाला महादुष्ट मलेच्छ था। मेरा नाम क्षुद्र था और मैं महापापी गरीब जीवोंका वैरी था। मेरे भावों में हर समय क्रूरता रहती थी। सौभाग्यसे मुझे एक साधुके दर्शन हो गये। और मेरे परिणाम शान्त हो गये। मैंने मरकर मनुष्य योनिमें जन्म लिया। मेरा नाम कुमार देव रखा गया। मेरे पिता-का नाम धनदेव और माताका नाम सुकुमारिका था। मेरी माँने भोजनमें विष मिलाकर एक सुब्रत मुनिको मार डाला। उसके फलस्वरूप वह पापिनी मर कर नर्कमें जन्मी और वहाँ दुख भोगती रही।

फिर वह पशु गतिमें पैदा हुई और फिर नर्क गई। मैंने यद्यपि मनुष्य योनि तो प्राप्त कर ली, पर मैंने जीवनमें सयम व्रत कुछ न पाले। मो मैंने भी कभी कही जन्म लिया, कभी कही। फिर मैंने सित नामक तपस्वी और उसकी मृगशृङ्खणी तपस्विनीके पुत्रके रूपमें जन्म लिया और मेरा नाम मधु रखा गया। मैं उनके आश्रम

मेरे हर प्रकारसे बढ़ा। फिर मैंने एक मुनि विजयदत्तको किसी भास्य-गाली आदमीके द्वारा भोजन दिये जाता देखा। उसके महात्म्यको देख कर मैंने मुनि दीक्षा ले ली। मुनि अवस्थामें तप करनेके फल-स्वरूप मैं स्वर्ग गया और फिर वहाँसे आकर कीचक राजा हुआ। पहले जो मेरी माता सुकुमारिका थी और मुनिको विप देनेके कारण नर्कमें गयी थी, वह यहाँ-वहाँ जन्म लेकर स्त्री हुई और उसका नाम अनुमति हुआ। अन्तमें कुछ तपके फलस्वरूप वह द्रोपदी हुई। इसी कारण मेरे मनमें उसके प्रति मोह पैदा हो गया। मैं उस पर आसक्त हो गया था।”

मुनि कीचकसे इतना वृत्तान्त सुनकर यक्ष आश्चर्यचित्तसा मुनिके मुहको देखने लगा। मुनि तो केवल ज्ञानी थे ही, वे यक्षके मनोभावको समझ कर कहते लगे, “हे यक्ष! देखो, जन्म-जन्ममें मनुष्योंके सम्बन्ध कैसे-कैसे बदलते रहते हैं। माता बहिन हो जाती है, पुत्री प्रिया स्त्री बन जाती है। इसलिए ससारी स्त्री-पुरुषोंको ससारकी इस विचित्रताको समझ कर इन्द्रिय-जनित-विषय-वासनाओं के सुखोंसे विरक्त होकर सदाचार और तपसे मोक्ष प्राप्तिका ही यत्न करना चाहिए।”

कीचक मुनिके उपदेशसे यक्षको बड़ी शान्ति मिली। वह अपनी देवियोंके साथ-साथ सभ्यदर्शनसे अलकृत हो गया। फिर वह यक्ष अपनी देवियों समेत मुनिको नमस्कार कर वहाँ से अंतर्हित हो गया, अदृश्य हो गया।

कीचक मुनि देवो, मनुष्यो और विद्याधरोंद्वारा पूजनीय हुआ। अतरंग तथा वाह्य तपके पश्चात् मोक्षको गया।

प्रद्युम्नकुमार की द्वारिका वापिसी

जब दुर्योधनने कीचकके सौंभाडयोके मारे जाने की बात सुनी, तो उसने सोचा कि विना पाण्डवोके यह काम और कोई नहीं कर सकता। उसने यह भी मालूम किया कि बारह वर्षमें कितने दिन शेष हैं। दुर्योधनने उन्हें विराट नगरमें प्रकट देखनेकी योजना बनाई। तब दुर्योधनआदि सौ भाई विराट नगरमें आये और वहाँ की गऊ-आदि पशुओंको चुरा ले गये। अब अज्ञातवासकी अवधि भी पूरी हो गई। तब पाण्डवोंने उनपर चढ़ाई की। कुछ लड़ाइके पश्चात् दुर्योधनने फिर एकता का प्रस्ताव किया। युधिष्ठिर तो निर्मल-कुर्द्ध तथा महाधीर था और किसी क्रा भी बुरा न ज्ञाहनेवाला था।

वे सेव हस्तिनोंपुर आगये। यद्यपि दुर्योधन आदि बाहर से उन्हे प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी भीतर-ही-भीतर वे उन्हें परास्त करनेके उपाय करने लगे। वे पहलेके समान सधिमें दोष निकालते लगे। इससे भीमसेन और अर्जुन आदि छोटे भाई उत्तेजित तथा क्षुब्ध हुए, पर युधिष्ठिर उन सबको शान्त करते रहे। युधिष्ठिर कौरवोंका भी अहित नहीं ज्ञाहते थे। इसलिए वे सब भाई माता कुन्ती और परिवार सहित दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

चलते-चलते रास्तेमें उन्होंने एक आश्रममें विदुर मुनिको देखा। सबने उसे प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

वहाँ से चल कर वे पाण्डव सपरिवार द्वारिका पहुँचे, जहाँ समुद्रविजयादिने उनका स्वागत किया। बहन-भानजोके आने से यादवोके यहाँ विशेष उत्साह और खुशी हो रही थी। पहले पाण्डवोने श्रीनेमिनाथके दर्जन किये। फिर वे अपने मामा समुद्रविजय, बल-देव, वसुदेव आदि से मिलने के बाद अन्त पुरमे रानियों नानी-भाभी आदि से मिले।

कृष्णने इन पाँचो भाइयोको समस्त भोगोपभोगकी सामग्रियोसे भरपूर पाँच सुन्दरभवन रहने को दिये। समुद्रविजयादि दस भाइयो-ने इनसे पाँच पुत्रियाँ विवाही, युधिष्ठिरसे लक्ष्मीमति, भीमसे सेखवती, अर्जुनसे सुभद्रा, नकुलसे विजया ओर सहदेवसे रति। नववधुओके साथ ये पाँचो पाण्डव बड़े सुख-चैनसे दिन बिताने लगे।”

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे पाण्डवोकी यहाँ तक की कथा सुनाने के पश्चात् रुक्मणी-कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकुमारकी बात कहने लगे।

प्रद्युम्नकुमार मेघकूट नगरमे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमालाके साथ रह रहा था। बड़े लाड-प्यारसे उसका पालन-पोषण हो रहा था। प्रद्युम्नकुमार सब गुणोको प्राप्त कर रहा था और कलाओमे निपुण हो रहा था। विद्याधरोकी विद्याएँ जैसे आकाश गामिनी विद्या आदि को भी प्रद्युम्नकुमारने सीख लिया।

युवावस्थामें पहुँचते-पहुँचते प्रद्युम्नकुमार रूप-लावण्यमें तो निखर ही गया, समस्त शस्त्र-विद्याओमें भी वह निपुण हो गया। प्रद्युम्न-कुमारके अनेक नाम पड़ गये, जैसे मन्मथ, मदन, काम, कामदेव, मनोभव और अनगमुन्दर आदि। शरीरसे रहित न होते हुए भी उसे अनंग नामसे भी पुकारा जाता था।

प्रद्युम्नकुमार बड़ा पराक्रमी और वीर था। सिंहरथ विद्याधर कालसम्वरके विरुद्ध हो गया और उसने कालसम्वरके पाँच सौ पुत्रोको

पराजित कर दिया । तब प्रद्युम्नकुमारने सिहरथको युद्धमें हराकर उसे कालसम्वरके सामने पेश किया । प्रद्युम्नके इस शौर्यसे राजा प्रसन्न हुआ और उसने समझा कि वह विजयर्द्धिकी दोनों श्रेणियोंका स्वामी बन गया है । उसने कुमारको विधि-विधान पूर्वक युवराज पदका महापट्ट वाँध दिया ।

इस घटनासे ओर प्रद्युम्नकुमारके युवराज बन जाने से राजा कालसम्वरके पाँच सौ पुत्र ईर्ष्यावश इसके नाशके उपाय सोचने लगे । उन्होंने छलसे प्रद्युम्नकुमारको ग्रासन, सेज, वस्त्रों, ताम्बूल, खाने और पीने के पदार्थोंके माध्यमसे मारना चाहा, पर निष्फल । उनकी एक न चली ।

अन्तमे वे मायाचारी सभी राजकुमार निष्कपट और महाविनयवान प्रद्युम्नकुमारको सिद्धायतनके गोपुरके पास ले गये । उन्होंने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, “जो इस द्वार पर चढ़ेगा, उसे यहाँ के निवासी देवसे बहुतसी विद्याएँ और मुकुट मिलेंगे ।” उस द्वारसे परे सोलह वनगुफाएँ और बाटिकाएँ आदि थी, जिनमे बड़े भयकर देव रहते थे । पर प्रद्युम्नकुमारने उन सबको प्रसन्न करके या जीत कर उनसे बहुतसे बहुमूल्य पदार्थ, खड़ग, छत्र, चमर, सिंहासन, नाग शैया, विद्यामयी वीणा, ध्वजा, कुण्डल, मुकुट, अमृतमाला, विद्यामयी हाथी, आभूषण और दिव्य शख आदि भेटमे प्राप्त किये । इसी समय उसे इन्द्रजालकी प्राप्ति भी हुई । दो विद्याधरोंकी कन्याएँ भी प्रद्युम्नकुमारको प्राप्त हुईं । जब इन सोलह स्थानोंसे प्रद्युम्नकुमार इतने बहुमूल्य पदार्थ, अस्त्र विद्याएँ और कन्याएँ लेकर निविधन और सकुशल बाहर आया, तब इन पाँचसौ कुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे इनकी प्राप्ति को प्रद्युम्नकुमारके पुण्यका माहात्म्य समझ कर उसकी प्रशंसा करने लगे और वापिस मेघकूट राजा कालसम्वरके पास आये ।

जिस संस्थें प्रद्युम्नकुमारने मेघकूट नगरमें प्रवेश किया उस संस्थें देवोपुनीति दिव्यं रथं, महा उज्ज्वलं वैल, धनुप, छंत्र तथा चमरे ग्रांडि के कारणे उसकी शोभा देखने योग्य थी। उसके साथ पौच्छ-सी राजकुमारे थे। नगरके सभी स्त्री पुरुष प्रद्युम्नकुमारको देखकर उस पर मोहित हो गये। कुमारने राजा कालसम्बंधको प्रणाम किया। राजाने उसे हर्षपूर्वक छातीसे लगा लिया। फिर वह माताके पास गया और उसे प्रणाम किया। उसने प्रद्युम्नकुमारको उसकी जननी कनकमालाके पास भेजा। राजकुमारंके रूप और छंविकों देखते ही रानीके भाव विगड़ने लगे। उसने अपनी माँको विनयसे प्रणाम किया। रानी कनकमालाने उसे छातीसे लगाया, गोदीमें लिया और उसके मस्तकको चूमा।

प्रद्युम्नकुमारका स्पर्श तथा चुम्बन करते ही कनकमालाके मनमें मोहका तीव्र उदय हो गया, दुर्विचारोने उसके मनमें उथल-पुथल मचा दी, उसने प्रद्युम्न कुमारके आलिंगनको प्राप्त करना चाहा। उसने मनमें सोचा कि उसकी प्राप्तिमें ही उसके रूप, लावण्य, सौभाग्य और चातुर्यकी सफलता है, वरना वे तृणके समान तुच्छ हैं। प्रद्युम्नकुमारके मनमें कनकमालाके ऐसे विचारो, सकल्प-विकल्पकी कल्पना भी न थी। उसने कनकमालाको प्रणाम किया, उसका आशीर्वाद लिया और अपने घर चला गया।

प्रद्युम्नकुमारको न पाकर विद्याधरी कनकमाला खाना-पीना तथा स्नान स्सकार सब भूल गई। दूसरे दिन माताके अस्वर्स्थ होनेका समाचार पाकर प्रद्युम्नकुमार कनकमालाको देखने गया, तो उसने देखा कि वह कमलिनीके पत्तोकी शय्या पर पड़ी अति व्याकुल हो रही है; उसका हाल-वेहाल है। उमका शरीर कुमलांया हुआ है और उसकी देहकी तपन से पुष्पो और कलियोकी बेज भी कुमलाई छुई है। प्रद्युम्नकुमारने उसके शरीरकी इस हालतका कारण पूछा।

जब प्रद्युम्नकुमारने उसके ग्रंथोंकी कुचेष्टाएँ और मनकी विपरीतता देखी, तब उसने ऐसे कर्मों और चेष्टाओंकी निन्दा की और वह उसे माती और पुत्रके सम्बन्धोंको बतलाने लगा।

कनकमालाने भी प्रद्युम्नकुमारको शुरूसे अब तक उसके, काल-सम्वर्त और अंपने पांसे आने को पूरा वृत्तान्त सुना था। आकाश-गामिनी विद्याके लोभकी बोतां भी उसे बताई।

रानीके मुखसे सारा हाल सुनने के पश्चात् प्रद्युम्नकुमार एक जिन मन्दिरमें सागरचन्द मुनिके पास गया और अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा। तब मुनिने कुमारकी बताया, “हे कुमार! पूर्व भवमें यह कनकमाला रानी चन्द्रभा राजा वीरसेनकी पत्नी थीं और तू प्रद्युम्नकुमार राजा मंधु अयोध्याका राजा था। गीरी और प्रजसि विद्याएँ भी रानी कनकमाला तुझे देगी।”

मुनिसे सब वृत्तान्त सुननेके पश्चात् प्रद्युम्नकुमार रानी कनक-मालाके पांसे गया। रानीने प्रेसन्न होकर उसे दोनों विद्याएँ लेनेको कहा, पर उसने उन्हें भिक्षामे मांगा। तब उस दुराचारिणी कनक-मालाने विद्याघरोंको भी दुष्प्राप्य ये दोनों विद्याएँ विधिपूर्वक प्रद्युम्न-कुमारको दें दी। जब प्रद्युम्नकुमारने हाथ पसार कर विद्याएँ ली, तब रानी बड़ी प्रेसन्न हुई और उसके मनके भाव कुछ और हों गये। तब फिर प्रद्युम्नकुमारने कनकमालाको समझाते हुए कहा, “आप मेरी प्राण दाता हैं, इसलिए माता हैं और विद्याओंके दर्जनसे मेरी गुह हैं।” इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया और अपने धंर चली गयीं।

रानी कनकमालाने सौचा कि प्रद्युम्नकुमारने उसे छला है, धोखा दिया है। उसने तीव्र क्रोधसे अपने नाखूनोंसे अपने स्तनो और छातीको नोच डाला, अपने को धार्यल कर लिया। अपने पति राजा

कालसम्बरके पास जाकर विलाप करते हुए कनकमालाने कहा, “देखो, यह प्रद्युम्न कुमारकी करतूत है। मैंने तो पहले दिन ही कहा था कि यह पराया पुत्र अपना कैसे होगा? पर आपने मेरी एक न मानी।”

- वह विवेकहीन राजा कालसम्बर अपनी स्त्रीके इस प्रपञ्च पर विश्वास करके प्रद्युम्नकुमारपर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने अपने पाँचसौ पुत्रोंको एकान्तमें बुलाकर उन्हें चाहे जैसे हो वैसे प्रद्युम्नकुमारको शीघ्र मार डालने का आदेश दिया।

तब पापी पिता की आज्ञा पाकर वे पाँचसौ राजकुमार बड़े प्रसन्न हुए, उनके मनकी इच्छा पूरी हुई। वे प्रद्युम्न कुमारको बड़े आदरसे कालाम्बू नामकी वापिका पर ले गये। उन्होंने उसे वापिका में जल क्रीड़ाके लिए प्रवेश करनेकी वार-बार प्रेरणा की। प्रजप्ति विद्याने उसे उसके षड्यत्र की बात बता दी। उनकी चाल को जानते ही प्रद्युम्नकुमारको बड़ा क्रोध आया और उसने उसी क्षण मायासे अपना मायामयी रूप बनाया। स्वयं तो अदृश्य होकर वापिकाके पास बैठ गया और मायामयी शरीरने वापिका में प्रवेश किया। तभी वे निर्दयी पाँच सौ राजकुमार वापिकामें उसके ऊपर कूद पड़े। प्रद्युम्नकुमारने उनमें से चारसौ निन्यानवे राजकुमारोंको ऊपर पैर और नीचे सिर करके कील दिया और वापिकाको शिलासे ढक दिया और पचचूड़ राजकुमारको पाँच चोटी वाला बनाकर राजाको समाचार देने भेज दिया।

राजा कालसम्बर अपने पुत्रसे उसके सभी भाइयोंके कीले जाने का समाचार सुनकर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ। वह अपनी समस्त सेनाको तैयार करके प्रद्युम्नकुमारको परास्त करने वहाँ वापिका-पर पहुँचा। पर प्रद्युम्नकुमारके पास तो कोई सेना न थी। इस-लिए उसने अपनी विद्याके प्रभावसे मायामयी सेना बनाकर राजाको

परास्त किया । राजाने राज-भवन में अनुकर कनकमालासे गौरी और प्रज्ञप्ति विद्याएँ मारी । पर रानीने राजासे कहा कि उसने तो वे विद्याएँ प्रद्युम्नकुमारको वाल्यावस्थामे ही दे दी थी । राजा कालसम्वर अपनी रानीकी मायापूर्ण दुश्चेष्टाको समझ गया और फिर जाकर प्रद्युम्नकुमारसे युद्ध करने लगा । पर इस बार तो प्रद्युम्नकुमारने उसे बाधकर एक शिला पर रख दिया ।

उसी समय नारद महाराज वहाँ आ पहुँचे । प्रद्युम्नकुमारने उसका बड़ा आदर-सम्मान किया । नारदने सब पूर्ववृत्तान्त उसको बताया । तब प्रद्युम्न कुमारने कालसम्वरके वधन काटे, उससे क्षमा मारी और कहा, “कि कनकमालाने जो कुछ किया था, वह पूर्व जन्मके कर्मके फलस्वरूप किया था । अत उसे क्षमा किया जाय ।” उसने उन सभी निरूपाय राजकुमारोंको भी वधन मुक्त कर दिया और भ्रातृ स्नेहसे उनसे भी क्षमा मारी ।

फिर प्रद्युम्नकुमारने अपने असली माता-पिता रुक्मणी और कृष्णसे मिलने की तीव्र इच्छा होनेसे राजा कालसम्वरसे द्वारिका जाने की आज्ञा मारी । प्रद्युम्नकुमार नारदके साथ विमानमे सवार होकर द्वारिकाके लिए चल पड़ा । वे हस्तिनापुरसे निकलकर जब आगे बढ़े, तब उसने नीचे एक सेना पश्चिमकी ओर जाते देखी । प्रद्युम्नकुमारने नारदसे उस सेनाके बारेमे पूछा ।

नारदने प्रद्युम्नकुमारको इस सेनाके जाने का यह वृत्तान्त बताया, “हस्तिनापुरका दुर्योधन कुरु वशका अलकार है । उसने प्रसन्न होकर कृष्णसे प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसके कन्या हुई और कृष्णकी दोनों पत्नियों, सत्यभामा और रुक्मणीके पुत्र हुए तो पहले पैदा होनेवाले लड़केसे वह अपनी पुत्रीको व्याह देगा । रुक्मणीके तुम प्रद्युम्नकुमार और सत्यभामाके भानु साथ-साथ पैदा हुए । परन्तु रुक्मणीके सेवकोने तुम्हारे जन्मका समाचार कृष्णको पहले दिया

इससे तुमें अग्रजे बड़े भाई हुए और वृक्षि सत्यभामाके सेवकोने उसके पुत्र जन्मको समीचारे बादमे कृष्णको दिया था, इससे वैह अनुज छोटा भाई हुआ। परन्तु धूमकेतुं नामका विद्याधर तुम्हे जन्मते हीं उठा ले गया और तुम्हारा कुछ पता न चला। तब यशस्वी दुर्योधनने अपनी कन्या उद्धिकुमारीको भानुसे व्याहनेका निश्चय किया। यह सेना उसी उद्धिकुमारीको भानुसे व्याहनेके लिए द्वरिका ले जा रहा है।

यह सुनकर्र प्रद्युम्नकुमारने नारदको तो आँकड़में ही विमानमें छोड़ा और स्वेच्छाविकराल भीलके वेषमे सेनाके सामने आ खड़ा हुआ। उसने कहा, “कृष्ण महाराजने मेरे लिए जों शुल्क-कर नियत किया है, वह मुझे देकर ही आगे बढ़े सकते हीं। इस पर कुछ सैनिक तो नाराज हुए परे कुछने कहा कि इसे कुछ देकर विदाकरो।” तब सैनिकोने भीलरूपी प्रद्युम्नसे पूछा, “वत्ता तुझे क्यों चाहिए?” इसपर प्रद्युम्नने सेनाकी सारवस्तु—मूल्यवान वस्तु मागी। तब उन्होने कहा कि सबसे सारवस्तु तो राजकुमारी उद्धिकुमारी है। पव वे सैनिक राजकुमारीको एक भीलको कैसे देते? उन्हीने कहा कि यह तो कृष्णके पुत्रके लिए है। प्रद्युम्न कुमारने कहा कि वैह कृष्णका ही पुत्र है।

इस पर एक सैनिकने कहा, “वे सिर-पैरकी वाते करनेवाले इस भीलकी घृष्टता तो देखो। यह पागल है। इसे धेर लो।” तब एक द्वासरे सैनिकने घनुपकी नोक दिखा कर उसे डराया और सेना आगे बढ़ने को तैयार हुई। तभी प्रद्युम्नने मायामयी भीलोकी सेना बैठाकर दुर्योधनकी सेनाको परास्त कर दिया और राजकुमारी उद्धिकुमारीकी ऊपर उठा कर विमानमें नारदके पास विठाया। कन्या उसे मैमय बड़ी भयभीत थी और निस्सहाय-सी लग रही थी। तेवं प्रद्युम्नकुमारने उसे अपना कामदेवके समान असली रूप दिखाया, जिसे देवकर राजकुमारी उस पर मोहित हो गई और

निर्भय होकर वहाँ बैठ गयीं। तब नारदने उसे संत्र वांत बताते हुए कहा कि वैह वार्त्तवमें कृष्णके इस वडें पुनर प्रद्युम्न कुमारकी ही मगेतर है। तब तो उद्धिकुमारी और भी प्रसन्न हुई और ओरामसे बैठ गयी।

महाशीघ्रगामी विमानमे नारद, प्रद्युम्नकुमार, उद्धिकुमारी द्वारिकापुरी पहुँचे। प्रद्युम्नकुमार द्वारिकापुरीके सौन्दर्य, द्वार और परकोटे आदि को देख कर वडां चकित हुआ। नगरके बोहरे भानुकुमारे तरह-तरहके घोडोंपर छुड़सवारीको अभ्यास कर रहे थे। प्रद्युम्नकुमारने घोडोंके बूढ़े व्यापोरीको भेपं बनाया और एक महांमनोहरे मायामय घोड़ा बनाकर भानुकुमारके सामने जा खड़ा हुआ। उसने भानु कुमारसे कहा, “यह घोड़ा मैं राजकुमार भानु कुमारके लिए लाया हूँ।” घोडोंको देखते ही भानुकुमार उस पर सवार हो गया और लगा उसे दौड़ाने। पर घोड़ा तो मायामय था। अन्त मे वह भानुकुमारको तग करके उस बृद्ध व्यापोरीके पास जा पहुँचा। जब भानुकुमार घोडेसे नीचे उतर आया, तब उस बृद्ध ने अद्वृहास कर उसकी छुडसवारीकी चतुराईका मजाक उड़ाया। उसने यह भी कहा, “यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया हूँ फिर भी यदि तुम मुझे घोडे पर सवार कर दो तो मैं भी अपना कुछ कौशल दिखा दूँ।” फिर भानुकुमार और दूसरे लोगोंने उस बूढेको घोडेपर सवार करने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह अपनी मायासे इतना भारी हो गया, कि वे बहुत तग आ गये, पर उसे घोडे पर सवार न करा सके। अन्तमे वह बूढ़ा छलाग मार कर घोडेपर चढ़ बैठा और अपने करतोव दिखाता हुआ वहाँ से चला गया। इससे भानु कुमार बड़ा खिसयाना हुआ।

फिर प्रद्युम्नकुमारने मायामय बन्दरों और घोडोंसे सत्यभामा के वाग-वगीचे उजाड़ दिये और यहाँ तक कि उसकी वापिका भी सुखा दी। जब प्रद्युम्नकुमारने श्री कृष्णको नगरके द्वारपर आते

देखा तो उसने मायामई डास मच्छरोसे उसके लिए भी आगे बढ़ना कठिन कर दिया । फिर प्रद्युम्नकुमार गधे-और मेढ़ेके रथपर सवार होकर नगरमे खूब क्रीड़ाएँ करता हुआ घूमा और वहाँ के स्त्री पुरुषोको खूब मोहित किया । इतना ही नहीं, उसने बाबा वसु-देवसे मेढ़ोके युद्धका भी खेल खेला ।

उसके पश्चात् प्रद्युम्न कुमार सत्यभामाके महलमे पहुँचा । उस समय वहाँ ब्रह्मभोज हो रहा था और यह भट एक ब्राह्मणका रूप वना कर पत्तिमे सबसे आगे आसनपर जा बैठा । एक अपरिचित ब्राह्मणको अपने से आगे बैठा देखकर वे सभी ब्राह्मण बड़े कृपित हुए । पर उसने उन्हे भी खूब तग किया और बने हुए सारे भोजन को उसने खा लिया । जब और खाना मांगने पर उसे भोजन न मिला, तो उसने सत्यभामाको कजूस कहकर वही वमन करके उसके सारे महलको मलिन कर दिया ।

वहाँ से प्रद्युम्नकुमार एक धुल्लक—त्यागी का भेप बदलकर माता रुक्मणीके महलमे गया और वहाँ रुक्मणीके द्वारा दिये सभी लड्डुओंको खा गया । इसी समय सत्यभामाका नाई रुक्मणीके केश मूँडने आया, पर प्रद्युम्नकुमारने सब बात जानकर उस नाई-का खूब तिरस्कार किया ।

सत्यभामाने नाईकी बात सुन कर बलदेवसे शिकायत की । बलदेव रुक्मणीके महलके द्वार पर पहुँचा, तो प्रद्युम्नकुमार एक ब्राह्मणका रूप वनाकर द्वारपर पांव फैलाकर पड़ गया । उसने कहा कि आज उसने सत्यभामाके यहाँ भोजमे खूब खाना खा लिया है । इस पर बलदेवने उसकी टांगे पकड़ कर हटानी चाही, पर उसकी टांगें इतनी लम्बी और भारी बन गयी कि बलदेव उन्हे टस-से-मस न कर सका । तब बलदेवने स्याल किया कि यह तो कोई दैवी माया है । इस प्रकार प्रद्युम्नकुमारने अपनी अनेक विद्याओं और क्रीड़ाओंसे सभी-को विस्मित और हर्षित किया ।

‘इसी समय रुक्मणीने वे सभी चिह्न देखे, जो नारदने प्रद्युम्न-कुमारके आने पर हीने बताये थे।’ उसके स्तन रूपी कलशोंसे दूध भरने लगा। तब अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर उसने सोचा कि कहीं सोलह वर्ष पूरे होने पर उसका बेटा तो नहीं आ गया है। प्रद्युम्न-कुमारने भी अपने अंसली रूपमें माताके सामने प्रकट होकर नमस्कार किया। पुत्रको साक्षात् सामने देखते ही रुक्मणीके आनन्द और हर्ष-का पार न रहा, उसके नेत्र हृषके आमुखोंसे भूर आये और पुत्रा लिंगनसे उसका चिरसचितं दुख आसुओंके द्वारा बह निकला। चिर-प्रतीक्षित पुत्र-दर्शनसे रुक्मणीका सारा शरीर रोमाचित हो गया। परस्पर स्नेह प्रदर्शन और कुशल समाचार पूछने के बाद माता रुक्मणीने कहा, ‘‘हे पुत्र ! धन्य है वह कनकमाला जिसने तेरी सुखदायक बाल क्रीड़ाओंको देखकर पुत्र जन्मके फलका आनन्द उठाया, मैं तो उनसे बच्चित रह गई, उन्हे न देख सकी।

रुक्मणीके इतना कहते ही प्रद्युम्नकुमारने मातासे कहा, ‘‘हे माता ! ले, मैं तुम्हे भी वे बाल क्रीड़ाएँ अभी दिखाता हूँ।’’ इतना कहते ही प्रद्युम्न तत्काल जन्मा बालक बनकर एक दिन का हो गया। फिर तरह-तरहके विनोद दिखाये। उसने अपना अँगूठा चूसना शुरू किया। फिर वह पेटके बल चलने लगा और तदनन्तर माकी अँगुली पकड़ कर आगनमे चलने लगा। फिर मिट्टीमें लेट कर माताके गलेसे लिपट गया। कभी वह तुतला कर बोलता, कभी हसता और कभी विलख-विलख कर रोता। उसने मासे कहा, ‘‘अब जिस आयुका तुम मुझे देखना चाहो, उसी आयुका बन जाऊँ।’’ फिर वह सोलह वर्षका बन कर माताको नमस्कार करके कहने लगा, ‘‘लो अब मैं तुम्हे आकाशकी सैर भी कराता हूँ।’’

इतना कह कर प्रद्युम्नकुमार रुक्मणीको अपनी दोनों भुजाओं-में ऊपर उठा कर आकाशमें खड़ा हो कर कहने लगा, ‘‘सब यादव राजा सुन ले, मैं आपके देखते-देखते कृष्णकी प्रिया रुक्मणीको हर

कर ले जा रहा हूँ । यदि आपमे शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर ले ।” अब उसने रणका शख व्रजाया और झटसे रुक्मणीको नारद और उदधिकुमारीके पास विठा दिया । वह स्वयं युद्ध के लिए आकाशमे आ खड़ा हुआ ।

रण भेरी स्वरूप शखनाद सुनते ही अस्त्र-शस्त्र विद्याओमे निपुण यादव राजा चतुरग सेना लेकर युद्धके लिए नगरीसे बाहर निकले । प्रद्युम्नकुमारजे अपने विद्यावलसे समस्त यादव सेनाको मोहित कर दिया । और फिर कृष्णसे बहुत द्वेर तक युद्ध करता रहा । जब प्रद्युम्नकुमारने कृष्णके सभी बार निष्फल कर दिये, तब दोनो वीर अपनी दृढ़ और लम्बी भुजाओसे युद्धके लिए तैयार हुए । तभी रुक्मणीके कहनेसे नारदने विमानसे नीचे, आकर कृष्ण और प्रद्युम्नकुमारको उनके पिता-पुत्रके सम्बन्ध बताये । तब प्रद्युम्न कुमारने पिताको प्रणाम किया और कृष्णने उसे सस्तेह छातीसे लगाया । कृष्णकी आखोसे आनन्दके आँसू बह निकले । कृष्णने पुत्रको आशीर्वाद दिया ।

तब प्रद्युम्नकुमारने अपने विद्यावलसे मूर्छित, सेनाको असली दशामे खड़ा किया । अब सभी यादव बड़े खुश हुए और सबने द्वारिका मे आनन्दपूर्वक प्रवेश किया ।

रुक्मणी और जामवती रानीने बड़ा उत्सव मनाया । फिर प्रद्युम्नकुमारका उदधिकुमारीसे विधिवत् विवाह हुआ, जिसे सम्पन्न करने के लिए मेघकूटपुरसे विद्याधर कालसम्वर और रानी कनकमाला को बुलाया गया । प्रद्युम्नकुमारके कहनेसे कृष्ण और रुक्मणीने कालसम्वर और कनकमालासे ही यह कह कर विवाहके समस्त नेग कराये कि वास्तव मे इस प्रद्युम्नके माता-पिता वे ही है । और प्रद्युम्न उनका ही पुत्र है । विवाह सम्पन्न होने पर प्रद्युम्नकुमार उदधिकुमारी आदि रानियोके साथ आनन्दपूर्वक जीवन विताने लगा ।

यदुकुल के कुमार

श्रीगौतम गणधरने राजा श्रेणिकको श्री कृष्णके दो पुत्रों सबुकुमार और सुभानुकुमारकी उत्पत्ति का यह वृत्तान्त सुनाया । राजा सधुका छोटा भाई कैटभ सोलहवे स्वर्गमे देव था । उसने केवलीसे पूछा, “हे भगवन् मैं कहाँ पैदा हुगा ?” तब केवलीने उसे ज्ञान्या कि वह कृष्णके यहाँ पैदा होगा और उनका बड़ा भाई भी उन्ही के यहाँ जन्मा है । इतना सुनकर वह देव कृष्णके पास आया और उन्हे एक महा मनोहर हार देकर कहा कि आप जिस रानीको यह हस्त देगे मैं उसी के यहाँ पुत्र जन्मूँगा । राजा कृष्णने वह हार रानी सत्यभामाको देना चाहा ।

सयोग से यह बात रुक्मणीको मालूम हो गयी, तो उसने चाहा कि यह पुत्र जावृतीके हो । उसने प्रद्युम्नकुमारको अपनी इच्छा बतलाई । तब प्रद्युम्नकुमारने अपनी मायासे जावृतीका रूप सत्यभामा जैसा बनाया और वह उसे कृष्णके पाससे देवके हारको लेने मे सफल हो गयी । इस सोलहवे स्वर्गका वह देव जावृतीके गर्भमे आया । उसी समय सत्यभामा भी कृष्णके पास आई । तभी कोई दूसरा देव उसके गर्भमे आया । इस प्रकार वे दोनो रानियाँ गर्भवती हुईं ।

कुछ समय पश्चात् जावृतीके सबुकुमार और सत्यभामाके सुभानुकुमार पुत्र हुए । इनमे सबुकुमार बड़ा पराक्रमी हुआ और

तेवोंके गमान कीउण नहीं था । यह नभी गेनोंमें सुभानुकुमार को जीन केता था । कृष्णकी दृग्मी गणियोंमें भी लेनक पुत्र थए ।

स्वप्नगानिने प्रयग्नकुमारके लिए अपने भाई सुभानुकुमारी पुत्री चुनी थी । परं प्रयग्नकुमारने वहनगों न जानेके बारम्बास अपनी पुत्री न दी । तब माताकी ग्राजारी प्रयग्नकुमार और सुभानुकुमार भीलका भेष बढ़ा कर वहाँ रे उन दृशीहो न नाये । स्वप्नकुमारने उनमें अपनी बेटीको छुड़ाने का प्रयत्न किया, परं उन्होंने उसे हरा दिया । प्रनुम्न सुमारने उन राजकुमारीमें विवाह किया ।

सबुकुमारने सुभानुकुमारको उन कीजानें जीन कर एवं धन भित्ताग्नियोंमें बाट दिया । किरं उसने सुभानुकुमारको पदियों, खेटों, शुगव परीक्षा, राग परीक्षा और अच्छ परीक्षा आदि में हाराया । उसमें कृष्णकी भास्ये सबुकुमारकी जीन को बड़ी प्रथगा होने लगी ।

सबुकुमारके बल और पराक्रम आदि ने प्रभन्न होकर हृष्णने उसे कोई वर मागने कहा । तब उसने एक महीनेका राज मागा । कृष्णने उसे एक महीने का राज दे दिया । राज पाते ही सबुकुमार अन्याय मार्गपर चलने लगा । तब कृष्णने उसे पकड़ कर नगरसे बाहर निकाल दिया । पुत्र मोह को नज़ कर्तव्यमें रुकावट न बनने दिया ।

प्रद्युम्नकुमारकी भास्ये सबुकुमारने कन्याका भेष बना कर बनमें रहने लगा । जब सत्यभामाने उस कन्याको बनमें देखा, वह रूपको देखकर बड़ी चकित हुई । पूछने पर कन्याने सत्यभामाको बताया कि वह विद्याधरकी पुत्री है । वह उस कन्याको रथमें विठा कर नगरमें ले आयी और अपने पुत्र सुभानुकुमारसे उसका विवाह कर दिया, पर देखते-देखते ही सबुकुमारने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सबको विस्मित कर दिया । इधर नगरमें पहले ही से बहुत राजाओंकी अनेक राजकुमारियाँ सुभानुकुमारसे विवाह

करने आयी हुई थी। सबुकुमारने जबरदस्ती उन सैकड़ों राजकुमा-रियोको एक ही रातमें विवाह लिया।

एक दिन सबुकुमार अपने पितामह और कृष्णके पिता वसुदेवके पास जाकर प्रणाम करके उनसे विनोद करने लगा। उसने कहा, ‘‘हे पूज्य आपने बहुत वर्ष तक पृथ्वीपर भ्रमण करके बहुत क्लेश-कष्ट उठाये, फिर कहीं विद्याधरोकी रूपवती और मनोहर कन्याएं प्राप्त की। पर मुझे देखो, मैंने बिना किसी कष्ट-परिश्रमके घर बैठे ही एक रातमें सौ कन्याओंसे विवाह कर लिया। इसलिए आपमें और मुझमें बड़ा अन्तर है।’’

पितामह वसुदेव सबुकुमारकी बात सुन कर मुस्कराते हुए उससे कहने लगे, ‘‘हे बच्चे! छोटा मुह बड़ी बात न कर। मुझमें और तुझमें बड़ा अन्तर है।’’ तू तो बाणके समान दूसरो (प्रद्युम्न-कुमार) से परिचालित होता है। और फिर तेरा तमाम चलना-फिरना घर तक ही तो सीमित है। बस! जहाँ मैं विद्याधरोके विजयर्द्धिगिरि रूपी सागरके मगरमच्छके समान हूँ, वहाँ तू केवल द्वारिका नगरी रूपी कुएँका मेढ़क मात्र है। यह कितनी विचित्र बात है, कि तू फिर भी अपनेको मुझसे बड़ा समझता है। मैंने विद्याधरोके नगरोमें धूम-धूम कर बड़े अनुभव प्राप्त किये हैं, बहुत कुछ देखा सुना है। ये सब बातें तुम्हें तो क्या दूसरोके लिए भी दुर्लभ हैं। ये अनुभव दूसरो के लिए बड़े मनोहर और शिक्षाप्रद हैं।’’

पितामह वसुदेवसे यह सुन कर सबुकुमारने उनसे देखे हुए चरित्र, किये हुए काम और अनुभव सुनने की इच्छा प्रकट की। तब वसुदेवके आदेशसे उसने सभी भाइयों और यादवोंको वहाँ एकत्रित किया, जिससे वे सभी उनकी बातें सुनकर लाभ उठा सके। वसुदेवने बहुत ही सक्षेपमें हरिवशकी उत्पत्ति यदुवंशका विकास राजा अधकवृष्टिके दस पुत्रोंका वर्णन बताया, जिनमें सबसे बड़ा

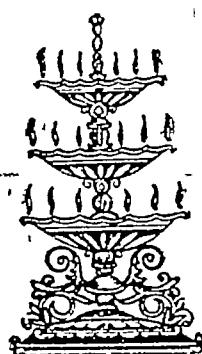
समुद्रविजय और सबसे छोटा स्वयं वसुदेव था। सौर्यपुरके लोगोंकी गिकायत पर किस प्रकार वह नगरसे निकाल दिया गया और फिर सीवर्प वाद किस परिस्थितिमें समुद्रविजय आदि भाइयोंसे उसका मिलाप हुआ—ये सब बातें वसुदेवने बताईं। इसके पश्चात् उसने बलदेव, कृष्ण, नेमिनाथ और सबुकुमारके जन्मकी बातें बताईं, जिन्हे सुन कर सभी चकित हुए। वसुदेवकी बातें सुन कर सभी विद्याधरियोंको अपने-अपने पूर्व चरित्रोंकी याद ताजा हो गयी। वहाँ उपस्थित राजा रानियाँ, यदुवंशी और पाण्डव सभी वसुदेवके ग्रनुभव, आप बीती और अपने बगकी बातें सुन कर बड़े हर्षित हुए और सबने वसुदेवके शौर्य, चतुराई और विजयोंकी प्रशंसा की।

द्वारिकाके गली-कूचों और घर-घरमें वसुदेवकी अनेक आश्चर्य युक्त पुरानी कहानियाँ बन गयी, हर एक की जवान पर वही थी।

इसके पश्चात् राजा श्रेणिकने नमस्कार करके गौतमगणधरसे यादवोंके कुमारोंका वर्णन पूछा।

राजा उग्रसेनके पुत्र धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर, सागर और चन्द्र थे। राजा उग्रसेनके चाचा राजा शन्तनके महासेन, शिवि, स्वस्थ, विपद और अनन्तमित्र पुत्र थे। समुद्रविजयके महासत्य, हठनेम, अनिष्टनेमि, रथनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफलगु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवनन्द, चित्रक और गौतम आदि अनेक पुत्र हुए। समुद्रविजयके दूसरे भाइयोंके नाम भी गौतम गणधरने राजा श्रेणिकों बताये। दसवें भाई वसुदेवके बहुत पुत्र थे, जो सभी महा बलवान् थे। रानी विजयसेनासे अक्रूर और क्रूर, श्यामासे दो पुत्र ज्वलन और दूसरा अनिलवेग, गधवंसेनासे तीन पुत्र वायुवेग, अमितगति और माहेन्द्रगिर हुए। रानी पद्मावतीसे वसुदेवके तीन पुत्र दाढ़, वृद्धारक और दास्तक हुए। रानी नीलयशासे उसके दो बेटे सिंह और मनगज हुए। रानी मोमथीने नारद और महेदेव

दो पुत्र हुए। इसी प्रकार वसुदेवकी रानी मित्रश्री और पद्मावतीके क्रमशः तीन और बेटे हुए और रानियोंके अनेक पुत्र हुए। राजा वसुदेवकी रानी देवकीके गर्भसे कृष्ण आदि पुत्र हुए। और बलभद्रके भी बहुत से पुत्र हुए। राजा श्री कृष्णकी आठों पटरानियों और दूसरी रानियोंसे अनेक पुत्र हुए, जिनमें भानु, सुभानु, प्रद्युम्नकुमार और सबुकुमार आदि बहुत से पुत्र हुए, जो सभी शस्त्र तथा शास्त्र विद्याके अभ्यासी और युद्धमें प्रवीण थे। इनके पुत्र, पौत्र और भानजे आदि सभी बड़े पराक्रमी और क्रमदेवके समान सुन्दर थे। ये सभी राजकुमार धर्म मार्गपर चलने वाले, चरित्रवान् और उदार थे। इन सभी राजकुमारोंसे द्वारिकाकी शौभा अवर्गनीय वन गयी थी।



दुर्गा उत्पत्ति

नन्द और यगोदाकी जो पुत्री कृष्णके बदले लाकर देवकीको दो गयी थी और उसका पालन-पोषण वसुदेव और देवकीने किया था, कसने उसकी नाक दबाकर चपटी कर दी थी। वह अब बड़ी होकर नवयुवती हो गयी। वह रूप सौन्दर्यमें महाश्रेष्ठ, चन्द्रमा लमान निर्मलयगको रखनेवाली, महा प्रचुर यौवन तथा महामनोहर गुणोंके आभूपणोंसे सम्पन्न थी। उसके चरणकमल कोमल, सुन्दर श्रङ्गुलियाँ, वर्तुलाकार रोमहीन जघाएँ, सिरसके पुष्प समान मृदु दोनों मुज नताएँ, मनोज्ज कधे, कमलकी प्रभा सदृश हाथ, अति रमणीक पाटलके पल्लवोंके समान अरुण हथेलियाँ, कण्डीरके पुष्प समान आरक्त नख रूपी आँखे, कमल दल समान अरुण होठ, वक्र भैंहे और मनोहर ललाट था। उसकी आँखे कमल दल समान विस्तीर्ण करण पर्यन्त और उज्ज्वलता, व्यामता और लाली को लिए हुई थी। उसके मुखकी उपमा न तो चन्द्रमासे और न कमलसे दी जा सकती थी। बात सधेष्ठमें यह थी कि वह रूप सौन्दर्य की प्रतिमा थी।

किसी दिन बलदेवके पुत्रोंने अपने अल्हड स्वभाव से उस नटकोंको 'चपटी नाकवाली' कहकर चिढ़ा दिया। उस लड़कीने अपना मुख कमल देखा। इतने मुन्दर शरीरवाली तड़की अपनी चपटी नाकको देखकर लज्जित हो गयी और समारम्भ में विरक्त हो गयी।

एक दिन द्वारिकासे सुन्नता आर्यिका पधारी । वह लड़की वसु-देव और देवकी आदि गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर आर्यिकाके दर्जनके लिए गयी । नमस्कार करके उसने आर्यिकाकी शरण ली । उस आर्यिकाको साथ लेकर वह व्रतधर मुनिके पास गयी । और उसके पश्चात् वह उस अवधिज्ञानी आर्यिकासे अपने पूर्व जन्मोंके हाल पूछने लगी । मुनिने उससे कहा, ‘‘हे पुत्री ! तू पूर्व जन्ममे सोरठ देशमे मूढबुद्धि पुरुष थी । तू अति रूपवान, धनवान और निरकुश थी । न किसी को भय, न किसी का डर । तू बड़ी मदान्ध थी । तेरे हृदय और आँखोंका ज्ञान महा उन्मत्त थे । एक दिन तू एक भरी गाड़ी लिए बनमे जा रही थी । रास्तेमे एक महा मुनि मृतशय्यापर अत्यन्त कठोर तप कर रहे थे । विना देखे-भाले तूने अपनी गाड़ी उस मुनिके पाससे ले जाने लगी । परिणाम यह हुआ कि उस मुनिकी नासिका गाड़ीकी रगड़से मसली गयी । भला यह हुआ कि गाड़ीसे मुनिका प्राणान्त न हुआ । वह मुनि तो महावीर था । अत उसके मनमे कुछ भी खेद न हुआ । विना जाने भी किसी जीवनका घात हो जाये तो जीव पापसे नर्कमे जाता है । फिर मुनिके घातका तो क्या कहना ? जो किसीके अवयव भग करता है, उसके अवयव अनेक बार भग हो जाते हैं । जो जैसो करता है वैसा भोगता है । जो दुष्ट प्रवल होकर निर्वलको पीड़ा देता है, जीवोंको दुख देता है, वह भव-भवमे दुखी होता है । तूने विना जाने प्रमादसे गाड़ी चलाई । तूने अपने किये पर पश्चात्ताप किया और मुनिसे क्षमा कराई और पाप-का प्रायश्चित्त किया, इसलिए नर्क न गयी और मनुष्यकी योनि पाई । परन्तु पापके फलस्वरूप स्त्री योनि पाई और तेरी नाक चपटी हो गयी ।’’

आर्यिका सुन्नताके ये वचन सुनकर उस कन्याने उसे नमस्कार किया और उसीसे व्रत लिये । उसने समस्त कुदुम्बका मोह त्याग कर घरको त्याग दिया । समस्त वस्त्राभूषण तज कर तन ढकनेको केवल एक सफेद साड़ी रखी । उसने अपने हाथोंसे सिरके समस्त

केगोका लोच ऐसे किया, उन्हे ऐसे उखाड़ फेका मानो उसने अपने समस्त पापोको उखाड़ फेका हो । अब वह कन्या साध्वी बन कर ऐसी जोभायमान हुई, जैसे वह अंगुभ की नाशक हो ।

जो नवयौवनमें तप धारण करती है, वास्तवमें वह धन्य है । उसको देखकर स्त्री-पुरुष यह कहने लगे, कि यह रति है या धृति है या सरस्वती है । अपने गास्त्राध्ययनके कारण सब साधियोंमें उसकी प्रगति होने लगी ।

एक बार यह साध्वी दूसरी आर्यिकाओंके साथ विन्ध्याचल पर्वतके बनमें गयी । रातके समय तीक्ष्ण गस्त्रधारी और कठोरचित भीलोंने इस साध्वीको देखा । यह योगासनसे बनमें बैठी थी । भीलोंने ख्याल किया, कि यह तो कोई बन देवी है । इसलिए उन्होंने उससे वरदान मागा । उन्होंने प्रार्थना की, “हे भगवती ! यदि आज की चढ़ाईमें हमें धन मिलेगा, तो हम तेरी सेवा करेंगे । सयोगसे उस रात उन्हे लूटमें खूब धन मिला । उन मूर्खोंने समझा, कि उन्हे देवीके वरदानसे ही यह धन मिला है । फिर वे भील वहाँ बनमें आये, पर ध्यानमग्न उस साध्वीको न देख सके ।

इसके पञ्चांत वहाँ बनमें घेर आया और उसने उस साध्वीको खा लिया, पर समाधि मरणके कारण वह साध्वी स्वर्गमें गयी ।

शेरने उस साध्वीका समस्त शरीर तो खा लिया था, पर उसकी तीन अङ्गुलियाँ बच गयी थी । उसके शरीरके रूधिर से धरती लान हो गयी । पृथ्वी पर खूनके निशान देखकर उन भीलोंने सोचा कि यह वरदानी देवी रुधिर प्रिया है । उन्होंने विचारा कि उसकी खूनमें रुचि है, खून उसे भाता है, इसलिए उन दुष्ट भीलोंने उसकी तीन अङ्गुलियोंका त्रिशूल स्थापित किया और इसे विन्ध्यवासनी देवी जाना । जगली भैंसोंको मार कर वे उस म्यलकी पूजा करने लगे । वे पापी भील महाहिंसक पशुओंकी बलि देने लगे और रुधिर तथा मास उनपर चढ़ाने लगे । इससे वह सुन्दर बन इन वस्तुओंके कारण अपवित्र

और दुर्गन्धमयी बन गया । वहाँ मक्खियाँ भिनभिनाने लगी और देखनेमे वह स्थान विष समान बन गया ।

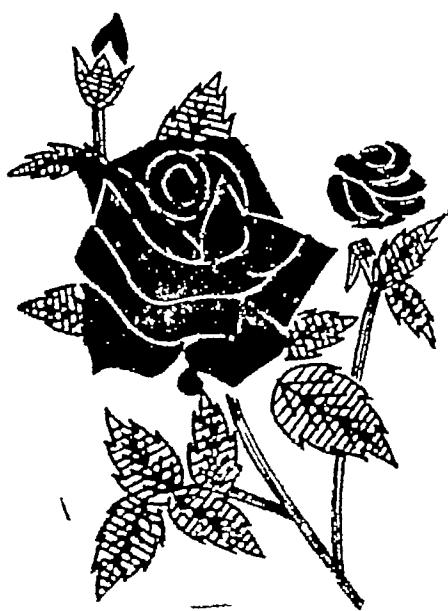
वह साध्वी तो स्वर्ग चली गयी पर उन भीलोने नक्क ले जाने-वाले पशुवलिका मार्ग अपनाया । यदि ऐसे आदमी कुगतिको न जायेंगे, तो और कौन जायेगा ?

संसारमे गीदड प्रवृत्ति या भेडाधसान अधिक है । यदि एक गीदड या भेड कुएमे गिर जाये, तो दूसरे गीदड या भेड उसका पीछा करके कुएमे गिर जाती है । वैसे ही जब कुछ आदमी कुदेवोकी पूजा करते हैं, तो उनकी देखा-देखी अनेक मूढ आदमी कुदेवोकी सेवा-पूजा करने लगते हैं । इतना ही नहीं, भीलोसे क्षत्रियोतक मे पशु-वलि पहुँच गयी । क्षत्रियोका कुल तो दीनवन्धु दीनानाथ कहलाता है, पर उनमे से वहुतोके यहाँ यह वलि प्रथा है । मूढ लोगोकी मूढता-की हद देखिये । किसी तरहसे किसीके पूर्वांजित पुण्यसे कोई काम सिद्ध हो जाय, तो मूढ आदमी ऐसा मानने लगते हैं, कि इस देवता-की पूजासे यह काम सिद्ध हुआ है । इसलिए वे उसकी आराधना करते हैं । उनकी देखा-देखी दूसरे आदमो भी पूजा-आराधना करते हैं । पापी जीवोके हृदयमे करुणा कहाँ होती है ? वे अपना रुधिर क्यों नहीं चढ़ाते ? जो पशु सिरकी वलि चढ़ाते हैं, वे अपने सिरकी वलि क्यों नहीं चढ़ाते । देवता तो मनसाहारी होते हैं, मासाहारी नहीं देवताओके मनमे भूख लगती है और मनमे ही वह भूख विलीन हो जाती है । ऐसे देवता मुझे वर देंगे, यह अभिलाषा करना जगतमे बड़ी भूल है ।

हिंसा करना, करवाना और हिंसाकी अनुमोदना करना, ये तीनो काम अशुभ हैं, इनसे पापका आगमन होता है, जिससे दुर्गति-का वन्ध होता है । प्राणी कुगतिमे जाता है । हिंसा सब पापोका मूल है, कुगतिका कारण है । परन्तु वीतराग द्वारा कहा हुआ दया धर्म ही कल्याणकारी है, शुभ कर्मोंके लानेवाला है । जब मन शुद्ध हो,

वचन सत्य हो और काया कुचेष्टासे रहित हो, तभी पुण्य होता है। इसके विपरीत होनेसे अशुभ होता है, पाप बन्ध होता है और कुगति दिलानेवाला होता है।

देव तो परब्रह्म परमात्मा सिद्ध भगवान् ही है अथवा निज आत्मा ही है, अन्य नहीं। सिद्धोका जो अखण्ड अविनाशी सुख है, उसका जहाँ लाभ या प्राप्ति होती है, वही महा मनोहर परम धाम है और वहाँ सब पदार्थ ज्ञानमें भासते हैं। उदार चरित्र पुरुषोको वह धाम मुलभ है, दूसरो को नहीं।



चक्रव्यूह और गरुड़व्यूह

एक सौदागर अमूल्य रत्न लेकर राजा जरासिधके दखारमे आया। राजाने पूछा कि वह ये रत्न कहाँ से लाया है। तब सौदागर ने उत्तर दिया कि वह ये रत्न द्वारिका पुरीसे लाया है, जहाँ अत्यन्त पराक्रमी राजा कृष्ण रहते हैं। यादवोका नाम सुनते ही राजा जरासिधकी आखे क्रोधसे लाल हो गयी।

राजा श्रेणिकने जब जरासिध और कृष्णका नाम सुना तो उसने श्री गौतम गणधरसे पूछा कि कृष्णकी प्रसिद्धि सुनकर जरासिधका क्या विचार हुआ। तब गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे जरासिध और कृष्णके चरित्रके सम्बन्धमे बतलाना शुरू किया।

यादवोकी बात सुन कर जरासिध उनके साथ की हुई सन्धिसे विमुख हो गया और वह अपने मुख्य मन्त्रियोसे मन्त्रणा करने लगा। राजाने उन मन्त्रियोसे पूछा, “तुमने यादवोके बढ़ते हुए बल और ऐश्वर्यकी सूचना गुप्तचरों द्वारा पाकर मुझे क्यों न दी। तुमने अपने कर्तव्यके पालनमे क्यों कमी की? यदि मत्री ही गुप्तचरों द्वारा शत्रुओं की खबर पाकर राजाओंको नहीं बतायेगे, तो और कौन बतायेगा? यदि मैं ऐश्वर्यमे मस्त रहकर असावधान रहा, तो क्या कारण था कि तुम्हे यादवोकी वृद्धिका पता न लगा। यदि तुम भी न जान सके, तो तुम मत्री किस काम के? सेवकका यह धर्म-

नहीं कि स्वामीको गत्रु और मित्रोंकी वात न वताये । यदि कोई रोग हो तो उसको दूर करनेका उपाय तत्काल होना चाहिए । रोग बढ़नेसे दुख बढ़ता है । इन दुष्ट यादवोंने पहले तो मेरे जमाई कस-को मारा और फिर मेरे भाई अपराजितको मारा । अब वे समुद्रकी शरण मे आकर द्वारिका वसा कर रहने लगे । वहाँ भी उन्हे इसी प्रकार मारा जा सकता है, जैसे समुद्रकी मछलियोंको मारते हैं । वहा वे निर्भय क्यों हैं ? मेरी क्रोधाग्नि प्रज्वलित होनेके बाद वे निर्भय कैसे रह सकते हैं ? गत्रुका दमन करनेके लिए साम, दान, भेद और दण्ड चार ही उपाय हैं । यादव साम और दानके योग्य नहीं हैं, उन्हे भेद और दण्डसे ही कावूमे लाना चाहिए ।”

गान्तिके मार्गमे स्थित मत्रियोंने दण्ड नीतिको ही उपाय माननेवाले राजा जरासिधको बड़ी नम्रतासे जान्त करते हुए कहा, “हे नाथ ! हम लोग द्वारिकामे गत्रुओंकी वृद्धिको न जाने यह वात सम्भव नहीं । हम तो समय व्यतीत करते रहे, क्योंकि यादवोंके वश मे तीर्थकर नेमिनाथ, श्री कृष्ण और बलदेव तीनो महानुभाव इतने बलवान् हैं कि मनुष्योंकी तो वात ही क्या, देवोंके लिए भी उन्हे जीतना कठिन है । तीर्थकर नेमिनाथको युद्धमे न आप जीत सकते हैं न पृथ्वीतलके समस्त राजा इकट्ठे होकर उसे जीत सकते हैं । शिशुपालके रणमे पराजित तथा वध करनेवाले बलदेव और कृष्णके सामर्थ्यको क्या आपने नहीं सुना ? जिन यादवोंके पक्षमे महा कीर्तिवान और तेजस्वी पाण्डव तथा विवाह सम्बन्धोसे मिले हुए अनेक विद्याधर हैं, उन्हे आप कैसे जीत सकते हैं ? दैव-बल, समयबल और वृद्धिबल नव उनमे है । यही जानकर हमने सोचा कि सोते शर्णोंको न जगाया जाय, यथावत् रहने दिया जाय । हम देख और यानका विचार करके चुप रहें । अपने और पराये बलको विचारना और समयको देखना ही ठीक है । मेवक वही है जो स्वामीके हित-की वान करें । अब आप जैसा उचित समझें, करें ।”

परन्तु जरासिधको ये सब बातें जरा भी अच्छी न लगी। उन्हे अनसुना कर दिया। बुरा समय आता है, तब हठग्राही अपना हठ नहीं छोड़ता। मन्त्रियोंकी बातको न मानकर जरासिधने अपने अजितसेन दूतको यादवोंके पास द्वारिका भेजा। इसके अतिरिक्त उसने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सभी दिशाओंके राजाओंके पास पत्र और दूत भेजे कि वे शीघ्र ही अपनी-अपनी चतुरग सेनाएँ लेकर उसके पास राजगृहमें आ जायें। जरासिधका सन्देश पहुँचते ही राजा कर्ण और दुर्योधन उसके पास आ गये। राजा जरासिधने राजगृह नगरीसे सेना सहित कूच कर दिया।

दूत अजितसेन इस प्रकार द्वारिका आया जैसे कोई पुण्यवान् आदमी स्वर्गपुरीको जाता है। राजसभामें समस्त यदुवंशी और पाण्डव वैठे थे। जब द्वारपालने राजा जरासिधके दूतके आने की सूचना दी, तभी दूतको राजदरवारमें पेश करने का आदेश दिया गया। दूतने राजसभामें आकर सबको यथायोग्य नमस्कार किया। उसको बैठने के लिए उचित आसन दिया गया। तब उसने अपने स्वामीके बलके कारण घमण्डसे कहना शुरू किया, ‘‘हे यादवगण! हमारे राजाधिराज जरासिधके सन्देशको ध्यानसे सुनो। मैंने तुम्हारा क्या बुरा किया है जो तुम भय मान कर यहां समुद्र तटपर बस गये हों। अपराध आप से ही हुआ है। आपने ही भय मानकर यहाँ समुद्र तटपर आश्रय लिया है। आप मुझसे कोई भय न मानें। आप आकर मुझे नमस्कार करे और मेरी आधीनता स्वीकार करे। यदि आप समुद्रके बलके भरोसे रह कर न आकर नमस्कार न करोगे, तो मैं इतना बलवान हूँ कि समुद्रको पीकर अपनी सेनाओंके द्वारा तुम्हारी तत्काल दुर्दशा कर दूँगा। जब तक मुझे तुम्हारे यहाँ रहने का पता नहीं हुआ था, तभी तक आप सुरक्षित थे। अब मुझे पता लग जाने पर तुम सुरक्षित कैसे रह सकते हो?’’

दूतके उपर्युक्त वचन सुनकर उपस्थित कृष्ण आदि सभी राजा कुपित हो गये और बलदेव तथा वासुदेव भौंहे टेढ़ी करके

बोले, “हे दूत ! तुम्हारे राजाकी मृत्यु निकट आई है, जो समस्त मेना लेकर आक्रमण कर रहा है। हम उसका युद्धसे स्वागत करेंगे ।” ऐसा कहकर दूतका उचित आतिथ्य करके उसको वहाँ से बिटा कर दिया गया। द्वारिकासे जाकर दूतने राजा जरासिधको द्वारिकाकी सब बाते सुनाई और वहाके सब रहस्य भी बताये। उसने कहा कि वे महा मदोन्मत्त है और युद्धके अभिलाषी है।

दूतके चले जाने पर राजा समुद्रविजयके तीनो मन्त्री विमल, अमल और गार्दूल आपसमे मत्रणा करके राजासे कहने लगे, ‘हे राजन् ! क्योंकि साम नीति अपने और विरोधीके लिए शान्तिका कारण होती है, इसलिए हम लोग राजा जरासिधके साथ उसीका प्रयोग करेंगे। कुमारोंका यह जो समूह हमारे पास है उपायबहुल युद्धमे उनकी कुगलतामे सन्देह है। मगधके राजा जरासिधसे पारस्परिक बात करके युद्ध टाला जाय तो अच्छा है। युद्ध सबके नाशका कारण होता है। कुगलतामे सन्देह होता है। अपने यहा बहुतसे राजकुमार योद्धा हैं। यदि उनमे से एक भी युद्धमे मारा गया, तो उनकी क्षतिको सहारा न जायेगा, न पूरा किया जायेगा। जैसे अपने यहाँ अमोघ वाणिको वरमानेवाले बहुत बीर हैं, वैसे ही जरासिधकी सेनामे भी कर्ण, दुर्योधन और भीष्म आदि बहुत योद्धा हैं। इसलिए नमन्त जीवोंके कल्याणके लिए साम नीति ही उचित है। हमे जरासिधके पास दूत भेजना चाहिए। यदि फिर भी वह मृदुतासे यान्त न हो, तो जैसा उचित होगा वैसा करेंगे ।”

राजाने मन्त्रियोंकी भलाह मान कर कहा कि इसमे कोई दोष नहीं और महान्तुर, शूरवीर और नीतिवान लोहजघ दूतको राजा जरासिधके पास भेजा।

राजा जरासिध मेना नहित कूच करता हुआ मालव देशमे देवावनार तीर्थ आ पहुँचा और वहाँ तेरे ढाल दिये। यह तीर्थ दो

मासोपवासी कटद्विधारी मुनियो तिलकानन्द और नन्दककी इस प्रतिज्ञाके पूरी होनेके कारण प्रसिद्ध हो गया कि उन्हे वनमें आहार मिले । सयोगसे वनमें श्रावकोंका एक बड़ा सघ आ गया और उसके द्वारा मुनियोको आहार दिया गया । उनका उपवास खलने पर वनमें पाँच आश्चर्य—रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, सुगन्धित जलकी वृष्टि, शीतलमन्द सुगन्धपूर्ण पवनका चलना और 'जय-जय' के शब्द हुए ।

इस वनसे राजा जरासिधके कटकमें लोहजघ पहुँचा और उसने एकान्तमें राजासे बातचीत की । दूत तो बड़ा नीतिवान तथा महा पडित था । यद्यपि जरासिध सन्धिके पक्षमें न था, पर उसकी बातोंसे प्रसन्न होकर राजाने छ महीनेके लिए सन्धि स्वीकार कर ली ।

इसके पश्चात् राजा जरासिधमें सम्मान पाकर लोहजघ द्वारिका लौट आया और उसने अपने राजा समुद्रविजयको सन्धिकी समस्त बात बताई । समस्त यादव इस सन्धिसे युद्धकी तैयारी का ध्यान रखकर एक वर्ष शान्तिसे रहे ।

एक वर्ष पूरा होने पर राजा जरासिध अपनी तथा अपने मित्र राजाओंकी सागर सदृश सेना लेकर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें आ डटा । उधर कृष्ण आदि यदु राजा भी अपनी महा सेनाको लिये पहले ही वहाँ पहुँच गये थे । कृष्णके पक्षके राजा भी सभी दिग्गाओंसे आकर उससे आ मिले । कृष्णके हितैषी पाण्डव भी वहाँ पहुँच गये । नेमिनाथके पिता समुद्रविजय, राजा उग्रसेन और इक्ष्वाकुवशी राजा मेघ राजा कृष्णके पास आ गये । राष्ट्रवर्धन देशका राजा, सिंधल देशका राजा पदमरथ और सकुनका भाई महा पराक्रमी राजा चारुदत्त भी लडनेके लिए कृष्णकी सेनामें आ मिले । इतना ही नहीं, चरवर, पवन, आवीर, कावोज और द्रविड देशके राजा भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर वहाँ आकर यादवोंसे मिल गये । उधर जरासिध-के साथ भी अनेक राजा अपनी सेनाएँ लाकर मिल गये । जरासिधने

चक्ररत्नके प्रभावमें भरत क्षेत्रके तीन खण्डके राजा अपने आधीन कर रखे थे। दोनों तरफ अक्षोहिणी दलकी सेनाएँ थी।

अक्षोहिणी सेनामें नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ सौ करोड़ पैदल सैनिक होते हैं।

यादवोंमें कुमार नेमिनाथ, वलदेव और कृष्ण तीनों अतिरथ थे। ये सब अतिरथोंमें श्रेष्ठ थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, रुक्मि, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शत्र्यु, भूरिश्वस, राजा हिरण्यनाभ, सहदेव और सारण सभी उस रण-भूमिमें मौजूद थे। ये सभी राजा गस्त्र और शास्त्रार्थमें निपुण, महा गत्तिमान और महा धैर्यशाली वीर योद्धा थे। ये राजा रणसे पीछे भागनेवाले और न लड़ सकनेवाले कायर राजाओंपर दयावान् थे, पर जो योद्धा इनका सामना करते, इनके सामने होते या इनसे अधिक बलवान् होते, उससे ये अवश्य लडते। उनमें बहुत महारथी, अनेक समरथी थे। और बहुतसे अर्द्धरथी योद्धा थे। समुद्रविजयमें छोटे और वसुदेवसे बड़े आठों भाई भी सेनामें थे। जवुवन्तीका पुत्र सवुकुमार, राजा भोज, विदूरथ, द्रोपदीका पिता द्वृपद, सिंह राजा, राजा शत्र्यु, व्रज, सुयोधन, पौड़, पद्मरथ, कपिल, भगदत्त और मेघवर्त इत्यादि अनेक राजा वहाँ थे। इनके अतिरिक्त राजा महानेमिधन, कृष्णका भाई अक्षूर और निपद भी रणभूमिमें थे। इनके अनिरिक्त राजा विराट चारू कृष्ण, दुग्गासन और सिखण्डी आदि वहाँ थे।

ये दोनों ही समुद्र समान सेनाएँ कुम्क्षेत्रकी रणभूमिमें डटी हुई थी। कुन्तीका पुत्र राजा कर्ण जरासिधकी सेनामें जामिल था। कर्णका उत्तर द्वृपदके डेरेके निकट ही था। तब रानी कुन्ती कृष्णसे मलाह यरके कर्णके पास गई। वह आकुलतासे भरी और स्नेहभारसे दबी जा रही थी। वह कर्णको गने लगाकर रुदन करती न थकी। तब उन्ने कर्णको युन्मेघन तकका अपना सम्बन्ध बताया।

माताके ये वचन सुनकर कर्ण कुरुवगमे अपना जन्म, कुन्ती माता और पाण्डु पिताको निश्चय रूपसे जान गया । उसने अपने अन्त पुरमे अपने वर्गके व्यक्तियोसे इस सम्बन्धको निश्चित रूपसे समझकर कुन्तीकी बड़ी स्तुति और सम्मान किया ।

माता कुन्तीने स्थिति अपने अनुकूल देख कर कर्णसे अपने मन-की वात बड़े प्रेमसे कहनी शुरू की, “हे पुत्र ! तेरे भाई तेरे दर्गनके अभिलाषी हैं । उठ, हमारे कटकमे चल । कृष्ण आदि सभी तेरे निजवर्गके व्यक्ति तुझे बहुत ही चाहते हैं । तू तो कुरुवगका ईश्वर है और बलदेव तथा वसुदेव सभी के लिए प्राणोसे प्यारा है । तू तो कुरुवशका राजा है । तेरा भाई युधिष्ठिर तेरे सिर पर छत्र फिरावेगा, भीम चवर छुलायेगा । अर्जुन तेरा मन्त्री होगा और नकुल तथा सहदेव दोनो तेरे द्वारपाल होंगे । और मैं तेरी माता सदा नीति पूर्वक तेरा हित करने को तैयार हूँ ।”

माताके वचन सुनकर कर्ण भाइयोके स्नेहसे विवश हो गया । पर जरासिधने उसके प्रति जो उपकार क्रिये थे, उनके कारण स्वामीके कामका विचार करता हुआ वह मातासे बोला, “हे माता ! लोकमे माता-पिता और भाई वान्धव अत्यन्त दुर्लभ है । परन्तु इस अवसरपर स्वामीके कामको छोड़कर भाइयोका काम करना अनुचित तथा अप्रशस्त है । इतना ही नहीं, युद्धके समय ऐसा करना हमीका कारण भी है । इस समय स्वामीका काम करता हुआ मैं इतना ही कर सकता हूँ कि युद्धमे भाइयोको छोड़कर दूसरे योद्धाओसे लड़ूँ । युद्ध समाप्त होने पर यदि भाग्यवग हम लोग जीते रहे, तो हे मा ! मैं भाइयोसे अवश्य मिलूँगा । जाओ, मेरी ये बाते भाइयोसे कह दो ।” यह कह कर कर्णने माताकी पूजा की और माताने उसके कहे अनुसार सब काम किया ।

कुरुक्षेत्रकी समतल भूमिमे दोनो तरफकी सेनाओकी किलावन्दी होने लगी । सरासिधकी सेनाके कुगल राजाओने अपनी सेनामे चक्र

च्यूहकी रचना की । चक्रव्यूहके चक्राकारकी सेनाके एक हजार आरे थे । प्रत्येक आरेके निकट एक एक राजा था । हर एक राजाके पास सौ-मी हाथी, दो-दो हजार रथ, पाँच-पाँच हजार घोड़े और सोलह हजार प्यादे थे । इनके अतिरिक्त छह हजार राजा चक्रकी धारा के समीप इससे चौथाई सेना सहित मौजूद थे । राजा जरासिध बीचमे स्थित था और उसके समीप कर्ण आदि अनेक राजा थे । उनके बीचमे धृतराष्ट्र और गाधारी माताके पुत्र दुर्योधन आदि सब भाई खड़े थे । बीचमे और भी अनेक राजा थे ।

जब वसुदेवको पता चला कि जरासिधने अपनी सेनाको चक्रव्यूहके रूपमे खड़ा किया है, तब उसने भी चक्रव्यूहको तोड़नेके लिए अपने पक्षकी सेनासे गरुडव्यूहकी रचना की । रणमे शूरवीर तथा अनेक प्रकारके अस्त्रो-गस्त्रोसे लैस पचास लाख यादव कुमार उस गरुडके मुख पर खड़े थे । धीर वीर और पर्वतको जीतनेवाले अतिरथ पगक्रमी वलदेव और श्री कृष्ण उसके मस्तकपर खडे हुए । वसुदेव के अनेक पुत्र वलदेव और श्री कृष्णके रथकी रक्षा करने के लिए उनके पृष्ठ रक्षकके रूपमे खडे हुए । राजा भोज बहुतसे रथोंके साथ गरुडके पृष्ठभागो पर खड़ा हुआ । राजा भोजकी रक्षा के लिए दूसरे राजा उसके पीछे खडे किये गये । राजा समुद्रविजय अपनी सेना बहिन उस गरुडके दाहिने पख पर खडा हुआ । इसके आजू-बाजू की रक्षाके लिए बहुतसे राजा अपनी-अपनी सेनाओं सहित सावधान नड़े थे । वलदेवके पुत्र और युद्ध निपुण पाण्डव गरुडके बाये पक्षके पास नड़े थे । इनके अतिरिक्त और भी अनेक राजा अपने-अपने न्यानपर लटनेको तैयार खडे थे । सबने कौरवोंके वधका निश्चय किया हुआ था । मेनाके इस गरुडकी रक्षाके लिए और भी राजा और दीन नियुक्त चुस्त खडे थे । इस प्राकर वसुदेव निर्मित यह गरुडव्यूह राजा जगमिथके चक्रव्यूहको तोड़नेकी तैयारी कर रहा था ।

यादव जरासिंध युद्ध

जब कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे एक तरफ जरासिंध और दूसरी ओर समुद्रविजय आदिकी सेनाएँ अपने-अपने व्यूह बनाकर युद्धके लिए तत्पर खड़ी थी, तब वसुदेवके हितचितक अनेक विद्याधर भी समुद्रविजयके पास आ पहुँचे। समुद्रविजयने उनका यथायोग्य सम्मान किया और हर्षसे कहा कि अब हम कृतार्थ हो गये।

वसुदेवके शत्रु विद्याधर जरासिंधसे जा मिले।

इन्द्रके भडारी कुबेरने बलभद्रको दिव्यास्त्रोसे पूर्ण सिंह विद्या का रथ दिया, जिसपर बलभद्र सवार हुआ और कृष्णको गारू रथ दिया जो अनेक आयुधोसे भरा था। भगवान् नेमिनाथ भी इन्द्रके भेजे रथ पर सवार हुए जिसका सारथी मातलि था और जो सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोसे लैस था। समुद्रविजय आदि समस्त राजाओंने वानर ध्वजासे युक्त वसुदेवके शूरवीर पुत्र अनावृष्टिको सेनापति बनाकर उसका अभिपेक किया।

इधर राजा जरासिंधने हर्ष पूर्वक महा शक्तिशाली राजा हिरण्यनाभको सेनापतिके पद पर नियुक्त किया।

दोनो सेनाओंमे जगी मारू वाजे बजते ही दोनो कटकोकी चतुरंग सेनाए युद्धके लिए तैयार हो गयी। सैनिक एक दूसरेको बुलाने

लगे । युद्धके क्रोधमें उनकी भौहे टेढ़ी हो गयी और शरीर कूर हो गये ।

लडाई आरम्भ होने पर हस्तसेना हस्तसेनासे, घुडसेना घुडसेना से, रथसेना रथसेनासे और प्यादे प्यादोसे लड़ने लगे । धनुषोंकी फिडचोकी झकार, रथोंके गब्दो, गजोंकी गर्जना, अश्वोंके हिन-हिनाने और योद्धाओंके सिहनादसे दसों दिशाएं-तथा आसमान फटासा जा रहा था ।

नेमिनाथके सौतेले भाई रथनेमिकी बैलकी धवजा थी, कृष्णके भाई अनावृष्टिकी हाथीकी धवजा थी और अर्जुनके झण्डेपर बन्दरका निगान था । ज्योही इन योद्धाओंने जरासिंधकी सेनाको जीतते देखा, उन्होंने कृष्णके अभिप्रायको समझकर स्वयं युद्ध करनेकी तैयारी की और उन्होंने जरासिंधके चक्रव्यूहको भेदनेका निश्चय किया । नेमिनाथ ने गत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेके लिए इन्द्रप्रदत्त शाक शखको वजाया, अर्जुनने देवदत्त शखको और सेनापति अनावृष्टिने बलाहक नामक शखको वजाया । शखनादके होते ही उनकी सेनामें महान् उत्साह वढ गया और गत्रु सेनामें महाभय छा गया ।

अनावृष्टिने जरासिंधकी सेनाके चक्रव्यूहके मध्य भागको भेदा और रथनेमिने दाहिनी वाजूको और अर्जुनने पश्चिम और उत्तर दोनों पक्षोंको भेदा । फिर यादवोंके सेनापति अनावृष्टि और जरासिंधके सेनापति हिरण्यनाभमें परस्पर युद्ध होने लगा । रथनेमि रुक्मीसे लड़ा और अर्जुन दुर्योधनसे लड़ने लगा । वाराण पर वाराण चलने लगे, उनकी वर्षा होने लगी । कलहप्रेमी नारद आकाशमें बैठा दूर से ही युद्धको देख कर बहुत हृषित हो रहा था । अप्सराये आकाशसे योद्धाओंपर पुष्पवर्गी कर रही थीं ।

धोंडी देरमें रथनेमिने अपने वाराणमें रुक्मीको मार गिराया । वगुदेव विजयार्द्धकी तरफ बढ़े और नां भाड़योंने अपने सामने पड़ने-

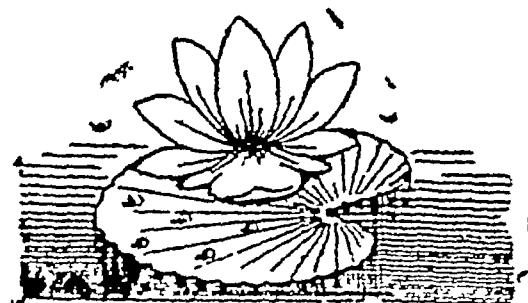
बाले प्रत्येक राजाको मार डाला । बलदेव और वासुदेवके बीर पुत्रोने अपने बाणोसे वर्षा की । धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्रों और पाण्डवोके पाँच पुत्रोमें जो युद्ध हुआ उसे कहने लिखनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? युधिष्ठिर शल्यके साथ, भीम दुश्शासनके साथ और वसुदेव शकुनिके साथ और अलूक नकुलसे लड़ रहे थे । इसके पश्चात् अर्जुन और दुर्योधन युद्ध करनेको तैयार हुए । दोनों ही खड़ग चलाने और वारंग विद्याओमें प्रवीण थे । महायुद्ध हुआ । पाण्डवोने धृतराष्ट्रके कुछ पुत्र मारे और कुछको मरे समान कर दिया ।

जरासिधकी सेनामें कर्णने कान तक धनुषकी डोरी खीचकर वारंग-पर-वारंग मारे और कृष्णके पक्षके जो योद्धा उसके सामने आये सबको घायल कर दिया ।

यह तो वरावरके महा योद्धाओमें युद्ध हुआ । फिर दोनों पक्षोंके महा सेनापतियो—अनावृष्टि और हिरण्यनाभ—में महारौद्र युद्ध हुआ । हिरण्यनाभके अनेक वाणोकी मारसे अनावृष्टि घायल हो गया । अनावृष्टि उससे कम तो था नहीं । उसने भी हिरण्यनाभको वाणोसे खूब घायल कर दिया । सेनापति हिरण्यनाभने अनावृष्टिकी ऊची ध्वजाको छेद गिराया और त्रुदलेमें, अनावृष्टिने ने भी हिरण्यनाभकी ध्वजा को नीचे गिराया । फिर दोनों ने एक दूसरे के रथको चकनाचूर कर दिया और वे आमने-सामने, खड़गोसे लड़ने लगे । उनके एक हाथमें तलवार और दूसरेमें ढाल थी । वह इसके वारको मौका देख कर टाल जाय और वह इसके वारसे वच जाय । दोनों ही युद्ध विद्यामें प्रवीण थे । फिर मौका देखकर अनावृष्टिने हिरण्यनाभ पर तलवारका ऐसा वार किया, कि उसकी दोनों भुजाए कट कर पृथ्वीपर गिरपड़ी, रुधिरका फव्वारा आकाशकी ओर छूटा और परिणाम स्वरूप जरासिधका वह सेनापति पृथ्वीपर गिर पड़ा । हिरण्यनाभके योद्धा पीछे हट गये और अनावृष्टि फिरसे अपने

रथपर सवार हो कर अपनी सेना महित सहर्ष वलदेव और श्री कृष्णके पास आया । सभी सैनिकोंने “सेनापतिकी जय जय” के नारे लगाये । अनावृष्टिकी प्रगसा की । वलभद्र और श्री कृष्ण वैल-की ध्वजा वाले, रथनेमि हाथीकी ध्वजा वाले और अनावृष्टि वन्दर-की ध्वजा वाले अर्जुनसे बड़े स्नेहसे मिले ।

इस प्रकार अनावृष्टिने जरासिधके सेनापति हिरण्यनाभको मारा और रथनेमि और अर्जुनने चक्रव्यूहको भेद दिया । सेनापति हिरण्यनाभके मारे जाते ही उसकी समस्त सेनामें विपाद छा गया । इधर इसी समय सूर्य भी अस्त हो गया । दोनों पक्षोंकी सेनाएं अपने-अपने डेरोमें चली गयी, यादवोंकी सेना शत्रुको परास्त कर देने के कारण हर्षसे कूदती-नाचती-धूमती, समुद्र समान गरजती वहुत ही जोभायमान हो रही थी ।



जरासिंध वध

सूर्योदय होते ही फिर लडाईकी तैयारी होने लगी। जरासिंध और कृष्ण हथियारोंसे लैस अपने योद्धाओंको लेकर युद्धके लिए निकले। उन्होंने अपनी-अपनी सेनाओंको पूर्ववत् चक्रव्यूह और गरुड-व्यूहके रूपमें खड़ा किया।

राजा जरासिंधने अपने पास बैठे हुए हस नामक मन्त्रीसे सामने खड़े यादवोंके नाम और निशान पूछे। उसे तो यादवोंसे ही द्वेष था, दूसरे राजाओंसे नहीं। हस मन्त्रीने एक एक करके कृष्ण, रथनेमि, बलभद्र, युधिष्ठिर और अनावृष्टिकी तरफ सकेत करके बताया। हस मन्त्रीने जरासिंधको बताया कि इस अनावृष्टिने ही कल उसके सेनापति हिरण्यनाभको मारा था। फिर मन्त्रीने भीम, समुद्रविजय, कृष्णके बड़े भाई अक्रूर, राजा सत्य, नम्यकुमार, राजा भोज, कृष्णके बड़े भाई जरत्कुमार, राजा मरुराज, पद्मरथ, राजा सारण, राजा अग्निजितका पुत्र राजा मेरुदत्त और अति तेजस्वी विदुरत कुमारकी ओर सकेत करके उनके चिह्न सहित बताया।

मन्त्रीकी बात सुन कर राजा जरासिंधने अपने सारथी को यादवोंकी तरफ रथ बढ़ानेका आदेश दिया। आज्ञा पाते ही सारथीने तुरन्त यादवोंपर रथ चढ़ा दिया और जरासिंध पर वाण-पर-वाण छोड़ने लगा। जरासिंधके पुत्र कोप करके यादवोंसे रण क्रीड़ा करने लगे।

युद्ध आरम्भ होनेपर वरावर वाले योद्धा वरावरवाले योद्धाओंसे लड़ने लगे । जरासिंधका पुत्र कालयवन् सहदेवसे युद्ध करने लगा । इसी प्रकार दूसरे अनेक राजा अपने वरावरवाले राजाओंसे लड़े । वसुदेवके पुत्रोंका प्रतिहरके पुत्रोंसे महायुद्ध हुआ । जब जरासिंधके पुत्र कालयवनने वसुदेवके बहुतसे पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया, तब सारण नामक यदुकुमारने क्रोधसे कालयवनपर खड़गसे प्रहार करके उसे मौतके घाट उतारा । कालयवनका मरना तो जरासिंधका सर्वस्व नाश था । इसपर जरासिंधके दूसरे पुत्रोंने आकर कृष्णको धेर लिया और वे खूब लड़े, पर श्री कृष्णने अपने अर्द्धचन्द्र बारणसे उनको यमपुर पहुँचा दिया ।

जब जरासिंधने अपने पुत्रोंको रणभूमिमें मरे पड़ा देखा तो वह क्रोधसे कृष्णके पास आकर अपने बाणोंको धनुपपर चढ़ा कर कृष्ण पर छोड़ने लगा । दोनोंमें महा भयकर युद्ध हुआ । पहले तो उनमें सामान्य गस्त्रों जैसे तीर, तलवार और कटारी आदि से लड़ाई हुई । फिर वे देवोपुनीत दिव्यग्रस्त्रोंसे लड़ने लगे । जरासिंधने कृष्ण पर नाग बाण चलाया, जिसके परिणास्वरूप हजारों मायामयी नाग वहाँ आ गये । तब माधव कृष्णने राजा जरासिंधपर गारुड बाण छोड़ा और मव सापोंको नष्ट कर दिया । फिर जरासिंधने कृष्णपर मेघवाण छोड़ा, जिसके प्रभावको नष्ट करनेके लिए कृष्णने पवन बाणसे उसका निराकरण किया । फिर जरासिंधने कृष्णपर वायव्य बाण छोड़ा, जिसके उत्तरमें कृष्णने अन्तरीक्ष अस्त्र चलाया । इसके पश्चात् जगर्मिध और कृष्णमें दूसरे अनेक प्रकारके दिव्य-बाणोंसे युद्ध हुआ । जब जरासिंधके मव बार और उद्यम व्यर्थ गये, तब उन्हें अपने धनुपको पृथ्वीपर डाल दिया और अपने चक्रको याद किया । एक सहस्र वर्ष इस चक्रके मेवक थे । चक्रका विचार अति तीव्र वह जरासिंधके हाथोंमें आ गया । जरासिंधने अपनी भीहें देढ़ी करके चक्रको कृष्ण पर चलाया । आकाश में चक्रके तेजसे सूर्य-

का तेज दब गया । जरासिंधके चक्र छोडते ही जरासिंधके पक्षके दूसरे अनेक राजाओंने भी एक साथ वैसे ही चक्र छोड़े । चक्रोंको आता देखकर कृष्णने शक्ति और गदा सम्भाली और वलभद्रने हल और मूसल, भीमने गदा, अर्जुनने धनुष आदि अनेक शस्त्र, अनावृष्टि ने परिघ और युधिष्ठिरने शक्ति सम्भाली । कृष्णके ये सब साथी इस प्रकार चक्रसे लड़ने के लिए तैयार हो गये । समुद्रविजय आदि नौ भाई साधवान होकर चक्रकी ओर अनेक शस्त्र चलाने लगे और कृष्ण चक्रके सामने खड़े थे । सामन्तोंने उस चक्रको अनेक प्रकारसे रोका, परन्तु चक्र पीछे न हटा; वरन् मित्रके समान गीघ ही आकर प्रदक्षिणा देकर कृष्णके दाहिने हाथमे आ बैठा । कृष्णके दाहिने हाथमे शख, चक्र और अकुशके चिह्न थे । ज्योही चक्र कृष्णके हाथ आया, तभो आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और देवोंने कहा कि यह कृष्ण नौवा वासुदेव या नारायण प्रकट हुआ है । शीतल मन्द, सुगंधित पंचन अनुकूल चलने लगी । सभी यादव बड़े हर्षित हुए ।

जब जरासिंधने चक्र को कृष्णके हाथमे देखा तब उसने सोचा, कि हाय ! यह चक्र भी बेकार हो गया । मैंने अपने चक्ररत्न और पौरुषसे समस्त दिशाओंको व्यापत कर रखा था और तीन खण्डका शक्तिशाली अधिपति बना हुआ था, पर आज मैं पौरुष हीन हो गया, मेरा पुरुषार्थ खण्डित हो गया । जब तक दैव प्रबल है तभी तक चतुरग सेना, काल, मित्र और पुरुषार्थ काम देते हैं । दैवके निर्बल होते ही ये सभी निरर्थक हो जाते हैं । ज्ञानियोंकी यह वात सत्य ही है । मैं गर्भसे ईश्वर था और कोई बड़ा पुरुष भी मेरी आज्ञाका उलघन नहीं कर सकता था, पर आज यह क्षुद्र गोप दैव-योगसे मुझे जीतनेवाला बन गया । इसके गर्भ और जन्मके समय क्लेश हुआ था, यह सतवासा जन्मा था और ग्वालिनोंमें पला था । यदि विधाताओं ऐसा साधारण आदमी ही मुझे जीतनेवाला देखना था, तो इसे बचपनमें गोकुलमें अनेक कष्ट क्यों उठाने पड़े ? इस-

लिए विधिको धिक्कार है। दैवकी मूर्खताके समान और कौन सी मूर्खता होगी? विधिकी यह चेष्टा सब लोगोंको अन्धा करनेमें प्रवीण है और धीर-वीर मनुष्योंके धैर्यको भी नष्ट करने वाली है। इस राजलक्ष्मी को भी धिक्कार है, जो वेश्याके समान कभी इस घर, कभी उस घर जाती है। ऐसे विचार जरासिंधके मनमें आये। उसने अपनी मृत्यु निश्चय रूपसे निकट समझते हुए भी प्रकृतिसे निर्भक होनेके कारण क्रोधसे कृष्णसे कहा, “अरे गोप! तू चक्रको क्यो नहीं चलाता? तू क्यो समयकी उपेक्षा कर रहा है? जो करना है, जीघ्र कर। अरे मूर्ख, समयकी उपेक्षा करनेवाला दीर्घ सूत्री मनुष्य अवश्य ही नष्ट होता है।”

जरासिंधके उपर्युक्त वचन सुन कर स्वभावसे विनयवान तथा स्नेहशील कृष्णने कहा, “मैं चक्रवर्ती पैदा हुआ हूँ, यह चक्र मेरे हाथ में आया है, इसलिए आप मेरी आज्ञा स्वीकार करे और सुखसे राज करे। यद्यपि आप हमारी बुराईमें प्रवृत्त हो, पर हमारे मनमें कोई द्वेष नहीं है, प्रीति ही है। हम प्राणी मात्रसे प्रसन्न है, किसी को भी मारने की हमारी इच्छा नहीं है।”

कृष्णके ये वचन सुनकर जरासिंधने गर्वसे कहा, “अरे, यह चक्र मेरे लिए अलात चक्रके समान है, तुम इसे पाकर क्यो गर्व कर रहे हो? तूने अभी तक कल्याण देखा ही तही। तू तो जन्मसे दरिद्री है। जो छोटा आदमी है, वह थोड़ीसी सम्पदा पाकर गर्व करने लगता है। पर जो महा पुरुष है, लक्ष्मी नाथ है उन्हे गर्व या मद कब होता है? मैं तुझे यादवों और तेरे सभी साथी राजाओं को भमुद्रमें डुवो दूँगा।” इस पर चक्रवर्ती कृष्णने कुपित होकर चक्ररत्नको धुमाकर इस प्रकार छोड़ा कि उसने जरासिंधके वक्षस्थल-को भेद दिया। जरासिंधको मारनेके पश्चात् वह चक्र फिर कृष्णके हाथमें वापिस आ गया। फिर कृष्णने पांचजन्य शाखको वजाया

और तीर्थकर नेमिनाथ, अर्जुन और सेनापति अनावृष्टिने भी अपने शख बजाये । ये अभयकी घोपणाएं थीं । स्वसेना और परसेना अपना-अपना पथ छोड़कर कृष्णकी आज्ञाकारिणी हो गईं ।

राजा दुर्योधन, द्रोण और दुश्सासन आदिने ससारसे विरक्त होकर मुनि विदुरसे जिन दीक्षा ले लीं । राजा कर्णने भी सुदर्शन वनमे मोक्ष फलदायक जिन दीक्षा ले लीं । जहाँ कर्णने दीक्षाके समय स्वर्णके अक्षरोंसे भूषित अपने कर्ण कुण्डल छोड़े थे, वह स्थान कर्ण स्वर्ण कहलाने लगा ।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने स्थानको चले गये । श्री कृष्ण महाभारतमे जरासिधको मरा पड़ा देख कर अति व्याकुल हुआ । जरासिध पड़ा हुआ ऐसा मालूम हो रहा था, मानो समुद्रमे सूर्य पड़ा हो । उसकी मरण दशा देखकर कृष्णने रुदन किया, उससे उसकी आखे लाल होकर जपापुष्पके समान दीखने लगी और कृष्ण के जो आसू पड़े वे जरासिधको दिये जाने वाले जलके समान थे ।

गौतम गणधरने राजा श्रेणिकसे कहा, “हे श्रेणिक ! यह प्राणी शुभ कर्मोंके उदय होने पर सम्पदाको भोगता है, वह सम्पदा प्रचण्ड पुरुषोंके प्रतापका उल्घन करने वाली होती है और जब शुभ कर्मोंका क्षय होता है, तब वे विपत्तिया भोगते हैं । इसलिए भक्त लोगोंको जिन मतमे स्थिर होकर मोक्ष प्राप्तिमे सहायक होनेवाले निर्भल तपको करना चाहिए ।



: ३६ :

कृष्ण दिग्बिजय

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही श्री कृष्णने दोनों सेनाओंके घायल सैनिकोंकी मरहम पट्टी कराई और मृतक राजा जरासिंध आदिके अतिम सस्कार कराये ।

एक दिन समुद्रविजयादि यादव राजा मभा मण्डपमें श्री कृष्णके साथ बैठे हुए वसुदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । वसुदेवको अपने पुत्रों और प्रद्युम्न कुमार तथा सबुकुमार नातियोंके साथ विजयार्द्ध पर्वतपर गये वहाँ समय हो गया था पर आज तक उनकी कुगलता का कोई समाचार न आने से उसके सभी भाई चिन्तित थे । उस समय उनके हृदय वसुदेवके लिए गाय और वच्छडेके समान वात्सल्य ने भरपूर थे । उसी समय आकाशमें चमकती हुई विजलीके समान अपने प्रकाशमें सभी दिवाओंको प्रकाशित करनेवाली विद्याधरियाँ वेगवत्ती आदि वहाँ आ पहुँची । उनके माथ नागकुमारी विद्याधरी भी थीं । यह नागकुमारी वास्तवमें वेगवत्ती की दादीका जीव थी । वह कृष्णना तपश्चिन्नी जिन-वर्मका पानन करके देवी हुई थी ।

मभा के दीनमें आकर नागकुमारी भवको आशीर्वाद देती हुई राजा नमुद्रविजयमें कहने लगी, “हे राजन् ! गुरुजनोंने आप सबको

जो आशीर्वाद दिये हैं, वे सफल हो गये। यहाँ वासुदेव—कृष्णने राजा जरासिधको नष्ट किया है। उधर उसके पिता वसुदेवने शत्रु विद्याधरोको नष्ट कर दिया है। वसुदेव पुत्र-नातियो सहित सकुशल है और आप सबकी कुशलता चाहता है। उसने बड़ोंको प्रणाम और छोटोंको आसीस कही है।”

विद्याधरीसे वसुदेव आदि की कुशलताके समाचार सुनने से अति हृषित और रोमाचित हो सब राजाओंने पूछा कि वसुदेवने विद्याधरों को किस प्रकार नष्ट किया है। तब नागकुमारी देवीने उन्हे बताया, “युद्धमे निपुण वसुदेवने विजयार्द्धगिरि जाकर अपने श्वसुर और सालों आदि विद्याधरोंकी सहायतासे जरासिधकी सहायताके लिए यहाँ रणमे आने को उद्यत विद्याधरोंको रास्तेमे ही रोककर उनसे घोर युद्ध करना शुरू कर दिया। इस युद्धसे प्रलयकी आशका होने लगी और सबके चित्त भयसे व्याकुल हो गये। स्वयं वसुदेव प्रद्युम्न कुमार और सबुकुमारने सामने पड़ने वाले सभी शत्रुओंको बड़ी चूपलतासे मौतके घाट उतारा। इसी अवसरपर सतुष्ट हुए देवोंने आकाशमे वसुदेवके पुत्र कृष्णके नौवा नारायणहोने की घोषणा की और बताया कि उसने चक्रधारी हो कर अपने शत्रु राजा जरासिध को उसीके चक्रव्यूहमे मार डाला है। इसी समय आकाशसे चादनीके समान रत्नमयी वृष्टि वसुदेवके रथपर हुई। उक्त वाणी सुनकर सभी शत्रु विद्याधर भयभीत होकर वसुदेवकी गरणमे आने लगे। इतना ही नहीं, हारे हुए विद्याधरोंने अपनी कन्याए वसुदेवके पुत्रों, प्रद्युम्न कुमार तथा सबुकुमार आदि को विवाहमे दी। वसुदेवकी प्रेरणा से ही यह शुभ समाचार सुनाने हम यहाँ आयी हैं। नारायण की भक्तिसे प्रेरित होकर वहुतसे विद्याधर राजा तरह-तरह के उपहार लेकर वसुदेवके साथ यहाँ आ रहे हैं।”

नागकुमारी देवी आदि विद्याधरियोंके यह समाचार सुनाते ही आकाशमे विद्याधरोंके विमानोंके समूह छा गये। विमानोंसे उत्तर

कर विद्याधरोने बलदेव और वासुदेवको प्रणाम करके तरह-तरहके उपहार भेट किये । पिता वसुदेवको देखते ही बलदेव और श्री कृष्ण ने उठकर प्रणाम किया और वसुदेवने उन्हे छातीसे लगा लिया और आगीर्वाद दिया । फिर वसुदेवने सभी बडे भाइयोको प्रणाम किया । बलभद्र और वासुदेवने आये हुए विद्याधरोका सम्मान किया और उनके दर्जन करके अपने जन्मको सफल माना ।

इसके पश्चात् बलदेव और कृष्ण दोनों भाइयोने पश्चिम दिग्गांकी ओर प्रस्थान किया । अब उनके सब मनोरथ सिद्ध होने से वे आनन्दित थे । जिस स्थान पर जरासिधका वध हुआ था । उस स्थान पर यादवोने विजय उत्त्लाससे बड़ा आनन्द मनाया और वह स्थान आनन्दपुरके नामसे प्रसिद्ध हो गया । वहाँ हरिने अनेक जिन-मन्दिरोका निर्माण किया । फिर रत्न मण्डित चक्रकी पूजा करके भरत क्षेत्रको जीता । उसने तीनों खण्डोंके देवों, दानवों और मानवोंपर विजय प्राप्त की । आठ वर्षमें दिग्विजय प्राप्त की । कृष्णने अब सभी जीतने योग्य राजाओंको जीता । फिर वह कोटि-गिलाकी ओर आया जो एक करोड़ मुनियोंके मोक्ष जानेके कारण महा तीर्थ है । उसने उस पवित्र गिलाकी प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया । सिद्धोंको स्मरण करके कृष्णने उस कोटिशिलाको अपनी भुजाओंसे चार अँगुल ऊपर उठाया । कृष्णसे पहले आठ नारायणों (१) त्रिपृष्ठने सिरमे ऊपर तक, (२) द्विपृष्ठने मस्तक तक, (३) स्वयभूने कण्ठ तक, (४) पुरुषोत्तमने वक्षस्थल तक, (५) पुरुषसिंह या नृमित्ने हृदय तक, (६) पुरुष पुण्डरीकने कमर तक, (७) दत्तक ने जाघो तक और (८) लक्ष्मणने घुटनों तक कोटिशिला उठाई थी । इन कमी का कारण यह था कि युग-युगमें कालभेदसे प्रधान पुनर्पोक्ती यक्षित भिन्न-भिन्न होती गयी । कृष्णके द्वारा गिला उठाये जानेन्ते समस्त भेनाने जान लिया कि श्री कृष्ण महान् शारीरिक दलको रूपनेवाला है । दिग्विजयके पश्चात् श्री कृष्ण अपने वांधव

जनोंके साथ द्वारिका लौटे जहाँ उनके वृद्धजनोंने उनका बड़ा अभिनन्दन किया । इस महान् स्वागत तथा अभिनन्दनके बीच उन्होंने द्वारिका में प्रवेश किया । श्री कृष्ण और बलभद्रके साथ जो भूमिगोचरी और विद्याधर राजा लौटकर आये थे उनको हर एकके योग्य सामग्री तथा ठहरनेके स्थान दिये गये ।

इसके पश्चात् समस्त विद्याधर राजाओं आदि ने श्री कृष्णका राज्याभिषेक करके आधे भरत क्षेत्रका स्वामी घोषित किया ।

अब चक्ररत्नधारी राजा श्रीकृष्णके सामने जरासिंधके पुत्र तथा अपने साथी राजाओंको उनके योग्य राज देनेका महान काम था । सबसे पहले उन्होंने जरासिंधके द्वितीय पुत्र सहदेवको राजगृहका राजा बनाया और उसे निरहकार होकर मगध देशका एक चौथाई भाग प्रदान किया । राजा उग्रसेनके पुत्र द्वारको मथुरापुरी दी और महानेमिको गौर्यपुरका राज दिया । श्री कृष्णने पाण्डवोंको बड़ी प्रीति के साथ उनका प्रिय हस्तिनापुर दिया और राजा रुधिरके पुत्र रुक्मनाभको कोशल देश दिया । यह स्वरूपनाभ जरासिंधके सेनापति हिरण्यनाभका छोटा भाई भा । इतना ही नहीं राजा कृष्णने सब साथियों तथा विद्याधरोंको स्थान दिये ।

इस प्रकार राज बाटकर अपने साथी राजाओं तथा जरासिंधके पुत्रको सतुष्ट करके विदा किया और यदव राजा द्वारिकापुरीमें आनन्द-सुखसे रहने लगे ।

श्री कृष्णके सात रत्न थे—(१) गत्रुओंको वगमे करनेवाला सुदर्शन चक्र, (२) जिसकी ध्वनि मुन कर शत्रु कम्पायमान हो जाय ऐसा सारग धनुप, (३) मुनन्दा खड़ग, (४) कौमदी गदा, (५) अमोघ मूल शक्ति, (६) पाचजन्य शख और (७) कौम्भुभ मणि ।

इन सात रन्नोमे श्री कृष्णको अतुल प्रताप प्राप्त हुआ । ये सातो रत्न दिव्यमूर्ति हरिके लिए अत्यन्त हितकारी सिद्ध हुए ।

वलभद्रके पास भी दिव्य आयुध अपराजित हल, शक्ति मूसल, दिव्य गदा और रत्नमाला इत्यादि रत्न थे ।

दिव्य आयुधोमे युक्त महा प्रतापी श्री कृष्ण और वलभद्र अपनी अनेक रानियो और अगरक्षक देवोके साथ भक्तिपूर्वक धर्मपालन करते हुए द्वारिकामे सुखसे रहने लगे ।



द्रौपदी हरण

श्री कृष्णकी प्रबलतासे हर्षित पाण्डव हस्तिनापुरमे सुखसे राज कर रहे थे । उनके अखण्ड राज्यसे समस्त प्रजाको बड़ा सुख हुआ और वह दुर्योधन-आदिको भूल गयी ।

एक दिन सब जगह से वेरोक-टोक घूमनेवाले, क्रुद्ध हृदयी और स्वभावत कलह प्रेमी नारद वहाँ पाण्डवोंके घर आये । पाण्डवोंने नारदका बड़ा आदर सम्मान किया । पर जब वह रनवासमे गया, वहाँ द्रौपदी अपने आभूषण आदि पहननेमे व्यस्त थी और उसने नारद-को प्रवेश करते न देखा । वह पाससे गुजर गया । नारद तो द्रौपदी-की उपेक्षाके मारे क्रोधसे ऐसा जल गया, जैसे तेल गिरने से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है । सच है अनादरसे पीडित व्यक्ति सज्जनके मौके या परिस्थिति को नहीं समझता । झट से उसने द्रौपदीको इस अनादर का मजा चखानेका निश्चय किया । वह पूर्वार्द्ध भरत क्षेत्रके धातुखण्डमे अगदेशकी अमरकका नगरीमे गया । वह वहाँ ग्रति कामी और स्त्रियोंके बहुत लोलुपी राजा पद्मनाभसे मिला ।

राजा पद्मनाभ यात्रिक नारदसे यह मालूम करने की इच्छासे कि क्या उसने उसकी रानीसे अधिक सुन्दर स्त्री कही देखी है, उसे अपने महलमे ले गया । सभी रानियोंने नारदको प्रणाम किया । इसके पश्चात् राजाने नारदसे पूछा, “महाराज क्या आपने मेरी रानीसे अधिक सुन्दरी किसी और स्थान पर भी देखी है ?”

नारद समझ गया कि राजाको अपनी रानियोके सौन्दर्यपर गर्व है और वह विषयाभिलापी है। नारदने तुरन्त राजा पद्मनाभसे द्रोपदीके लोकानीत रूप-लावण्यका वर्णन करके उसके हृदयमें द्रोपदी-की अभिलापाका पिण्ठाच लगा दिया। फिर नारद यहाँ-वहाँ के नगरोंका हाल सुनाकर वहाँसे विहार कर गया। पर राजा तो व्याकुल रहने लगा। उसने द्रोपदीकी प्राप्तिके लिए पातालबासी देवता सग्रामकी आराधना की। वह देवता अर्जुनकी स्त्री द्रोपदी-को सोती हुई अवस्थामें सेज सहित उठा लाया।

राजा पद्मनाभके सर्वतोभद्र नामक राजमहलकी बाटिकामे द्रोपदीको छोड़ कर देवने राजाको सूचना दी। राजा तुरन्त बाटिका में द्रोपदीके पास आया। उसे वह साक्षात् देवांगना सी लगी। उधर द्रोपदीने अपने आपको अपरिचित स्थान में देखा तो उसने तमाम वात को स्वप्न समझा और फिरसे सो गई।

मुमुक्षा द्रोपदीका अभिप्राय समझकर राजा पद्मनाभने धीरे-धीरे उसके पास जाकर मधुर वचनोंसे कहना आरम्भ किया, “हे विश्वाल नेत्रे ! देखो, यह स्वप्न नहीं है। तुम धातकी खण्ड द्वीपकी अमरकका नगरीमें हो और मैं राजा पद्मनाभ हूँ। नारदने तुम्हारे मनोहर रूप-सौन्दर्यका वस्तान किया था। और मेरा आराधित देव ही तुम्हें यहाँ लाया है।”

राजाके ये वचन मुनकर महा सती द्रोपदी चकित हो गयी। वह मनमें सोचने लगी कि यह क्या है और वह तो बड़े सकट में आ फनी है। तुरन्त उसने मनमें मंकल्प किया कि जब तक वह अपने पनिदेव अर्जुनका दर्शन न करेगी, तब तक उसके अन्न-जल और यागीनिक नस्कार और शृगार का त्याग रहेगा। ऐसा नियम लेकर उन्हें अपनी वेगी खोन दिया ताकि अर्जुन ही उसे बांधे। अब दोषी जीवों वज्रमय रॉटके भौतर न्यिन होकर प्रकट रूपमें कामसे

पीडित राजा पद्मनाभको सम्बोधित करके बोली, “वलदेव और कृष्ण नारायण मेरे भाई हैं, धनुधरी अर्जुन मेरा पति है, पतिके बड़े भाई महावीर भीम अतिशय वीर हैं और पतिके छोटे भाई सहदेव और नकुल यमराजके समान हैं। जल और स्थल मार्गसे उन्हें कोई नहीं रोक सका। मनोरथके समान शीघ्रगामी उनके रथ समस्त पृथ्वीपर विचरण करते हैं। इसलिए हे राजन् ! यदि तू अपना भला व कल्याण चाहता है तो सर्पिनीके समान मुझे शीघ्र ही उनके पास वापिस भेज दे।” पर पद्मनाभकी तो सभी सदिच्छाएं दूर हो चुकी थीं। इसलिए पद्मनाभ पर द्रोपदीकी इन वातों का न कोई प्रभाव होना था, न हुआ। उसने अपनी हठ न छोड़ी।

तब वह महासती अपनी बुद्धिसे एक उपाय सोच कर दृढ़तापूर्वक उसे कहने लगी, “हे राजन् ! यदि मेरे स्वजन—ससुराल और पीहरके आदमी एक मासमे यहाँ न आये, तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना। यह सुनकर राजा “ऐसा ही होगा” कह कर चुप हो गया, पर वह अपने राजलोककी चतुर स्त्रियो द्वारा द्रोपदीको अपने अनुकूल करने और तरह-तरहके प्रिय पदार्थोंसे उसे फुसलानेमें लगा रहा। पर वह सती अपने निश्चयपर दृढ़ रही, टस-से-मस न हुई। वह निर्भीक होकर अन्न-जलका त्याग करके अश्रुपात करके अपने पतिके आने की बाट देखने लगी।

इधर प्रभात होते ही हस्तिनापुरमे द्रोपदीको महलमे न देखकर पाँचो पाण्डव व्याकुल हो उठे, किर्कत्व्यविमूढ बन गये। जब वे निरुपाय हो गये, तब उन्होंने कृष्णके पास जाकर द्रोपदीके न मिलने, कहीं चले जाने का समाचार दिया।

कृष्ण तो पराये दुखको अपना दुख समझने वाले थे। भट से उन्होंने समस्त भरत क्षेत्रमे द्रोपदीकी तल लग कराई। पर द्रोपदी कहीं भी न मिली। तब सब यादोंने विचार करके यह निष्कर्ष निकाला कि

कोई क्षुद्र व्यक्ति द्रोपदीको इस क्षेत्रसे किसी दूसरे क्षेत्रमें ले गया है। फिर वे पारस्परिक मंत्रणासे द्रोपदीका पता लगाने की युक्ति सौचने लगे।

उसी समय नारद जी वहाँ आ पहुँचे। समस्त यादवोंसे भरी सभामें नारदने श्री कृष्णसे कहा, “हे कृष्ण! मैंने धातकीखण्डमें अमरकका नगरी में राजा पद्मनाभके महलमें अति दुर्बल, अश्रुपात करती और अन्न-जल त्यागे द्रोपदी देखली है।” राजा पद्मनाभकी स्त्री आदर से उसकी सेवा कर रही है। पर द्रोपदीका तो मात्र गील ही आधार है। वह लम्बे-लम्बे निश्वास-पर-निश्वास छोड़कर आपकी प्रतीक्षा कर रही है। आप जैसे वीर भाइयोंके होते हुए द्रोपदी वन्तुके घरमें रहे?”

द्रोपदीके सम्बन्धमें नारदसे यह समाचार पाकर कृष्ण आदि सभी अति हर्षित हुए और नारदकी प्रश्नाको करने लगे। श्री कृष्णने कहा, “वह दुष्ट पद्मनाभ द्रोपदीका हरण करके कहाँ जायेगा? मृत्यु के इच्छुक उस दुराचारीको अभी यमलोक भेजता हूँ।” इस प्रकार अपना रोप प्रकट करके श्री कृष्ण द्रोपदीको लाने के लिए तैयार हो गये। वासुदेव दक्षिणके तटके साथ-साथ रथपर चढ़ कर चल पडे। नवरात्रि समुद्रके अधिष्ठाता देवने कृष्णको देवोपुनीत छह रथ दिये, जिनमें वैष्णव वह और पाण्डव धातुकी खण्डके भरत क्षेत्रमें पहुँच गये और अमरकका नगरीके उद्धानमें डेरे डाल दिये। उनके साथ कोई मेना न थी।

जब राजा पद्मनाभको कृष्ण तथा पाण्डवोंके आने की सूचना मिनी, तब वह अपनी चन्द्ररग सेना लेकर उनमें लड़ने के लिए नगरमें निवास। पर पाण्डवोंने उसे युद्धमें पराजित कर दिया और वह भाग कर अपने नगरमें जा घुमा और नगर द्वार बन्द करा दिये। पाण्डवोंके निए द्वार तोड़ कर अमरकका नगरीमें प्रवेश करना कठिन

था । तब कृष्णने द्वार तोड़ दिये और नगरको चूर-चूर कर दिया । नगर निवासी व्याकुल होकर भागने लगे । तब राजा पद्मनाभ, राजदरबारी और नगरके विशिष्ट लोग द्रोपदीकी शरणमें गये । सभी भयसे काप रहे थे । राजाने द्रोपदीसे निवेदन किया, “हे देवी! हे दयावती! हे सौम्य! हे पतिन्नते! हमें क्षमा करो, हमें अभयदान दो । मैं अपराधी तुम्हारी शरण आया हूँ ।”

तब शीलवती और कृपालु द्रोपदीने राजासे कहा, “तुम स्त्रीका भेष धारण करके श्री कृष्णकी शरण जाओ । वह नरोत्तम महादयालु है । जो व्यक्ति अपराध करके भी उनके चरणोंमें पड़ते हैं, वे उनको अवश्य क्षमा करते हैं । वे सब पर दयावान हैं । स्त्री और बालक पर वे अति दयावान हैं । जो शस्त्र और युद्धसे डरते हैं उनको कृष्ण कभी नहीं मारते ।”

द्रोपदीकी वात मान कर राजा पद्मनाभ स्त्रीका भेष वनाकरके अपनी रानियों सहित कृष्णके पास गया और क्षमा मार्गी । पृथ्वी-पति कृष्णने उन्हें क्षमा प्रदान की, अभयदान दिया ।

द्रोपदीने कृष्णके पास आकर प्रणाम किया और कुशल क्षेम पूछी और कृष्णने भी उसकी कुशलता पूछी । तब अर्जुनने द्रोपदी को छातीसे लगा कर उसकी समस्त विरह व्यथा दूर की, उसकी चोटी वाध कर द्रोपदीकी प्रतिज्ञा पूरी की । द्रोपदीने स्नान किया । कृष्ण, पाँचों पाण्डव और द्रोपदीने भोजन किया । अब द्रोपदीका सब दुख दूर हो गया ।

कृष्ण द्रोपदीको अपने रथमें चढ़ा कर समुद्र तट पर आया और अपना शख बजाया जिसके शब्द से दशों दिशाएं गूज उठीं ।

रास्तेमें भीमने अपने कौतुकी स्वभावसे कृष्णकी शक्तिकी परख-के लिए नावको छिपा दिया । पर कृष्ण द्रोपदी सहित दूसरे तटपर पहुँच गया । वात खुलने पर कृष्ण पाण्डवोंसे बड़े विरक्तित हुए

और कहने लगे, “प्रथम तो बड़ो मे हसी करना ठीक नहीं है और यदि उनको प्रसन्न करने के लिए हसी करनी भी हो, तो मौका तथा समय देखकर उनका भाव (मूड़) देखकर ही करनी चाहिए, अन्यथा नहीं।” पर पाण्डवोंने तो हसी करते समय इनमे से किसी वात का भी विचार न किया था। इसलिए कृष्ण उनमे उदास होकर कहने लगे, “हे कुपाण्डवो ! मनुष्य से न हो सकने योग्य मेरे अमानुपिक काम तुम जगतमें अनेक बार देख चुके हो। फिर भी तुम्हारा सन्देह न गया। इस गगाको पार करनेमें तुमने मेरी क्या शक्ति देखी ?” इस प्रकार उलाहाना देकर वे सब हस्तिनापुर आये।

हस्तिनापुर मे श्री कृष्णने अपनी वहन सुभद्रा और अर्जुनके पीत्र परिक्षतको हस्तिनापुरका राज दिया और पाण्डवोंको वहाँ से निकाल दिया।

इसके पश्चात् कृष्ण द्वारिकापुरी लौट गये और पाण्डव श्री-कृष्णके आदेश अनुसार हस्तिनापुर छोड़कर दक्षिण मथुरा मे जावसे।



नेमिनाथ दीक्षा कल्याणक

एक दिन युवा नेमिकुमार कुवेरके द्वारा भेजे हुए वस्त्राभूषण आदिसे सुशोभित राजाओं तथा बलदेव और कृष्ण आदि के साथ यादवोंसे भरी कुसुमचित्रा सभामे गये। राजाओंने अपने-अपने आसन छोड़कर उन्हे नमस्कार किया। श्री कृष्णने भी आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। फिर वे दोनों सिंहासन पर विराजमान हो गये। और वे दोनों सिंहासन पर बैठे हुए दो इन्द्रों या दो सिंहोंके सदृश सुशोभित हो रहे थे।

उस समय सभामे बलवानोंके बलकी चर्चा चल पड़ी। तब किसीने अर्जुनकी प्रशंसा की, तो किसीने युधिष्ठिर की। नकुल, सहदेव, बलभद्र और श्री कृष्णके बलकी प्रशंसा की। तब पद्मनाभ-बलभद्र बोले, “तुम लोग व्यर्थ इन सबकी बडाई करते हो। भगवान् नेमिकुमार-सा बल तीन लोकमे किसीमे नहीं है। वे पृथ्वीको उठा सकते हैं, समुद्रको दशों दिशाओंमे विसेर सकते हैं। इनसा बल सुर-नर किसी मे नहीं है।”

श्रीकृष्णने नेमिकुमारकी बडाई सुनकर जरा मुस्कराते हुए उनसे मल्लयुद्धमे बलकी परीक्षा करनेको कहा। इस पर नेमिकुमारने कहा, “हे अग्रज! इसमे मल्लयुद्धकी क्या आवश्यकता है? यदि आपको मेरा बल जानना ही है, तो लो मेरे पांवको इस आसनसे सरका

दो ।” पर श्रीकृष्ण उनके पाँवको टस-से-मस न कर सके और उन्होंने उनके बलको न केवल स्वीकार ही किया, वरन् उसकी प्रशसा भी की । और उनके बलको लोकोत्तर बताया । पर उनके मनमे नेमिकुमारके प्रति कुछ गका सी रहने लगी ।

श्रीनेमिकुमार और श्रीकृष्ण सुखसे अपना समय व्यतीत कर रहे थे कि तभी वहाँ एक घटना घटी ।

विजयार्द्धमे श्रुत गोणित नगरमे प्रसिद्ध और रण सग्राममे शूरवीर राजा वारण राज करता था । उसकी अनेक गुण-कला रूपी आभरणोंसे युक्त ऊपा पुत्री थी । वह अपने गुणों तथा रूपके कारण बड़ी प्रसिद्ध थी । इस लड़कीने प्रद्युम्न कुमारके पुत्र अनिरुद्धके गुण मुने, तो वस वही उस राजकुमारीके मनमे वस गया । उस सुन्दरीका चित्त अनिरुद्धकी प्राप्तिके लिए व्याकुल रहने लगा । पर कोई भी उसकी व्याकुलताका कारण न समझ सका ।

तब उसकी एक हितैषी सखीके पूछने पर राजकुमारीने अपने मनकी वात कही । उसने कहा यदि वह किसीको व्याहेगी तो अनिरुद्धको ही और किसी को नहीं । तब उसकी सखी सोते हुए अनिरुद्ध कुमार को रातमे उठा कर विद्याधरियोंके लोकमे ले गयी और राजकुमारी की बेज पर मुला दिया । दिन निकलने पर जब कुमारकी आखे खुली, तो पराये महलमे एक सुन्दरीको अपने पास देखकर वह चकित रह गया । वह हेरान था कि यह सुन्दरी शची है या पद्मावती है या कोई मनुष्य वधु है । वह भ्रममे पड़ गया, कि वह स्वप्न देख रहा है या जाग्रत है । तब राजकुमारीकी चित्रलेखा सखीने सब हाल अनिन्द कुमारको बताया और एकान्तमे दोनोंका गन्धर्व-विवाह करा दिया । वह नवदम्पति ऊपाके महलमे देव-देवागनामे नमान मुखमे नमय व्यनीत करने लगे । जब कृष्ण आदिने अनिन्द कुमारके अपहरित होने का नमाचार मुना, तब श्रीकृष्ण,

बलभद्र और प्रद्युम्नकुमार आदि तत्काल अनिरुद्धको लानेके लिए विमानसे राजा वाणके श्रुत शोणित नगरमे गये । पर राजकुमारी ऊषाके माता-पिताको पुत्रीके गन्धर्वविवाह का कोई ज्ञान न था । इसलिए राजा वाण श्रीकृष्ण आदिसे लड़नेको तैयार हो गया । पर श्रीकृष्ण आदि ने राजा वाणको पराजित कर दिया और वे अनिरुद्ध कुमारको उसकी नववधु सहित द्वारिका ले आये । उनके आने पर सबको प्रसन्नता हुई ।

इसके पश्चात् बसन्त ऋतु अपने सभी प्राकृतिक सौन्दर्य और छटाको लेकर द्वारिकामे आई । तब नगरके सभी नर-नारी और श्रीकृष्ण अपनी रानियो सहित गिरनार वनमे क्रीड़ा करने और बसन्त ऋतुका आनन्द लेने गये । वे विनती करके युवा नेमिकुमार को भी साथ ले गये । यद्यपि नेमिकुमारको इस क्रीड़ाके लिए कोई अनुराग न था, पर वह भी भाई-भौजाइयोके आग्रहके कारण उनके साथ वनको चले गये । समुद्रविजय आदि दसो भाइयोके तरुण आयु वाले सभी कुमार उनके साथ गये । प्रद्युम्नकुमार भी उनके साथ गया ।

गिरनार पर्वत पर उन राजकुमारों तथा रानियोकी चहल-पहलसे सुमेरु पर्वतके बनोके देव-देवांगनाओं सद्वग सुशोभित लगने लगा । सभी नर-नारियाँ पर्वतके नितम्ब पर स्थित बनोमे अपनी डच्छानुसार घूमने-फिरने लगी । उस समय बनमे बसन्ती फूलोकी सुगन्धसे सुगन्धित दक्षिणकी शीतल वायु सब दिशाओमे चल रही थी । आम वृक्षों का रस पान करनेवाली कोकिलाओकी मधुर कुहकुह सैलानियोके मनको मुग्ध कर रही थी । मधुपान करनेवाले भौंरे, मौलश्री आदिके वृक्षोपर गुजार कर रहे थे । फूलोके भारसे लताए नम्रीभूत हो रही थी । युवतियो द्वारा पुष्प चयनसे बेले कांप रही थी । ऐसे प्राकृतिक वासती सौन्दर्यमे तरुण पुरुषके साथ जहाँ-

तहाँ लता कु जो, सरोवरो और वापिकाओ आदि मे भ्रमण करके वसन्तका आनन्द ले रहे थे ।

वहाँ कृष्णने अपनी रानियोके साथ चैत्र मास व्यतीत किया । कृष्णकी रानियोने अपने देवर नेमिकुमारको भ्रमण कराया । केशव की सभी रानियाँ बड़ी वाचाल थी । वे अपने पतिकी आज्ञासे अपने देवर को नानाविधि वन क्रीडा कराने लगी । कोई भावज नेमि कुमारका हाथ पकड़ कर विहार कराने लगी । कोई उन्हे वन की गोभा दिखाने लगी और कोई उन्हे साल-तमाल वृक्षोकी टहनियोके पखोसे हवा करने लगी । कई भाभियाँ अशोक वृक्षके नये-नये पल्लवोसे करणाभरण या सेहरा वना कर उन्हे पहनाने लगी । कोई उन्हे पुष्प मालाएँ पहनाने लगी, कोई सिर पर मालाए बाधने लगी और कोई उनके सिरको लक्ष्य बनाकर उस पर पुष्प फेकने लगी । इस प्रकार युवा नेमिनाथ भाभियोके साथ वसन्तका आनन्द ले रहे थे । वे भाभियाँ बड़ी भक्ति भावसे उनकी सेवामे तल्लीन थी ।

वसन्त के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु आई । तब कृष्णकी प्रियाएँ नेमिकुमार से जल-क्रीडा करनेका आग्रह करने लगी । गिरनार गिरिधीतल भरनोसे महामनोहर लग रहा था । उन भरनोसे पवित्र जलसे तीर्थेभव भीजाइयोके आग्रहसे जल क्रीडा करने लगे । यद्यपि भगवान् स्वत् स्वभाव मे रागरूप रजसे पराड़मुख है, तथापि उस ममय जलमे तैरना, दुवकी लगाना, दुवकी लगा कर दूर निकलना उनके लिए साधारण सी वात थी । वे पानीकी पिचकारियाँ मार रहे थे । भाभियाँ भगवान् नेमिनाथके मुख पर जल फेक रही थी और नेमि कुमार उन पर दोनो हाथो से जल फेक रहे थे । नेमिकुमारने भभी भाभियोको जल क्रीडा मे हरा दिया, वे पीछे हट गयी । ऐसी जल क्रीडा किसीने कभी नहीं देखी । इस जल क्रीडासे उन तरणियो का ग्रीष्मदाह मिट गया । वे तृप्त हो गयी । करणाभरण खिसक गये, मन्त्रके तिनक मिट गये, अधर धूमर हो गये, कटि मेखलाए

शिथिल हो गयी और केश बिखर गये। उनके शरीर थक कर चकनाचूर हो गये। अब उन सबने स्नान करके वस्त्र बदले, नेमि-कुमारको भी नये वस्त्र पहनाये गये।

स्नान के पश्चात् नेमि कुमारने कृष्णकी अति प्रिया पत्नी और अपनी भाभी जामवन्तीको अपने वस्त्र निचोड़नेका आखसे इशारा किया। भाभीने इसका बुरा माना और भौंहे टेढ़ी करके कहा कि ऐसी आज्ञा तो उसके महाबलवान, नाग शय्यापर सोने वाले, मेघ की ध्वनि को जीतनेवाले शखको बजानेवाले और शारग धनुषको चढ़ानेवाले कृष्ण भी कभी नहीं करते। देवरानियो-जेठानियोने भी जामवन्तीको समझाया और नेमि कुमारने अपने ब्लको शख वजा कर, धनुप चढ़ा कर और नाग शय्या पर सोकर दिखाया। शखकी ध्वनि से दिशाए गंज उठी, स्त्री पुरुष भयभीत हो गये और स्वयं कृष्ण चितत हो गये। जब कृष्णने देखा कि यह सब नेमिकुमारने जामवन्तीके कहने पर किया है, तब वे चितत एवं हर्षित हुए। उन्होंने नेमिकुमारका प्रेमसे आलिगन किया।

इस बसन्त ऋमणि और ग्रीष्म कालीन जल क्रीड़ा से कृष्णको यह समझते देर न लगी, कि अब नेमिकुमारका विवाह उनके योग्य युवतीसे किया जाय। उसी समय उन्होंने भोज विश्योकी राजमति या राजुल राजकुमारी नेमिकुमारके लिए मार्गी, अपने वन्धुजनोंको उसके पाणिग्रहण सस्कारकी सूचना दी और समस्त राजाओं को स्त्रियों सहित अपने पास बुलाया। सभी परम रूपवान स्त्री-पुरुष अनेक आभूपणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित नगरमें भोजनके लिए आये।

ग्रीष्मकृतु बीतने पर वर्षा कृतु अपनी मेघ मालाओं, गर्जन और शीतल जलकरण की वर्षा लेकर आई। मोर और चातक वर्षामें मुख अनुभव कर रहे थे। जहाँ एक तरफ वरसात कुछ आदमियोंको

जान्ति देती है, वहाँ विरही आदमियोंको दु सह आताप देती है। सावनका महीना आया। मेघोंके समूह बरसने लगे। सूर्यकी तपत दरधवनमें पक्कियोंसे बूँदे पड़ने पर सर्व प्रथम बाष्प और सौधी-सौधी सुगध ऐसे निकल रही थी, मानो वनावलीके हर्ष सुखोच्छ्वास निकलने लगी हो। कडकती विजली, इन्द्रधनुष और काले-काले वादल बरसातके प्राकृतिक सौन्दर्यको दुगना कर रहे थे। सभी प्रकार के वृक्ष और लताएं पुष्पोंसे सुगोभित थी। वन, पहाड़ और तल-हटी सभीमें हरियाली उनकी शोभा बढ़ा रही थी। ऐसी वर्षा आने पर त्रिकाल योगको धारण कर तपस्या करनेवाले मुनि गिरिके गिररकी तप्तायमान गिलाओंसे उत्तर कर वृक्षोंके नीचे ध्यानस्थ हो गये, जहाँ ठड़ी पवन चल रही थी और बूँदे टप-टप गिर रही थी।

ऐसे सुहावने समयमें श्रीनेमि जिनेश्वर चारघोड़ोंके अति प्रभावान रथ पर सवार होकर विवाहके लिए चले। साथमें राजाओंके तर्ण समवयस्क पुत्र और मित्र थे। नगरकी कुंछ वधुए तृष्णित नेत्रोंसे नेमिकुमारके सौन्दर्य रूपी जलका पान करने लगी। कुमारका चित्त दयासे पूर्ण था और उनका दर्जन मनोहर था। पवनके योगसे उस समय समुद्रने जो उछाल लिया, तो ऐसा लगा मानो समुद्र नटके समान नृत्य कर रहा है और समुद्रकी गर्ज वाजोंकी मधुर ध्वनिके समान लगने लगी। समुद्रकी तरगे नटके हाथोंके समान भिन्न-भिन्न भावोंका प्रदर्शन कर रही थी। नेमिकुमार उपवनोंसे होकर वनमें जा रहे थे और ऊपरमें वृक्षोंके पुष्प उन पर गिरकर कुसुमाजलिके समान चढ़ रहे थे।

अचानक मार्गमें नेमिकुमारने एक तरफ कुछ पशुओंको घिरा हुआ देखा। ये पशु भयनेकाप रहे थे, अत्यन्त विह्वल थे और क्रूरपुरुप उन्हें चहा धेरे हुए थे। पशुओंका भय मिथित क्रन्दन सुनकर नेमिकुमारने अब्दों वही नकवाया और सारथीमें उन पशुओंके वारेमें कृदा। तब सारथीने वडी विनम्रतामें हाथ जोड़ कर बताया, “हे

नाथ ! आपके कुलके राजादि तो अन्न-गाकाहारी हैं, उन्हें ग्रभक्ष्य-का त्याग है, पर मासाहारी वरातियोके लिए भोजनके लिए ही ये पशु यहाँ एकत्रित किये गये हैं।”

सारथीके ये वचन सुनकर दयानिधि नेमि कुमारने तुरन्त उन पशुओं को बाढ़ेसे मुक्त करा दिया । फिर नेमि कुमारने सभी राज-पुत्रोंको सम्बोधन करके कहना शुरू किया, “हे राजपुत्रो ! इन पशुओंका घर-बार नहीं, तृण और जल इनका आहार है और ये निरपराध हैं । जो इन निर्वल प्राणियोंको मारता है, उसके समान निर्दयी कौन होगा ? रणमें विजयकीर्ति प्राप्त करनेवाले योद्धा सामने योद्धाओंपर ही प्रहार करते हैं, निर्वलोंपर नहीं । हाथी, घोड़े और रथका सवार अपनेसे लड़ने को तत्पर आदमीसे लड़नेको तैयार होता है, दूसरे पर वार नहीं करता । सामन्तोंकी यह रीति नहीं कि वनके सिंह आदि पशुओंसे तो भागे और महा दुर्वल मृग और बकरे आदि को मारे । हिंसादि पापोंका आचरण करनेवाले व्यक्तिके कस्तणा कहाँ ? यह कितने आश्चर्यकी बात है, कि यह आदमी विस्तीर्ण राज्यकी इच्छा तो रखता है, पर जीवोंकी हिंसा में तत्पर रहे । देखो मैंने पूर्व जन्मोंमें कहाँ-कहाँ भ्रमण किया है, वहृतसे सुख भोगे हैं, फिर भी मैं तृप्त न हुआ । सासारिक सुख सर्वथा असार है ।”

यह कह कर नेमिकुमार विरक्त मनसे द्वारिका लौट पड़े । वहाँ प्रभुने स्नान किया और सिंहासनपर बैठ गये । वहाँ वहृतसे राजा, कृष्ण और वलभद्र बैठे थे । तब नेमिकुमार तपके लिए उठने लगे । यह देखकर कृष्ण, वलभद्र और भोजविंशियोंने नेमिनाथको विविध प्रकार की अनुनय-विनय करके और आगा-पीछा समझा कर रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ । जिस प्रकार पिंजरा तोड़ कर निकलनेको उद्यत प्रवल सिंहको कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार तपके लिए जानेको तैयार दृढ़ सकल्पी नेमिकुमारको रोकनेमें

कोई समर्थ न हो सका । फिर नेमि कुमारने अपने माता-पिता आदि परिवारके लोगोंको अपना निर्णय और ससारकी स्थिति अच्छी तरह समझाई ।

इसके पश्चात् नेमिनाथ जी ध्वजाओ, सफेद छत्रो और रत्न आदि से सुसज्जित उत्तरकुरु नामक पालकीमें सवार होकर चल पडे । पालकी पर सवार नेमिनाथ उदयाचलकी भित्तिपर आँख चन्द्रमाके समान लग रहे थे । वे गिरनार पर्वतपर पहुँचे । गिरनार पर्वतकी प्राकृतिक शोभा और लताओ तथा पुष्पोंके सौन्दर्यका वर्णन करना कठिन है । वहाँ नेमिनाथने अपने हाथों से अपने सिरके कुटिलकेशों को इस प्रकार उखाड़ दिया, मानो वे चिरकालसे लगी हुई कुटिल अल्योंकी परम्पराको उखाड़ रहे हो । उनका तप कल्याणक शुरू हो गया । उनके साथ अनेक राजाओंने भी मुनि दीक्षा ली । एक दिन श्रीनेमिनाथ द्वारिकामें आहारके लिए आये और वहाँ उत्तम तेजधारी प्रवरदनने आहार देकर महिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

इधर दु खसे पीडित भोजवंशके लोग नेमिकुमारके इस प्रकार चले जाने और अपनी बेटी राजुलके भविष्यसे चितित करुण क्रदन मुखसे रुदन कर रहे थे । अपार वियोग से दुखी राजपुत्री राजमती अपनी नज्जापूर्ण चेष्टाओंसे युक्त मनमें अत्यन्त सतप्त थी । वह अत्यन्त प्रबल शोकसे ग्रस्त निरतर विलाप करती रहती थी । उसके आभूपरण और केशोंके जूँडे गिथिल हो गये थे और वह करुण शब्दों ने अति अधिक रोती रहती थी । उसके आसुओंसे उसका हार और ढाती गीली हो रही थी । कभी वह अपने दुर्दृष्टि को उलाहना देती और कभी वह अपने अत्यन्त मनोहर वरको दोप देती । उसके सगे नम्बन्धियों और माना-पिताने उसे बहुत समझाया कि वह नेमि-गुमानवा विचार छोड़ दे, उसका किसी दूसरे सुन्दर राजकुमारसे विवाह रुद दिया जायेगा । पर वह न मानी । उसने कहा, “क्षत्री

कन्याए जीवनमे एकवार पति चुनती है, वार-वार नहीं। वह व्याहेगी तो नेमिकुमारको, बरना वह भी उनके पथ पर चलेगी और साध्वी बन जायेगी।” राजुल और उसकी सखियोंने नेमिनाथसे बड़ी विनम्रतासे घर लौटने की प्रार्थना की, पर वे टस-से-मस न हुए। अन्तमे राजुलने भी अपने सब अलकारों को त्याग कर तप धारण करने का विचार किया। वह भी तपस्विनी बन गयी। यह नेमिनाथका महानिष्ठमण् और तप कल्याणक है।



केवल ज्ञान प्राप्ति और समवसरण

श्री नेमिनाथ सम्यग्दर्ग, ज्ञान और चरित्र और तपसे सुशोभित हो गये। सभी प्रकार की वाईस परीपहो—कष्टोको वे सहने लगे। अप्रश्नन और महानिन्द्य आर्त और रौद्र कृध्यान को त्याग कर वे सदा धर्म-ध्यान और शुल्क ध्यानमें रत रहने लगे। चित्तके एकाग्र निरोध को ही ध्यान कहते हैं। ध्यानके लिए मनका स्थिर होना बड़ा आवश्यक है। वे अनिष्ट सयोग और इष्ट वियोगमें सदा मनको सम रखते थे।

दुष्ट और क्रूरचित्त प्राणीके जो भाव होते हैं, उनको रौद्र ध्यान कहते हैं।

जो मोक्षाभिनापी जीव है, वे सदा भ्रम ध्यान और शुल्कध्यान में अपनी वृद्धि लगाते हैं। धर्मध्यानकी सिद्धिके वास्ते योग्य द्रव्य, योग्य धंत्र, योग्यकाल और योग्यभावकी आवश्यकता है अर्थात् उनमें पर्याप्त, आर्य धेवका एकान्त और निर्जन्तु स्थान, समशीतोष्ण-कान्त और भावोंमें निर्मलता चाहिए। जो तपस्वी समस्त परीपहो को जीतनेमें समर्थ हा, वह धर्म ध्यानको ध्याता है। ऐसा व्यक्ति महागम्भीर तदा त्वम्भ समान निश्चल होना है और पद्मासन

लगाता है। उसके नेत्र निश्चल और समस्त इन्द्रियोंके काम निवृत्ति रूप होते हैं। ऐसा धर्मध्यानी ही शुल्क ध्यान लगा सकता है। ऐसा ध्यानी अपने मनको नाभिके ऊपर हृदयमें, मस्तकमें या ललाटमें रोककर ध्यान करता है और उसकी हृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर रहती है। वह व्रतशील और तपादि का आचरण करता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थोंमें मोक्ष पुरुषार्थ-सर्वोत्कृष्ट है। जीवका वास्तविकहित इसीमें है। यह कर्मके क्षय या मिटनेसे होता है। और कर्मोंका क्षय शुल्क ध्यान से होता है। समस्त कर्म प्रकृतियोंका अभाव होना मोक्ष है। यह मोक्ष अनन्त सुख रूप है। यह मोक्ष मत्र साध्य और सहज साध्य है। तीर्थकरों और उसी जन्मसे मोक्ष जानेवाले मनुष्योंके लिए यह सहज साध्य है। पर जन्मान्तरमें मोक्ष जानेवाले के लिए यह मत्र साध्य है।

‘सिद्ध पौद प्राप्तिका कारण धर्मध्यान और शुल्कध्यान है। इसलिए भगवाननेमिनाथने छप्पन दिन तो धर्मध्यान किया। और आसोज सुदी प्रथमाकें दिन प्रभात समयमें शुल्कध्यान रूपी अग्निसे चारों घातिया कर्मोंको भस्म करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्गन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यको प्राप्त किया। अब उन्हें केवल ज्ञान अर्थात् पूर्णज्ञान हो गया। यह भगवान नेमिनाथका केवलज्ञान कल्याणक हुआ।

समस्त जगतमें और देवलोकमें ‘जय, जय’ का शब्द गूँज उठा। सभी प्रकार के देव भगवानके केवलज्ञानकी पूजा करनेके लिए तैयार हो गये और उन्होंने गिरनार पर्वतकी प्रदक्षिणा करके समस्वरण अर्थात् प्रवचन सभामें प्रवेश किया। सबने उनको नमस्कार किया। पहले वे तपकल्याणकके समय गिरनार पर्वत पर आये थे। अब दूसरी बार वहाँ आये। इसी पर्वतसे वे मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस

कारण यह पर्वत अतिपवित्र हो गया, महातीर्थ बन गया। यहाँ ही नेमिनाथ जिनेन्द्र विराज रहे थे। इसकी चप्पा-चप्पा भूमि और रजका प्रत्येक करण अतिपवित्र हो गये।

फिर प्रभु का समवसरण बनाया गया। यह समवसरण तीन जगनके प्राणियोंको गरण देता है।

द्वारिकाके स्त्री-पुरुष सभी यदुवशी और भोजवशी आदि गिरनार पर्वतपर बलभद्र नारायणके साथ चढ़े। बाहर-भीतरसे समवसरणको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। समवसरणकी गोभा स्वर्गकी गोभाको मात करती थी। इसकी भूमि इन्द्रनीलमणि-मर्यी काचके समान निर्मल थी। इसमें अनेक राजमार्ग होते थे। इसमें देव मनुष्य और पशु-पक्षी सभी समान रूपसे धर्मप्रवचन मुनते थे। इसमें मान स्तम्भ होते थे। सरोवर भी थे। इसके द्वारा पर तोरण, छत्र, चमर, कलग, भारी और दर्पण आदि आठ मगल-द्रव्य रखे होते हैं। उसमें नाश्यशालाओंमें देवागनाए नृत्य करती थी। जगह-जगह ध्वजाए लगी हुई थी। कलशोंमें शुद्ध जल होता था और वे कमलोंसे ढके हुए थे। समवसरण में स्थान-स्थानपर स्फूर्ति बने हुए थे।

मुर-नर सभीने वहाँ जाकर भगवान् नेमिनाथको नमस्कार करके उनकी इस प्रकार स्तुति की, “हे महादेव ! तुम विजयरूप हो। हे महेश्वर ! तुम महामोहको जीनेवाले हो। हे महावाहु ! आपके नमान जीत का स्वरूप और कोई नहीं है। हे विशाल नेत्र ! आप गव कुञ्ज देवनेवाले और सर्वज्ञ हो तथा आप अद्वितीय हो।”

उसी समय गजा वनदत्तने मुनिके ब्रनग्रहण किये और वह भगवान् नेमिनाथका मुन्य गग्नधर बन गया। वहाँ पर बहुतसे मुनि ग्रन्थ-आपने न्याय पर वैदेश प्रत्यक्ष धर्मके न्यायपके नमान थे।

एक सभामे राजमती आर्यकाओंके गणकी प्रधानाके रूपमे विराजमान थी । छह हजार रानियोने उसके साथ दीक्षा ली थी । बहुतसी श्राविकाएँ भी वहाँ थीं । राजमती लज्जा, क्षमा, और शान्ति आदि गुणोंसे सुशोभित थी, मानो धर्मकी प्ररूपणा ही थी । धर्मका स्वरूप धारण किये विराज रही थी ॥ ॥ भगवान् समस्त पाप-कर्मोंके नाशक हैं । उनकी भक्तिसे पाप दूर हो जाते हैं ।

बारहवीं सभामे सिह, गज, मृग, वृषभादि थलचर और हस तथा गरुडादि नभचर अनेक जातिके तिर्यंच बैठे थे । भगवानके आतिशयसे सबकी अविद्या मिट गयी और उनके पारस्परिक वैर-भाव विलीन हो गये ।

बहुतसे पुरुष मुनि हो गये, बहुत से पुरुषोंने श्रावकके व्रत ग्रहण किये । इसी प्रकार बहुत-सी स्त्रियोंने आर्यिकाकी दीक्षा ली और बहुतोंने श्राविका के व्रत ग्रहण किये ।

इस प्रकार वारह सभाओंसे मण्डित समवसरणमे तीर्थकर नेमिनाथ सिंहासन पर विराजमान थे । उनकी दिव्यध्वनि समस्त जीवोंको अभय देनेवाली थी ।

देव दूसरे देवोंको बुला रहे थे और कह रहे थे कि ये भगवान् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, समस्त गुणोंका पुज और जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं । जो अपना कल्याण करना चाहते हों, उन्हे यहाँ आकर नेमिनाथको पूजना चाहिये । सभी आकर भक्तिपूर्वक समव-सरणमे बैठने लगे । इतना ही नहीं, जो कुकर्मा, पापी, नीच, विकलागी तथा विकलङ्घित प्राणी थे, वे भी बाहर से ही भगवानकी बन्दना करने लगे । नमस्कार, 'जय जय' और स्तुतिसे समस्त समवसरण गूँज रहा था । कुछ ईश्वर ध्यानमे निमग्न थे । इस प्रकार सतोका समूह वहाँ विराजमान था ।

भगवान नेमिनाथके प्रभावसे वहाँ उपस्थित सुर-नरों आदिका भय, द्वेष, विपयाभिलाषा और रति आदि विकार दूर हो गये । न वहाँ छीक, खासी, जम्हाई और डकार आदि विकार थे, न निद्रा, तन्द्रा, क्लेश, भूख और प्यास आदि किसीको संताते थे । समव-सरणमे सब जीवोंका कल्याण-ही-कल्याण था, किसीका अकल्याण नहीं था । समवसरणकी भूमि अद्भुत थी । यह भगवानकी वाह्य विभूतिकी बात है, उनकी अतरणकी विभूतिका वर्णन कौन कर सकता है ।



नेमि प्रवचन

समवसरण नित्य उत्सवो और अनन्त कल्याणोंका स्थान होता है। धर्म सुननेके इच्छुक श्रोता वहाँ हाथ जोड़े बैठे थे। वरदत्त गणधरने तीर्थकर नेमिनाथको नमस्कार करके पूछा, “भगवन् ! जीवोंके हितकी क्या बात है ? उनकी भलाई किस बातमे है ?”

गणधरके निवेदन पर उनकी जो दिव्य ध्यनि हुई, वह चारों दिशाओंमे सुनार्द देती थी, सभी उसे समझते थे, चार वर्णों और सधोंको मार्ग दिखानेवाली तथा आश्रय देनेवाली थी। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थों रूप चार फलोंको देनेवाली थी। शास्त्रो अयवा समस्त विद्याओं के चार भाग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और प्रथमानुयोग कहे गये हैं। द्रव्यानुयोग मे जीव तथा अजीव आदि का वर्णन होता है, करणानुयोग मे तीन लोक भूगोल आदि का वर्णन होता है, चरणानुयोग मे मुनियों तथा गृहस्थोंके आचरण आदि का वर्णन होता है और प्रथमानुयोग मे पुराण, चरित्र तथा कथा साहित्य होता है। भगवानकी दिव्यध्यनि इन चारों अनुयोगोंकी जननी मानी जाती है। यह वाणी प्राणियोंकी चतुर्गतिके चक्करको समाप्त करके मोक्ष पद दिलानेवाली होती है। इसके अनेक रूप होते हैं। इसमे निष्ठ्य नय, और व्यवहार नय, रत्नत्रय, चार अनुयोगों, चार कषायोंके नाशके उपायों, पचपरमेष्ठीकी भक्ति, छह द्रव्यों, सात व्यसनों और सप्त अगोका वर्णन,

आठ कर्मोंके नाश, आठ गुणोंका वर्णन, नव नयों और दस लक्षण धर्म आदि का वर्णन होता है। इस जिन वारणीकी महिमा जिनेश्वर देव ही जानते हैं, दूसरा नहीं। यह जिनवारणी जगतका उद्धार करने के लिए जिनेश्वरके मुखसे प्रकट हुई।

यह जिनवारणी जीवोंके हितको बतानेवाली और अहितको दूर करनेवाली होती है। यह जीवोंको उनके यथायोग्य धर्ममें प्रवृत्त करती है और अशुभसे हटाकर शुभमें प्रवृत्त करती है। यह जीवों के सचित कर्मोंको शिथिल करनेवाली या पूर्ण रूपसे नष्ट करके मोक्षपद दिलानेवाली है।

इस वारणीके अक्षर मधुर, स्निग्ध, गम्भीर, दिव्य, उदात्त और स्पष्ट होते हैं, अनन्य रूप हैं, एक है और अतिशय निर्मल होती है। केवल ज्ञानियों द्वारा इसका व्याख्यान होता है, वही इसके वक्ता हैं और सब श्रोता हैं।

भगवान् नेमिनाथने अपने प्रवचन में कहा —

“यह जीव स्वय सब कर्म करता है और वही उसका फल भोगता है। जीव स्वय ससारमें भ्रमण करता है और स्वय उससे मुक्त होता है। अविद्या तथा रागसे सक्तिष्ठ होता हुआ ससार सागरमें वार-वार धूमता है और विद्या तथा वैराग्यसे शुद्ध होकर पूर्ण स्वभावमें स्थित होकर सिद्ध हो जाता है। अध्यात्म-ज्ञान दीपक के समान मोक्षमार्गको दिखानेवाला है। ससारके जीव दो प्रकार के होते हैं, भव्य और अभव्य। भव्य जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं और अभव्य जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

“मोक्षका उपाय आत्मध्यान और सूत्रका अध्ययन है। सम्य-
ग्दर्शन, गम्भक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इसका मार्ग है। इनको रत्न-
पद कहने हैं। जीवादि भात नत्त्वोंका विश्वास सम्यग्दर्शन, इनका ज्ञान
सम्यक् ज्ञान और अशुभकी निवृत्ति सम्यक् चारित्र कहलाता है।

जीव जन्म-मरणसे रहित है। आत्मा ज्ञान आदि अनन्त गुण मात्र है। यह जीव आप ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता और भोक्ता है और कर्मों-का त्याग करनेवाला है। इसके प्रदेश फैल कर लोकके समान बड़े हो सकते हैं और सकुचित होकर शरीरके बराबर बन जाते हैं। इसमें न कोई वर्ण है, न रस है, न गध है, और न स्पर्श है। ये गुण तो पुद्गलमें होते हैं, आत्मामें नहीं। आत्मा अमूर्ति स्वरूप है। यह शरीरसे भिन्न है।

“अजीवके पाँच भेद पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं। द्रव्य या पुद्गलके अनेक रूप होते हैं। इसके नित्य स्वरूपके वर्णनको द्रव्यार्थिक नय कहते हैं और अनित्य स्वरूपके वर्णनको पर्यार्थिक नय कहते हैं। जैसे स्वर्णका वर्णन और उससे बने कडे आदि का वर्णन। वस्तुकी एकता द्रव्य है और अनेकता पर्याय है। पुद्गलके छोटे-छोटे भागको अणु कहते हैं और उसके फिर भाग नहीं हो सकते। अणुओंके समूहको स्कंध कहते हैं। धर्म-का लक्षण गति है, यह चलनेमें सहायक होता है। अधर्मका लक्षण स्थिति है, यह ठहरानेमें सहायता करता है। आकाश स्थान देता है और काल वर्तता है। कालके दो भेद निश्चय काल और व्यवहार काल हैं। कालाणु द्रव्यको निश्चय काल कहते हैं और समय आदि जैसे घड़ी, घटा, दिन और मास आदि को व्यवहार काल कहते हैं।

“जीव, अजीव, आश्रव, वाध, सवर, निर्जरा और मोक्ष सात तत्त्व हैं। मन, वचन और कायाकी प्रवृत्तियोंके द्वारा कर्मके आने को आश्रव कहते हैं। इसके दो भेद पुण्याश्रव और पापाश्रव है, अर्थात् अच्छे या शुभ कर्मोंका आना और बुरे कर्मोंका आना। क्रोध, मान, माया और लोभ चार कपायोंकी तीव्रता, मध्यता या मदताके अनु-सार कर्मोंका आश्रव भी तीव्र, मध्य या मन्द होता है। जैसा कारण होता है वैसा कार्य होता है। कपाय कर्मोंके आने का कारण है और कर्मोंका आश्रव या आना कार्य है। आश्रवके अनेक भेद हैं। किसी

को दुख पीड़ा मत दो, सब पर दया करो । किसी की निन्दा या स्व-प्रशसा न करो । अपने को छोटा समझना और गर्व न करना और दूसरों के गुणों की प्रशसा करना अच्छा है । जो अशुभ काम है वे अशुभ कर्मों को लाते हैं और जो शुभ काम है उनसे शुभ काम आते हैं ।

“हिंसा, भूठ, चोरी, कुर्गील या अव्याचर्य और परिग्रह ये पाँच पाप हैं । इनको छोड़ना अर्थात् उनसे निवृत्ति होना व्रत कहलाता है । इन पापों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत कहलाता है और इसे साधु ही पालते हैं । इनका कुछ त्याग अगुव्रत कहलाता है और वह गृहस्थों के पालन के लिए है । व्रती के मनमें कोई आकूलता शल्य न होनी चाहिये ।

“हमें सब जीवों के प्रति मैत्री भाव, गुणवानों के प्रति प्रसोद या हर्ष का भाव, दुखी प्राणियों के प्रति दया भाव और दुष्ट प्राणियों के प्रति मध्यस्थताका भाव रखना चाहिए । यह चार भावनाएँ धर्मध्यान का मूल मानी गयी हैं ।

कपायसे कलुपित प्राणी हर क्षण कर्म के योग्य पुद्गलों को यहरा करता रहता है, अपनी ओर खीचता रहता है । यही कर्म वन्ध कहलाता है । यह वन्ध अनेक प्रकार का होता है । भविष्यमें कर्मों का आना रुक जाना सबर कहलाता है । इसके लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं, अनेक शुभ भावनाएं करनी होती हैं और कष्टों या परिप्रहों को सहना होता है । इसमें आगे आनेवाले कर्म आने वन्द हो जाते हैं । पर मन्त्रिन कर्मों को तप आदिसे काटना निर्जरा कहना है । कर्मों की निर्जरा स्वयं भी होती रहती है और प्रयत्नपूर्वक भी की जाती है । यह ऐसे ही है, जैसे आम आदि फलों का अपने आप पकना और गिर जाना या छत्रिम साधनों में उन्हें शीघ्र पकाना । याथु नोग अपने तप-नयम आदि में मन्त्रिन कर्मों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं । मन्त्र कर्मों से छुटकारा पाना, आवागमन का अन्त कर देना,

मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है। यही प्राणियोंका ध्येय होना चाहिये।

“गृहस्थीको सदा श्रद्धापूर्वक अपनी व्यक्तिको विना छिपाये दान करना चाहिये। मुनियो, आर्यिकाओं, श्रावको और श्राविकाओं और अव्रती सम्यक्त्व दृष्टियोंको भक्ति तथा विनयपूर्वक दान देना चाहिये। और दूसरे सब जीवोंको दयाभावसे दान देना चाहिये। दानके चार भेद आहार दान, शास्त्र दान, औपधि दान और अभयदान हैं। सभी दान समान रूपसे आवश्यक हैं। किसी व्यक्तिको जिस वस्तु-की आवश्यकता हो, उसे वैसा ही दान देना चाहिये। दाताका मन उज्ज्वल, निर्लोभ, नि स्वार्थ और कोमल होना चाहिए। दान परिग्रह कम करनेका बड़ा साधन है। गृहस्थके छह दैनिक कर्तव्योंमें दानका बड़ा महत्त्व है।”

भगवान् नेमिनाथके धर्मोपदेशको सुनकर श्रोताओंने हाथ जोड़ कर उन्हे नमस्कार किया। श्रोताओंमें से कुछने मुनि दीक्षा ली और बहुतोंने श्रावकके व्रत ग्रहण किये। मुनि दीक्षा लेनेवाले व्यक्तियोंमें बहुतसे राजा थे। बहुत सी रानियोंने आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये। बलभद्रकी माता रोहिणी आदि अनेक रानियोंने भी आर्यिका व्रत ग्रहण किये।

प्रवचनके पञ्चात् सभी श्रोता जिनेश्वरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थान लौट गये।



भगवद् विहार

महापुरुष सदा स्वपरहित के काम करते हैं। केवल ज्ञान प्राप्ति के पञ्चात् गिरनार पर्वतपर धर्म प्रवचन करके तीर्थकर नेमिनाथने जगतके जीवों को ससार समुद्रसे पार करनेके लिए, उनका उद्धार करने के लिए, गिरनारसे नीचे उतरकर विहार किया। मार्गमे स्थान-स्थान हर भगवान्चार हो रहे थे। सभीके हृदयोमे आनन्द, सुख और हर्षके भाव उमड़ रहे थे। तीन लोकके जीव हर्षित हो रहे थे, क्योंकि अब भगवान् नेमिनाथ वाईसवे तीर्थकर विश्वके कल्याणके लिए विहारके लिए जा रहे थे। आगे-आगे धर्म चक्र चल रहा था। सब प्रकारके वाजोंके शब्दों, मगल शब्दों और गायनोसे धरती आकाश उद्घायमान हो रहे थे, गूँज रहे थे। स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे 'भगवान् नेमिनाथकी जय' के नारे लगा रहे थे।

मार्गमे कही भगवत कथा हो रही थी, तो कही आनन्द रूप तान्य हो रहा था और कही नाच-गाने हो रहे थे। कही-कही भक्त लोग मगल स्तोत्रोसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे, तो कही 'जय जय' शब्द कर रहे थे। कही भक्त लोग कर अजुली जोड़कर नमस्कार कर रहे थे। सभी भगवान्‌की सेवामे रत थे। ऐसा लगता था, मानो पृथ्वी भगवान्‌की पूजा कर रही हो। उस समय प्रसन्नता ने भग नमुद, गन्मध्य वन्दियोंमे भूगोभित ऊपर उठे हुए तरग़ूपी हाथोंमे अजुली बाधकर बैला हप्ती मस्तकमे भगवान्‌को नमस्कार कर रहा था।

मार्गमे देश-देशके राजा प्रभुको नमस्कार कर रहे थे । स्थान-स्थान पर करबद्ध स्त्री-पुरुष यह प्रार्थना कर रहे थे, “हे देव ! कृपा करो, जगतको जन्म-मरणके चक्रसे निकालो । हे नाथ ! आपकी जय हो । हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो । हे देव ! आपकी जय हो । हे समीचीन धर्मके धारक ! हे सबके शरणभूत लक्ष्मीके धारक ! आपकी जय हो । इस प्रकार ‘जय जयकार’ की ध्वनिके बीच जिनवरे जीवोंपर दया करके अद्भुत विभूतिसे विहार कर रहे थे । लोकके कल्याणके लिए विश्वेश्वर विहार कर रहे थे और उनके आगे-आगे देश-देशके राजा चल रहे थे । जैसे पतिव्रता स्त्री पतिकी अनुगामिनी होकर प्रशसनीया होती है, उसी प्रकार महाविभूति रूपी स्त्री सर्वज्ञकी अनुगामिनी बनकर शोभा प्राप्त कर रही थी । भगवान्‌के समवसरणकी विभूति अति सुन्दर और प्रशसनीय थी । वायुके मन्द-मन्द झोकोसे भगवान्‌का मार्ग साफ हो रहा था । कोई दृष्टि हुई विजलीकी चमकसे समस्त दिग्गाओंके अग्रभाग प्रकाशित हो रहे थे और मेघ सुगन्धित जलसे मार्ग पर छिड़काव कर रहे थे । उनके आगे-आगे सुगन्धिदायक धूपके घडे लिये अग्नि कुमार देव चल रहे थे । धूपकी सुगन्ध लोकके अन्त तक फैल रही थी । तोरणों से समस्त मार्ग सुशोभित हो रहा था । तोरणोंकी मध्य भूमिमे जो ऊचे-ऊचे केलेके वृक्ष तथा ध्वजाए लगी हुई थी, उनसे आच्छादित मार्ग इतनी सघन छायासे युक्त था कि वह सूर्यकी छविको भी रोकने लगा था । वनके निवासियोंने वनकी मजरियोंके समूहसे पीला पुष्प मण्डप तैयार किया था, जो उनके अपने पुण्यके समूहके समान दीख रहा था । ऐसे मार्गमे दयाकी मूर्ति, अहितका दमन करनेवाले स्वयं ईश एव देदीप्यमान श्री नेमिनाथ पुष्प मण्डपमे समस्त जीवोंके हितके लिए विहार कर रहे थे । प्रभुके पीछे भास्तुल सुशोभित हो रहा था और अति निर्मल तीन छत्र उनके ऊपर ढल रहे थे । प्रभुके शरीरकी ज्योति और तेजका प्रतिविम्ब मण्डल रूप हो गया था । जिस धर्म चक्रने सूर्यको जीत लिया है और जिसमे एक-

हजार धाराए हैं, उसकी कातिसे आकाशमें प्रकाश हो रहा था । ऐसा धर्म चक्र उनके आगे चल रहा था । तीन लोकके प्रभु पृथ्वीपर विहार कर रहे थे और सभी उन्हें नमस्कार कर रहे थे ।

प्रभुके अहिंसामयी महान् व्यक्तित्वके प्रभावसे विहारमें जो भी उनके सम्पर्कमें आये, उनमें परस्परमें कोई वैर-भाव न रहा, कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीकी हिंसा नहीं करता था । सभी सुखसे समय व्यतीत कर रहे थे । सर्व तथा नेवले और सिंह तथा मृगादि सभी जाति विरोधी जीव निवैर हो गये थे । भगवन्तके प्रभावसे जीवों की दुर्बुद्धि दूर हो गयी । जहाँ-जहाँ भगवान् जाते थे, वहाँ सभी दिगाओंके राजा पूजाकी सामग्री लेकर पूजनेके लिए आते थे । सभी नरेश्वर उनके साथ थे । सभी जातियोंके देव भी विहारमें साथ थे । जिस-जिस स्थानपर भगवान् विहार करते थे, वहाँ की पृथ्वीका कण-कण पवित्र हो जाता था । सब जगह गुभ-ही-गुभ था ।

प्रभु नेमिनाथ समस्त जीवोंको धर्मका प्रकाश देने और लोगोंके कल्याणके लिए विहार कर रहे थे । उनकी कांति ने देवोंकी काति-को भी मान कर दिया । कई वर्ष उन्होंने विहार किया । उन्होंने अनेक देशों-जैसे सोरठ, पाचाल, मगध, अग और वग आदि में विहार किया और आयं खण्डके जीवोंको प्रवोधित किया । उनके उपदेशसे बहुतमें मन्द द्वुद्धि जीव प्रवीण हो गये । हिसक जीवोंने हिंसा छोड़ी । जीवोंके चिन्ता तथा खेड आदि समाप्त हो गये । भगवान्नने राजा और जनना सबको सम्बोधित किया, धर्मोपदेश दिया । उनके उपदेश के प्रभावमें बहुतमें म्त्री-पुरुष जिन धर्माविलम्बी बन गये, बहुतमें राजा मुनि बन गये और बहुतमें ध्रावक धर्म अपनाया । बहुतमीं शिव्याँ आर्यिकाँ बन गयी और बहुतमीं स्त्रियोंने श्राविकाओंमें अपनाया । उननां की नहीं, उनके उपदेशसे बहुतसे शूद्र भी श्रावन-श्राविकाएँ बन गये । इन प्रकार प्रभुने समस्त जीवोंको

सम्बोधित किया । उनके उपदेशों का प्रभाव पञ्च-पक्षियोपर भी पड़ा । उन्होंने भी अपनी हिंसक वृत्ति त्याग दी ।

विहार करते-करते नेमीश्वर मलय नामके देशमें आये और उसके भदुलपुर नगरके सहस्राभवनमें विराजमान हो गये । वहाँ भी पहले के समान समवसरणकी रचना की गयी और उसमें भगवान् नेमिनाथ अपने गणधरों सहित विराजमान हो गये । उस नगरका राजा पौष्ट्र नगरवासियोंके साथ समवसरणमें आया और भगवान्‌को नमस्कार करके सभामें बैठ गया । देवकीके जो छह पुत्र सुहृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पले थे और उनके घरमें रहते थे, वे भी समवसरणमें आये । उनके साथ उनकी पत्निया भी थी, जो रूप लावण्य आदि गुणोंमें इन्द्राणियोंसे भी बढ़-चढ़ कर थी । वे छहों भाई अपने-अपने रथोंसे उत्तर कर समवसरणमें गये । वे भगवान्‌को नमस्कार करके और उनकी स्तुति करके राजाके साथ सभामें बैठ गये ।

उस समय तीर्थकर नेमिनाथने सभामें सम्यग्दर्ढन से सुशोभित श्रावक धर्म और कर्म नाशक मुनि धर्मका उपदेश दिया । उन छह भाइयोंने भगवान्‌से धर्मामृतका पान कर तत्त्वके वास्तविक रूपको समझ लिया । वे ससारसे विरक्त हो गये और उन्होंने अपने कुटुम्बी जनोंको अपने इरादेकी सूचना देकर जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंके समीप निर्ग्रन्थ होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्रदान करनेवाली मुनि दीक्षा एक साथ ली । उन राजकुमारोंने द्वादशाग श्रुतज्ञान अभ्यास करके घोर तप किया । ये छहों मुनि दो-दो दिनके उपवास, पारणाए, प्रातः दुपहर और सायकालके योग, शयन और आसन आदि क्रियाए साथ-साथ करते थे । उत्कृष्ट तपको नपनेवाले उन मुनियोंके शरीर-की काति पहले से भी अधिक बढ़ गईं । तीर्थकर भगवान्‌के चरणोंकी सेवामें रत ये छहों मुनि अपने वाह्यन्तर तपमें एक-दूसरेकी उपमा थे ।

इसके पश्चात् महाविभूतिके साथ विहार करके श्री नेमिनाथ मुनियो सहित गिरनार पर्वतपर वापिस आये और अपने समवसरण से उसे मुगोभित करने लगे। श्री कृष्ण आदि यादव और द्वारिकाके नागरिक उनकी सेवामे रत थे। श्रुतज्ञान सागरकी तहको देखने-वाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर भी समवसरणमे यथास्थान विराजमान थे। वहा बहुतसे पूर्वधारी, शिक्षक अवधि-ज्ञानी, केवल जानी, विपुलमति मन पर्य ज्ञानी, अनेक वादी और बहुतसे विक्रिया क्रद्धिके धारक मुनि थे। आयिकाओंकी प्रधाना राजमती भी अनेक आयिकाओं और श्राविकाओंके साथ समवसरणमे विराजमान थी। वहाँ नेमिनाथ तीर्थकर धर्मरूपी अमृतकी वर्षा करके प्यासे भव्य जीव रूपी चातकोंको तृप्त कर रहे थे।

अपरिमित अभ्युदलवाले नेमिनाथ जिनेन्द्र रूपी सूर्यसे गिरनार पर्वतपर विद्वद् जनरूपी कमल प्रफुल्लित हो गये।



पठरानियों के भव वर्णन

धर्म कथाकी समाप्तिपर विनयवन्ती देवकीने हाथ जोड़कर भगवान्‌को नमस्कार करके पूछा, “हे भगवन् ! आज महा मनोहर दिग्म्बर मुनियोंका युगल मेरे भवनमें तीन बार आया और उन्होंने तीन बार आहार लिया । हे प्रभो ! जब मुनि एक बार ही आहार लेते हैं, तब उन्होंने एक ही घरमें तीन बार क्यों प्रवेश किया और आहार लिया ? यह भी हो सकता कि वह तीन मुनियोंका युगल हो और अत्यन्त सदृश आकृति व रूप होने से मैंने उन्हे भ्रातिवश एक ही युगल संमझ लिया हो । फिर उन्हे देखकर मेरे मनमें उनके प्रति ऐसा मोह क्यों उपजा, मानो वे मेरे पुत्र हो । यह क्या वात थी ?”

श्री भगवान् नेमिताथने देवकीको उत्तर दिया, “ये छहो मुनि तेरे पुत्र हैं और कृष्णसे पहले तूने इन्हे युगल रूपमें जन्म दिया था । कसके कोपसे उनकी रक्षा करनेके लिए वसुदेव उन्हे भद्रलपुरके सुदृष्टि सेठ और अलका सेठानीके यहाँ पालन-पोपणके लिए छोड़ आये । उन्होंने उनको पुत्रवत् पाला । मेरे धर्मोपदेशको सुनकर उन्होंने मुझसे मुनि दीक्षा ले ली । ये कर्मोंको नष्ट करके इसी जन्मसे मोक्ष जायेंगे । ये धर्मात्मा होनेके साथ-साथ तेरे पुत्र भी हैं, इसलिए इनको देखते ही तेरे मनमें स्नेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था ।”

नेमिनाथके उत्तरसे सन्तुष्ट होकर देवकीने उन छहो पुत्र रूप मुनियों-को नमस्कार किया । कृष्ण आदि दूसरे यादवोंने भी उन्हे नमस्कार किया ।

फिर कृष्ण की पटरानी सत्यभामाने प्रभुको प्रणाम करके अपने पूर्व जन्मोका हाल पूछा । केवलज्ञानी तीर्थकर नेमिनाथ यादवोंके सामने उनके पूर्व भव बतलाने लगे ।—

“मुण्डगलायन नामका एक ब्राह्मण भद्रलपुर नगरमें रहता था ।” उसके पिताका नाम मरीचि और माताका कपिला था । वह काव्य-रचनामें निपुण था और अपने विद्या-मदमें गर्वित था । पुष्पदन्त तीर्थकरके तीर्थमें धर्मका व्युच्छेद हो जाने से उसने गाय, कन्या और स्वर्ण दानकी प्रवृत्ति चलाई । मुण्डगलायन पडितकी पहुँच राजपुरुषों तक हो गयी और राजा प्रजा सभी उसके चक्करमें फस गये । पापाचारमें प्रवृत्त होने के कारण वह मरकर सातवें नर्कमें गया । इधर-इधर जन्मोंके पठ्चात् उसने मनुष्य-जन्म पाया और भील जाति में जन्म लिया । उसका नाम पर्वतक था और उसकी भायाका नाम बल्लरी था । उसी पर्वतपर चारण कृष्ण धारी दो मुनि श्रीवर और धर्म आये । उनके दर्गनसे उस भीलके परिणामों-भावोंमें कुद्ध गान्ति आई और उसने मुनियोंके कहने से उपवास किये । धर्म-पालनका यह फल हुआ कि वह मरकर विजयार्द्धे पर्वतकी अलका नगरीमें महावल विद्यावरकी पत्नी ज्योतिभालासे पुत्र जन्मा । उसका नाम हरिवाहन रखा गया । उसका एक बड़ा भाई शतवली था । राजा महावनने दोनों भाइयोंको राज सौप कर मुनि श्रीवरसे दीक्षा लेनी और मोक्ष गया । किसी कारण से दोनों भाइयोंमें झगड़ा हो गया और वे भाईं हरिवाहनको देशमें निकाल दिया । हरिवाहन भगली देशके अम्बुदावनं पर्वतपर ठहर गया । तभी वहाँ चारण कृष्णवाली दो मुनि श्री धर्म और अनन्तवीर्य आये । हरिवाहनने उनमें मुनि-श्रीका ने नी और मरकर स्वर्ग गया । स्वर्गके सुखोंका

भोगोपभोग करते समय उसके परिणाम सकलेगमय हो गये । स्वर्गसे उसने राजा सुकेतुकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे लड़कीका जन्म लिया और वह लड़की तू' सत्यभामा ही थी । तू श्री कृष्णकी धर्म पत्नी बनी । अब तू तप करके स्वर्ग जायेगी और वहाँसे भूलोकमें जन्म लेकर मोक्ष जायगी ।"

सत्यभामा निकट भविष्यमें मोक्ष जानेकी वात सुनकर बड़ी हृषित हुई । उसने भगवान्को नमस्कार किया । इसके पश्चात् रुक्मणीने भगवान् नेमिनाथसे अपने पूर्व भव पूछे ।

श्री नेमिनाथने उसे बताया —

"मगध देशमें एकालक्ष्मीग्राम नगर था । वहा नोमदेव ब्राह्मण रहता था । तू उस ब्राह्मणकी पत्नी लक्ष्मीमती थी । तुझे अपने रूपका अभिमान था और तू महा मूढ बन कर पूज्य पुरुषोंका अपमान करती थी । एक दिन तू शृगार करके तरह-तरहके वस्त्राभूषण पहन कर चन्द्रमा समान मणियोंके दर्पणमें अपना चेहरा देख रही थी । सयोगवश उसी समय वहाँ तेरे घरतपसे महा क्षीण शरीरवाले समाधिगुप्त मुनि आहार के लिए आये । लक्ष्मीमतीने ग्लानिसे उस मुनिकी निन्दा की । मुनिकी निन्दा के पापके फलस्वरूप सात दिनमें उसे कोढ हो गया और वह आगमें प्रवेश करके जल कर मर गयी । दुख और चिन्ताके पिच्चारोंके कारण वह मर कर गधी हुई और उस पर नमक लादा जाने लगा । मरकर वह राजगृहमें सूरी जन्मी । उस बेचारी को भी लोगोंने मार दिया । मर कर वह गायोंके बाडेमें कुतियाकी योनिमें जन्मी । एक दिन बाडेमें आग लग गयी और वह कुतिया उस आगमें जल कर मर गयी और उस कुतियाका जीव मडूक ग्राममें त्रिपद धीवरकी मण्डूकी भायकि शतिगंधिका पुत्री हुआ । उसके पापके उदयसे मा मर गयी और उसकी दादीने उसका पालन-पोषण किया । उसके शरीरसे इतनी बुरी दुर्गन्ध आती थी कि कोई उसे अपने यहाँ रखनेको तैयार न था । इसलिए वह

लड़की एक नदीके किनारे रहने लगी । एक दिन नदीके किनारे उपवनमें समाधिगुप्त मुनि आकर विराजे । रातके समय बहुत ठण्ड पड़ रही थी, तब लड़कीने दया करके मुनिको जालसे ढक दिया । मुनि महा दयावान् थे । उन्होने उस लड़कीको धर्मोपदेश दिया तथा उसने उसके पूर्वजन्मोकी बात सुनायी । लड़कीने श्राविकाका धर्म धारण कर लिया । तब यही लड़की उपारक नगरमें गयी और वहाँ उसे ग्रायिकाओंकी संगति मिली । उनके साथ-साथ वह भी राजगृही नगरी गयी । वहाँ उस लड़कीने आचाम्ल वर्द्धन नामका तप किया । राजगृही तो मुनियोका निर्वाण क्षेत्र है । वहाँ उसने सिद्ध शिलाकी बन्दना करके नील गुफामें सन्यास धारण किया । वह महासती मर कर देवी हुई । वहाँ से फिर कुण्डनपुरमें राजा भीष्मकी रानी श्री-मतीके तू रुक्मणी पुत्री हुई और वासुदेवकी पटरानी हुई । अब तू साध्वी होकर देव योनिमें जन्म लेगी । फिर मनुष्य योनिमें जन्म लेकर मुनि दीक्षा लेगी और मोक्ष जायगी ।” रुक्मणीके पश्चात् वासुदेवकी तीसरी पटरानी जाम्बवतीने श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रसे अपने पूर्व भव पूछे । ससारसे भयभीत सब प्राणियोके सामने नेमिनाथ-जीने उसके पूर्व जन्मोका हाल इस प्रकार बताया :—

“जम्बूद्वीपके पुष्कलावती देशमें वीतशोका नगरी थी । उसमें देवल नामका एक बड़ा गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम देवमती और पुत्रीका नाम यगस्वनी था । इस लड़कीका विवाह मुमनि में हुआ । पतिके निधन पर वह बड़ी दुखी हुई । तब एक गृहस्वी जिनदामने उसे बहुत समझाया, सान्त्वना दी, पर अज्ञानके कारण उसे विशेष ज्ञान तो हुआ नहीं पर उसने दान और उपवास किये । फून यह हुआ कि वह मर कर नन्दन बनमें बन्तर नामके देवकी मेननन्दन देवी हुई । देवयोनिके मुख भोग कर उसने ससारमें वृत्त जन्म निये । फिर वह जम्बूद्वीपके प्रावत क्षेत्रमें विजयपुर नगरमें गाजा वन्युनेनसी पनी वृद्धिमनी के उद्दरगे बन्युयगा पुत्री,

जन्मी । कुमारी अवस्था में ही उसने श्रीमती आर्यिका के सत्सग से जिन-धर्म की आराधना की और ब्रत पालना करके मर कर कुबेरकी स्वयं-प्रभा स्त्री हुई । फिर जम्बूद्वीप की पुण्डरीकरणी नगरी में वज्रमुष्टिकी सुभद्रा पत्नी से सुमति नामकी पुत्री हुई । तब उसने सुन्दरी नामकी आर्यिका से धर्म सुनकर रत्नावली नामका तप किया और समाधि-मरण करके स्वर्ग में गयी । वहाँ से चय कर भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में जाम्बव नगर के विद्याधर राजा जाम्बव की जाम्बवती रानी से तू जाम्बवती पुत्री हुई । तेरा विवाह राजा कृष्ण से हुआ । इस जन्म में तू तपस्विनी होकर देव बनेगी । फिर तू राजपुत्र होगी और उसके बाद मोक्ष जायगी ।”

भगवान् नेमिनाथ से अपने पूर्व जन्म की और भविष्य में मोक्ष जानेकी वात सुन कर रानी के सब सशय दूर हो गये । वह बहुत हँसित हुई । उसने जिनेन्द्रदेव को प्रणाम किया और मन में सोचा, “मैं ससार से पार हो गयी ।”

इसके पछात् श्री कृष्ण की चौथी रानी सुसीमा ने अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त पूछा और श्री नेमिनाथ ने अपनी दिव्यध्वनि से उसे बताया —

“धातु की खण्ड द्वीप में भगलावती देव में रत्नसचय नगर था । वहाँ का राजा विश्वसेन और उसकी रानी अनुन्धरी थी । राजा के मत्री का नाम सुमति था, जो परम श्रावक था । अयोध्या के राजा पद्मसेन ने युद्ध में राजा विश्वसेन को मार दिया । इससे रानी अनुन्धरी बहुत दुखी हुई । सुमति मत्री ने उसे धर्म का उपदेश दिया, पर वह सम्यक्त्व न प्राप्त कर सकी । केवल वाह्य मुभक्ति कर सकी । फल? वह मर कर विजयद्वार के अविष्ठाता विजय देव की ज्वलन वेगा नाम की देवी हुई । फिर चिरकाल ससार में जन्म-मरण में भ्रमण करके जम्बू-द्वीप में सीता नदी के दक्षिण तट पर गालिग्राम रमणीक गाव में महा-

धनवान यक्षल गृहस्थकी देवसेना स्त्रीके उद्धरसे यक्ष देवी पुत्री हुई । उसका यह नाम इसलिए रखा गया, क्योंकि वह यक्षोकी आराधना करती थी । वह यक्षोकी पूजाके लिए वनमें गयी थी । वहाँ उसने धर्मसेन गुस्से धर्मोपदेश सुना । उस लड़कीने बड़ी भक्तिसे उस मुनिको भोजन कराया और पुण्यबन्ध किया । एक दिन वह यक्षदेवी अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करने विमल नामक पर्वतपर गयी थी । अममय अति वषके कारण वह एक गुफामें घुस गयी । वहाँ पहले ही से गेर बैठा था । देखते ही शेरने यक्षदेवीको खा लिया । मर कर उस यक्षदेवीका जीव दो जन्मोंके पश्चात् जम्बूद्वीपके विदेहमें पुष्कलावती देवमें वीतशोक नगरमें अशोक राजाकी श्रीमती रानीसे श्रीकान्ता पुत्री हुई । श्रीकान्ताने कुमारी अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्थिकाके पास दीक्षा लेकर रत्नावली नामका तप किया और मर कर स्वर्गमें देवी हुई । वहा में चयकर सुराष्ट्रदेशके गिरिनगरमें राजा राष्ट्रवर्धनकी सुज्येष्ठा रानीके सुसीमा राजकुमारी हुई और श्री कृष्णसे व्याही गयी । अब तू तप करके देव योनिमें जन्म लेगी और फिर मनुष्य पर्यायसे मोक्ष प्राप्त करेगी । सुसीमा यह सुन कर वहुत प्रसन्न हुई और उसने तीर्थकर नेमिनाथको प्रणाम करके अपना स्थान ग्रहण किया ।

फिर श्री कृष्णकी पाँचवी पटरानी लक्ष्मणाने तीर्थेश्वरको नमन्कार करके अपने पूर्व जन्मोंका हाल पूछा । नव भगवान् ने उसे यहाया —

“जम्बूद्वीपके विदेह धेनुमें कट्टकावनी देवमें भीता नदीके उन्नीय नटपर अरिष्टपुर नगरमें उन्नद नमान विभूतिवाला राजा चानद अपनी रानी नुमित्रा नहिं रहता था । एक दिन राजा और रानी नहन्तास्त्र वनमें गागरन्नेन मुनिकं दर्शनके लिए गये । गुरुमें वर्म गुरुमर राजादो मनारन्न विनक्ति हो गयी और उसने अपने गज-गुमार वन्मुनेनको राज देवार मुनि दीधा ने ली । पर रानी नुमित्रा

पुत्र मोहवश आर्थिका न हुई, घरमे ही रही । फिर पुत्रका भी वियोग हो गया और रानी महादुख और अतिशोकसे मर गयी । मर कर वह भीलनी हुई । एक दिन उस भीलनी ने अवधिज्ञानी चारण कृष्णधारी मुनि नन्दभद्रके दर्शन किये और उनसे अपने पूर्व भव सुने । उसने तीन दिनका उपवास किया और मर कर नारददेवकी मेघमालिनी स्त्री हुई । फिर वह भरत क्षेत्रके दक्षिण तटपर चन्दनपुर नगरमें राजा महेन्द्रकी अनुन्धरी रानीसे कनकमाला पुत्री हुई । कनकमालाने स्वयवरमे महेन्द्र नगरके राजा हरिवाहन विद्याधरको चुना । एक दिन कनकमाला जिन-प्रतिमाओंके दर्शन करने सिद्धकृट गयी, जहाँ चारण कृष्णधिके धारक एक मुनिसे अपने पूर्व जन्मोका हाल सुन कर साध्वी हो गयी । तप करके मरने पर वह स्वर्गमे इन्द्रकी प्रिया इन्द्रानी हुई । वहाँ से वह राजा श्लक्षण रोमकी सुरमती रानीसे लक्षणा नामकी पुत्री हुई । अब तू कृष्णकी पटरानी है । अबसे तो सरे जन्ममे तेरी मुक्ति होगी ।”

रानी लक्षणगाने भगवान्‌को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और अपना स्थान ग्रहण किया ।

इसके बाद छठी पटरानी गाधारीने जिनेन्द्र भगवान्‌से अपने पूर्व भव पूछे और भगवान्‌ने उसे दिव्यध्वनिसे उसे बताया —

“किसी समय कौशल देशमे अयोध्यामे रूपदत्त राजा रहता था । उसकी रानीका नाम विनयश्री था । रानीने अपने पतिके साथ सिद्धार्थ वनमे श्रीधर मुनिको आहार दिया । दो जन्मके पञ्चात् विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणीमे गगनवल्लभ नगरमे विद्युद्वेगकी रानी विद्युन्मतीसे महा कातिवती विनयश्री पुत्री हुई । उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्र विक्रमसे हुआ । कुछ समय पश्चात् राजाने चारण मुनियोंसे धर्मोपदेश सुन कर अपने पुत्र हरिवाहनको राज्य देकर मुनि दीक्षा ले ली । रानी विनयश्रीने आर्थिकाकी दीक्षा

ली, तप किया और समाधिमरण करके सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई। वहाँ से चय कर तू गाधार देशमें पुज्कलावती नगरमें राजा इन्द्रगिरि-की रानी मेरुमतीसे गाधारी राजकुमारी हुई और तेरा विवाह श्री कृष्णसे हुआ। अब तू साध्वी बनेगी, फिर देव बनेगी और फिर मनुष्य-जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगी।”

यह सुन कर गाधारी बड़ी प्रसन्न हुई और उसने भगवान्‌को नमस्कार किया।

फिर श्री कृष्णकी सातवी पटरानी गौरीने भगवान्‌से अपने पूर्व भवोका हाल पूछा और भगवान्‌ने उसे बताया—

“इस भरत क्षेत्रके इम्यपुर नगरमें कभी धनदेव सेठ रहता था। उसकी भार्याका नाम यशस्विनी था। एक दिन वह अपने महलकी छत पर खड़ी थी, कि उसने आकाशमें जाते हुए दो चारण ऋद्धिवारी मुनि देखे। उन्हें देखते ही उसे अपने पूर्व-जन्मोका स्मरण हो गया। उसे मालूम हुआ कि वह धातकी खण्ड ह्रीपके पूर्व मेरुकी पदिच्चम दिगामें विदेह क्षेत्रके नन्दिशोक नगरमें आनन्द सेठकी पत्नी थी। वहाँ उसने अपने पतिके साथ मितमागर मुनिराजको आहार दिया था। उन्हें पचाशर्चर्य प्राप्त हुए, पर कभी उन्होंने वर्षके पड़ते हुए पानीको पी लिया। वह पानी विप मिश्रित था। इसलिए पीते ही वे दोनों मर गये। मर कर वह देवकुरुमें आर्या हुई। उसके बाद इन्द्रानी हुई और फिर यहाँ यशस्विनी हुई। यशस्विनीने मुनिसे प्रोपथन्त ग्रहण किया। कुद्ध जन्मोके पश्चात् तू राजा मेरु चन्द्रकी रानी चन्द्रमनीमें गौरी मुत्री हुई और अब श्री कृष्णकी रानी है। तू साध्वी बनेगी और दो जन्मके पश्चात् मोक्ष जायेगी।”

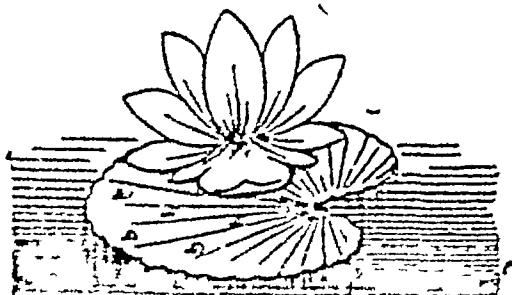
यह मुन कर गौरी बड़ी हृषित हुई और उसने भगवान्‌को नमस्कार किया।

‘‘फिर आठवीं पटरानी पद्मावतीकी प्रार्थना पर भगवान् नेमि-नाथने उसके पूर्व जन्मोका हाल बताना आरम्भ किया —

“उज्जयिनी नगरीमें अपराजित राजा रहता था। उसकी रानी-का नाम विजया था। और उन दोनोंकी पुत्रीका नाम विनयश्री था। उसका विवाह हस्तिनापुरके राजा हरिसेनसे हुआ। पति-पत्नी ने वरदत्त मुनिको आहार दिया। सोते हुए कालागुरु धूपके धूएँसे रानीका प्राणात हो गया। मर कर पहले वह एक पल्यकी आयु-वाली आर्या हुई और फिर चन्द्रदेवकी चन्द्रप्रभा देवी हुई। फिर मगध देशके शालमली ग्राममें देविला और जयदेव दम्पत्तिके पद्मावती पुत्री हुई। एक बार उसने वर धर्म आचार्यसे यह व्रत लिया, कि वह जीवन पर्यन्त अज्ञात फल नहीं खायेगी। एक दिन असमयमें चण्डवाण नामक शक्तिशाली भीलने उस ग्राम पर आक्रमण कर दिया और वह वहाँ की समस्त प्रजा और पद्मदेवीको हर ले गया। उसने पद्मदेवीको कैदमें डाल दिया। वह भील उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था, पर उस शीलवती पद्मदेवीने किसी नीतिसे उसका निराकरण कर दिया और विपत्तिको टाल दिया। उसी समय राजगृहमें राजा सिंहरथने उस भीलको मार डाला, जिससे शालमली ग्रामकी वह प्रजा बन्धन मुक्त हो गयी और शरण रहित होने से इधर-उधर भटकने लगी। जनता भूखसे मारी-मारी किपाक फल खाकर दुखसे मर गयी। परन्तु पद्मदेवी अपने अज्ञातफल न खानेके व्रतमें दृढ़ रही, उसने कोई अज्ञात फल नहीं खाया। वह सन्यास मरण करके एक पल्य आयुवाली आर्या हुई। फिर वह स्वयंप्रभदेवकी स्वयंप्रभादेवी हुई। इससे आगे तीन जन्मोंके पञ्चात् तू श्रिरिष्ठपुरके राजा स्वर्णनाभकी रानी श्रीमतीसे पद्मावती राजकुमारी हुई और तेरा श्री कृष्णसे विवाह हुआ। तप करके तू स्वर्गमें देव होगी और फिर मनुष्य योनिसे मोक्ष जायेगी।”

अपने भव-भवकी कथा सुन कर पद्मावतीने भगवान्‌को नमस्कार किया ।

कृपाकी आठ पटरानियोके पश्चात् रोहणी, देवकी आदि देवियों और अन्य याइवोने भी अपने-अपने भव पूछे जिन्हे सुनकर वे समान्वय भवभीत हुए । फिर मभी जिनेन्द्रकी स्तुति करके तथा उन्हें नमस्कार करके अपने-अपने स्थानोंको गये ।



तरेसठ शलाका पुरुष

कृष्णके पश्चात् वसुदेवके यहां देवकीसे एक और पुत्र गजकुमार पैदा हुआ । यह राजकुमार अपने पिताके समान कातिवान था और बड़े भाई श्रीकृष्णका बड़ा प्यारा था । जब यह राजकुमार बड़ा हुआ, तो कृष्णने कई अत्यन्त सुन्दर युवतियों से उसका विवाह कर दिया । इनमें से एक युवती सोमा थी जो सोमशर्माकी क्षत्रिय पत्नी से पैदा हुई थी ।

उसी समय तीर्थकर नेमिनाथ द्वारिकापुरी के समीप गिरनार पर्वत पर पधारे । सभी यादव महामगल द्रव्य लेकर उनके दर्शन और धर्म प्रवचन सुनने के लिए समवसरणमें गये । श्रीकृष्ण के साथ गजकुमार भी समवसरणमें गया । और जिनश्रीको नमस्कार करके अपने बड़े भाई श्रीकृष्णके पास ही बैठ गया । उस समय श्रीनेमिनाथ ससार सागरसे पार तरने के उपाय रत्नत्रय रूप धर्मका प्रवचन कर रहे थे ।

प्रवचनके पश्चात् श्रीकृष्णने बड़ी विनयसे अपने और दूसरे श्रोताओंके कल्याणके लिए उनसे पूछा, “हे नाथ ! इस भरत क्षेत्र के वर्तमान कालके तरेसठ शलाका पुरुषोंका हाल बतानेकी कृपा करे ।”

शलाका पुरुष का आशय महा जक्तिशाली पुरुष है । इनकी संख्या तरेसठ है । चौबीस तीर्थकर, बारह चक्रवर्ती, नौ अर्द्ध चक्रवर्ती,

नौ नारायण या बलभद्र और नौ प्रतिनारायण का समूह तरेसठ शलाका पुरुष कहलाता है।

तीर्थकर नेमिनाथने श्रीकृष्णके प्रश्नके उत्तरमें तरेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन सक्षेपमें किया।

वर्तमान कालमें चौबीस तीर्थकर हुए। सबसे पहले तीर्थकर श्री कृपभनाथ हुए जिन्हे आदिनाथ जी भी कहते हैं। उनके पश्चात् (२) अजितनाथ जी (३) सम्भवनाथ जी (४) अभिनन्दननाथ जी (५) सुमतिनाथ जी (६) पद्मप्रभु नाथ जी (७) सुपार्वनाथ जी (८) चदाप्रभु जी (९) पुष्पदन्त जी (१०) शीतलनाथ जी (११) श्रेयांसनाथ जी (१२) वास पूज्य जी (१३) विमलनाथ जी (१४) अनतनाथ जी (१५) धर्मनाथ जी (१६) गानिनाथ जी (१७) कुन्तुनाथ जी (१८) अमरनाथ जी (१९) मल्लिनाथ जी (२०) मुव्रतनाथ जी (२१) नमिनाथ जी और वाईमवे तीर्थकर स्वयं नेमिनाथ जी थे। उनके पश्चात् नेईमवे तीर्थकर पार्वतनाथ जी और चौबीसवे तीर्थकर महावीर जी होंगे।^१

श्री गान्ति नाथ जी, कुन्तु नाथ जी और अरहनाथ जी ये तीनों तीर्थकर चक्रवर्ती भी हुए थे। ये पव नव तीर्थकर सामान्य राजा हुए।

श्री वामपूज्य जी, मल्लि नाथ जी, नेमनाथजी, पार्वतनाथजी और उर्ध्मान जी यानी महावीर स्वामी इन पाच तीर्थकरोंने कुमारावस्था में ही दीक्षा धारण की थी और वाकी उन्नीस तीर्थकरोंने राजा होने से भाव दीक्षा ग्रहण की थी। और वे विवाहित थे।

^१ इन तीर्थकरों का मधिष्ठान वर्णन जीवराज जैन पन्थमाता, शोलापुर द्वारा प्रष्टातित तिलोय पण्डित जान २ के पृष्ठ १०१४ में १०२२ तक पढ़ दिया गया। सत्तरक

श्री आदिनाथ जी पहले तीर्थकर हुए। इनके पिता चौदहवें मनु या कुलकर नाभिराजा और माता मस्देवी थी। नाभिराजा इक्ष्वाकुवशके तिलक और अयोध्याके राजा थे। आदिनाथ का जन्म चैत्र कृष्णा नवमी को हुआ था। देवेन्द्रो ने इनका जन्म कल्याणक मनाया। जन्मते ही इन्द्रने देवोंके साथ इन्हे मेरुगिरि के गिखर पर पाढ़ुक बनमे पाढ़ुक शिला पर सिंहासन मे विराजमान करके स्नान किया। मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानों से पूर्ण आदिनाथ कुमारावस्था को प्राप्त हुए। उनका विवाह यगस्वती और सुनन्दा नामकी दो अति सुन्दर यौवन सम्पन्न और गुणवती नवयुवतियों से हुआ। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर जब प्रजाने नाभिराजासे अपने कष्टोंका निवेदन किया, तब उन्होंने प्रजा के मुखियाओंको राजकुमार आदिनाथके पास भेज दिया। इस पर राजकुमार ने उन्हे असि, मषी, कृषि, विद्या, वाणिज्य और पशु पालन छह कर्मों के द्वारा आजीविका कमाने का उपदेश दिया।

उत्तम मुहूर्त मे नाभिराजाने आदिनाथ को उत्कृष्ट राज्यपद प्रदान किया। आदिनाथके भरतादि एक सौ एक पुत्र थे। राजकुमार भरत पहले चक्रवर्ती थे। कुमार बाहुबलि दूसरे पुत्र थे। इनके दो पुत्रियाँ थी। एक का नाम नन्दा और दूसरी का नाम सुनन्दा था।

एक दिन राजदरबार से सद्गुणयुक्त गायन तथा नृत्य कला मे निपुण चचल देवागना नीलाजसा उन के सामने नृत्य करते-करते आयु का नाश होने पर विजली के समान तत्काल अदृश्य हो गयी। इस घटना को देखकर राजा आदिनाथ को ससार से विरक्ति हो गयी। उन्होंने सोचा कि इस ससार मे जीव मेघ के समान नश्वर है। फिर उन्होंने युवराज भरत को राज्य दिया और बाहुबलि को पोदनपुर का राज्य दिया। आदिनाथ ने चैत्र कृष्णा नवमी के दिन केश लोच पूर्वक दीक्षा धारण की। पाप का नाश करने वाले

योगी आदि जिन छह मास तक ध्यान में निमग्न हो गये और छह महीने का उपवास किया । जब वे आहार के लिए निकले तब लोगों को सावुओं को आहार देने की विविध नहीं आती थी । आदिनाथ विहार करते-करते हस्तिनापुर आए । वहाँ राजा श्रेयांस ने उन्हे नमस्कार कर के इक्षु-रस का आहार दिया । एक वर्ष के महातप के पश्चात् उन्हे कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया । इनके मुख्य गणधर का नाम वृषभ सेन था । वहुत समय तक धर्मोपदेश देने के पश्चात् कलाग पर्वत से माघ वदि चतुर्दशी को इन को मोक्ष प्राप्त हुआ । भगवान् आदिनाथ को वृषभनाथ या कृषभ नाथ भी कहते हैं ।

वारह चक्रवर्तियों के नाम (१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सन्तकुमार (५) शान्तिनाथ (६) कुशु (७) अर (८) सुभौम (९) पद्म (१०) हरिपेण (११) जयसेन (१२) ब्रह्मदर्श थे ।

नी नारायणों के नाम (१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयभू (४) पुम्पोत्तम (५) पुरुष सिंह (६) पुड़रीक (७) दत्त (८) नारायण ग्रीर (९) कृष्ण थे, नारायणों को अर्धचक्रवर्ती भी कहते हैं ।

नी प्रतिनागयग्नों के नाम (१) अश्वग्रीव (२) तारक (३) मेन्क (४) मधुकैटम (५) नियुम्भ (६) वलि (७) प्रहरण (८) गवग्न (९) जगमध थे । इन को प्रति शत्रु भी कहते हैं ।

नी वन देवों के नाम (१) विजय (२) अचल (३) सुधर्म (४) मुप्रभ (५) मुदर्दंन (६) नान्दी (७) नन्दि मित्र (८) राम ग्रीर (९) पद्म थे । इन को वनभद्र भी कहते हैं ।

उपर्युक्त तरेगट यनाका-पुरुषों का वर्णन हमारे पुराणों और चित्रों में मिलता है ।

४४ :

द्वारिका दहन

श्री गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको गजकुमारका वृत्तान्त सुनाया । तीर्थकर आदिका चरित्र सुनकर गजकुमार ससार से भय-भीत हो गया और पिता-पुत्र आदि समस्त कुटुम्बीजनोंको छोड़कर बड़ी विनयसे जिनेन्द्र भगवान नेमिनाथके पास जाकर दीक्षा लेकर तप करने लगा । गजकुमारके विवाहके लिए प्रभावती आदि जो कन्याएं निश्चित की गई थीं, उन सबने उनके ससार त्यागते ही ससार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली ।

इसके पश्चात् किसी दिन गजकुमार मुनि रात्रिके समय एकान्त में प्रतिभा योगसे विराजमान हो सब प्रकारके कष्ट सहते हुए तपसे तल्लीन थे । सोमशर्मा अपनी पुत्री सोमाके त्यागसे क्रोधित हो मुनि गजकुमारके पास आया । वह मुनिराजके सिर पर तीव्र अग्नि प्रज्वलित करने लगा । अग्निसे मुनिका शरीर जलने लगा । उसी अवस्थामें शुक्लध्यानसे कर्मोंको नष्ट करके मुनि केवली होकर मोक्ष चले गये ।

मुनि गजकुमारके मरण का समाचार सुनकर यादव केवल बहुत दुखी ही नहीं हुए, वरन् वसुदेवको छोड़ कर समुद्रविजयादि नौ भाई मुनि बन गये । देवकी और रोहिणीके सिवाये दूसरी सभी रानियोंने भी दीक्षा ले ली ।

इधर तीर्थकर नेमिनाथने जनताको प्रवोधित करते हुए सभी दिनाओमे विहार करके अनेक राजाओको धर्मसे स्थिर किया । फिर वे लीट कर अपने समवसरणको सुगोभित करते हुए गिरनार पर्वत पर विराजमान हो गये । यदुवशी राजा वसुदेव, कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्नकुमार, वहुत-सी रानिया और द्वारिका निवासी बड़ी विभूति-के नाथ उनके दर्गनार्थ आये और धर्म प्रवचन सुनने लगे ।

धर्म कथा के बाद बलदेवने बड़ी विनयसे नमस्कार करके श्री नेमिनाथसे नीचे लिखे तीन प्रश्न पूछे —

(१) “कुवेर द्वारा निर्मित इस द्वारिका पुरीका अन्त कितने ममयके बाद होगा ? यह नगरी समय बीतनेपर स्वय ही विनय होगी या किसीके निर्मित्तसे नष्ट होगी ?”

(२) “कृष्णका परलोक गमन किस कारण से होगा ?”

(३) “मुझे सयमकी प्राप्ति कब होगी ?”

श्री नेमिनाथने बलदेवसे कहा, “हे महाभव्य ! यह नगरी द्वारिकापुरी बाह्यवे वर्ष द्वैपायन मुनि द्वारा भस्म होगी, क्योंकि उन्मत्तनाने यादवकुमार ही उसे कूद्ध करेगे ।

द्वैपायन कुमार गोपिणीवा भाई और बलदेवका मामा था । भगवन्होंने बलदेव को उनके बाह्यवे वर्ष द्वैपायनसे विरक्त हो गया और मुनि द्वारा उनका भस्म बन जाएगा । वर्त्तमान वर्षकी अवधि पूरी कर्त्तव्य के लिए द्वैपायनी तत्त्वज्ञ श्री राम श्रीराम को श्रीरामको मुकानेवाला था । उन द्वैपायन श्रीराम कुमार भी यह जानकर वहाँ दुखी हुआ कि द्वैपायन द्वैपायनी मृत्यु होगी । वह भाई-ब्रह्मनांको छोड़ कर किसी

द्वैपायन कुमार गोपिणीवा भाई और बलदेवका मामा था । भगवन्होंने बलदेव को उनके बाह्यवे वर्ष द्वैपायनसे विरक्त हो गया और मुनि द्वारा उनका भस्म बन जाएगा । वर्त्तमान वर्षकी अवधि पूरी कर्त्तव्य के लिए द्वैपायनी तत्त्वज्ञ श्री राम श्रीराम को श्रीरामको मुकानेवाला था । उन द्वैपायन श्रीराम कुमार भी यह जानकर वहाँ दुखी हुआ कि द्वैपायन द्वैपायनी मृत्यु होगी । वह भाई-ब्रह्मनांको छोड़ कर किसी

ऐसे स्थान पर चला गया, जहा उसे कृष्ण दिखाई भी न दे । पर वह कृष्णके अति स्नेह से बड़ा व्याकुल हुआ । दूर वनमे जा कर वनके जीवोंकी तरह वनमे विचरने लगा । सभी यादव भावी दुख-की चिन्तासे सतप्त भगवान्‌को नमस्कार करके द्वारिकापुरी लौट आये । बलदेव और कृष्णने नगरमे यह घोपणा करा दी कि मद्य बनानेके साधन और मद्य शीघ्र ही नगरसे अलग कर दिये जाये । जो उसे रखेगा, वह दण्ड का भागी होगा । जनताने उनके आदेशो का पालन करके मंदिरा बनाने की समस्त सामग्रीको पहाड़ोके बीच बने हुए गिरीकी गुफामे फेंक दिया । जो मंदिरा कुण्डोमे छोड़ी गई थी, वह उनमे भरी रही । जनता हितैषी कृष्णने दूसरी घोपणा यह कराई कि मेरे माता-पिता, भाई, स्त्री और पुत्री जो वैराग्य धारण करना चाहे, वे शीघ्रता करे । वह किसीको मना न करेगा । कृष्णकी आज्ञानुसार उनके पुत्र प्रद्युम्न कुमार आदि परिग्रह त्याग कर मुनि बन गये । कृष्णकी आठो पटरानियो ने भी दीक्षा ले ली । द्वारिका-के बहुत-से स्त्री-पुरुष भी साधु-साध्वी बन गये ।

श्री कृष्णने सबसे यही कहा कि यह ससार समुद्र बहुत गहरा है, वीतराग धर्म समान उसे पार करने का दूसरा जहाज नहीं है और भगवान् नेमिनाथके समान दूसरा पार करने वाला नहीं है । इस लिए उनकी शरणमे जाओ । उन्होने कहा कि अभी उनके वैराग्यका समय नहीं आया है और बलदेव भी उसके मोहके कारण मुनि नहीं बन सकते । उसके मरने के पश्चात् बलदेव भी मुनि बनेगा ।

सिद्धार्थ नामके सारथीने बलदेवसे वैराग्यकी आज्ञा मार्गी, तो बलदेवने उसे अनुमति देते हुए यह प्रार्थना की कि जब उसे कृष्णके वियोगका सताप हो, तब वह देव लोक से आकर उसे सम्बोधित करे ।

महासघ सहित भगवान् नेमिनाथने पल्लव देशकी तरफ विहार किया और मार्गमे जिन धर्मका उपदेश दिया । द्वारिका निवासी नगरीको छोड़कर वनमे जा वसे और पूजा, दान, व्रत और उपवास मे लीन रहने लगे ।

सबोगकी बात है कि वे नगर निवासी वर्षोंकी गिनती भूल गये और वारह वर्ष पूरे होने से पहले ही नगरमे लौट आये । इसी प्रकार रोहिणीका भाई द्वैपायन मुनि भी देव-विदेश विहार करता हुआ, वर्षोंकी गिनती भूल गया और अवधि पूरी होने से पहले द्वारिका आ गया । द्वैपायन मुनि शरीरमे तो मुनि था, पर उसका विश्वास मिथ्या था । उसने मनमे सोचा कि भगवान नेमिनाथकी भविष्यवारणी टल गई । वह द्वारिकाके बाहर गिरिके पास कायोत्सर्ग खड़ा तप करने लगा ।

उधर कृष्णके पुत्र नद्युकुमार आदि यद्युकुमार वन कीडा करते-करते थक गये और उन्हे जोरकी प्यास लगी । वनके कुण्डो मे शराब पड़ी थी, वह सूख गई थी । पर जल वरसने से और तट पर खड़े महुवेके वृक्षोंके फल गिरने और सूर्यकी नपनमे जल गरम हो गया । वह नमस्न जा मदिश नमान मा क वन गया । प्याससे पीड़ित उन यद्युकुमारोंने उन जनको छान कर पी लिया । पीते ही उन्हे नशा हो गया । व विकारी वन गये । उन्मन हो गये, उनकी आगे चाल हो गई और वे बेहोर्जीम ना-नाने लगे, कुछ-कुछ यहां न लगे और उनके पाव उगमगाने लगे । उनके भिरके केश विखर गये और गन्तव्यी पुरामानाए विघर गई । ऐसी हाननमे ने जहरको सोंद रह दे । सर्वमे उन्होंने द्वैपायन मुनिको देवहर ग्रामगम कहा, फि उन्हें राग द्वान्किए नाम होने वाला है । यह हमगे वच रह दा । आता ? ? ऐसा गोचते ही वे द्वैपायन मुनिको पन्थर मारने लगे । उसीर दूरा मान कि वह नपम्बी धरनी पर गिर पड़ा । इसमे मुनिरा । उसी रोध पैदा हुआ, उसकी भौंहे चट गई और वह

होठ चबाने लगा । वस अब क्या था ? वह यादवोंका विनाश करने के लिए तैयार हो गया । यदुकुमार भागकर द्वारिकामें आये ।

बलदेव और वासुदेवने किसीसे इस समस्त घटनाको सुन लिया । वे बड़े चिंतित हुए । उन्हे भगवान्‌की भविष्यवाणी सच्ची होती लगी । तब वे दोनों भाई मुनिसे क्षमा मागने उसके पास छत्र, चवर, सिंहासन और समस्त सेना पीछे छोड़कर गये । मूनि तो क्रोधकी अग्निसे प्रज्वलित था ही, उसकी बुद्धि क्लेश रूप बन गई थी, भ्रकुटी टेड़ी हो गई थी, मुख विपम बन गया था । उसकी आखे इतनी लाल हो गई थी, कि उनकी तरफ देखना भी कठिन था । मारे क्रोधके उसके प्राण कण्ठ तक आ गये थे । इस प्रकार उसके मुखकी महाभयकर आकृति बन गई थी । मुनि को देख कर बलदेव और कृष्णने हाथ जोड़ कर बड़े आदरसे उसे नमस्कार किया और यह जानते हुए भी कि हमारी प्रार्थनां वेकार होगी, उन्होंने मोहवश प्रार्थना की, “हे साधो ! आपने चिरकालसे अपने क्षमामूलक तप की रक्षा की है, आज वह तप क्रोध रूपी अग्निसे जल रहा है, उसकी रक्षा कीजिये । यह क्रोध मोक्षके साधनभूत तपको थोड़ी-सी देरमें नष्ट कर देता है, चारों पुरुषार्थो—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—का शत्रु है और निज और परको नष्ट कर देता है । हे मुनिराज ! इसलिए आप इन मूढ़ राजकुमारोंकी मूर्खतापूर्ण चेष्टा को क्षमा कर दे, हम पर प्रसन्न हो जाये ।” इस सब अनुनय-विनय का मुनि द्वैपायन पर जरा भी प्रभाव न हुआ, वह अपने दुर्निश्चयसे जरा भी टस-से-मस न हुआ । मुनिकी बुद्धि तो अत्यत पापपूर्ण हो गई थी और वे प्राणियों सहित द्वारिकाको जलाने के निश्चयपर दृढ़ थे । मुनिने दो अगुलियोंके डगारे से उन्हे बताया कि केवल तुम बलभद्र और कृष्ण वचोंगे और कोई नहीं ।

मुनिके अभिप्रायको जान कर वे दोनों भाई अति दुखी मनसे किर्तन्यविमूढ़ हो द्वारिकापुरी आये और सोचने लगे कि अब

क्या करें। उसी समय सम्बुद्धकुमार आदि अनेक यादव नगरीसे निकले और दीक्षित हो गये। वे पर्वतकी गुफा आदिमे विराजमान हो गये। द्वैपायन मुनि अपने क्रोधसे अपने तपको नष्ट करके, मर कर अग्नि कुमार मिथ्याहृष्टि देव हुआ और उसने द्वारिका पुरीको भस्म कर दिया। सभी वृद्ध, स्त्री, वालक, पशु और पक्षी अग्निमे भस्म हो गये। उस समय जो हाहाकार हुआ, वैसा हाहाकार कभी नहीं हुआ।

प्रथम हो सकता है कि जिस द्वारिकाका देवोने निर्माण किया और जिसके रथक भी डेव थे, वह क्यो भस्म हो गई। पर भवितव्यता तो दूर्तिवार है, वह टलती नहीं। वलभद्र आदिने समुद्रका जो जल अग्नि घान करने के लिए डाला था, वह भी तेल वन कर अग्निको बनाने में सहायक हुआ। कृष्ण और वलदेवने अग्निको असाध्य नम्र कर अपने माता-पिता और दूसरे कुटुम्बियोंको रथ पर विठा कर नगरीमे बचाने का प्रयत्न किया, पर रथ था कि उसके पहिये ही पृथ्वीमे गड गये, और वह आगे न सरका। फिर उन्होने स्वयं रथको खीचता शुरू किया, पर फल कुछ न हुआ। रथ तो थही कील ना गया।

उसी समय द्वारिकाके किवाड बन्द हो गये। दोनो भाइयोने उन्हे गानने वा बड़ा प्रयत्न किया। किवाड तो खुल गये, पर उसी समय देव वाणी हुई, ‘तुम दोनो ही उस अग्नि काण्डसे बचोगे नों और नहीं।’

माता-पिताने भी व्रग्ना विनाश निश्चिन नम्रकर बलदेव और रामराम द्वारा दर्ज जाने गो रहा क्योंकि यदि वे जीवित रहे तो उस व्रग्ना निमान वार्णी रहेगा। नव वे दोनों भाई माता-पिताके गोपनी, उन्हे नम्रताम लिया और उनकी आज्ञा पाकर रोने-‘रोने सदर्हन नहीं पाने। वे दधिग दियाहो चले गये।

उस अग्नि काण्डके समय वसुदेव आदि यादवो, उनकी स्त्रियों और बहुतसे नगर निवासियोंने बड़े धैर्यका परिचय दिया। उन्होंने समय धारण कर लिया, सन्यास ले लिया और धर्म-ध्यानसे समस्त उपसर्ग व विपत्तिको सहन किया। वे जानते थे, कि ससार का नियम ही यह है, कि जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है। इसलिए उन्होंने समाधिमरण पूर्वक धर्मध्यानसे शरीर त्याग दिया और अपनेको धन्य किया। उन्होंने मरते समय भी उपसर्ग आने पर भी मनमे बुरा विचार न आने दिया। सच्चे धीर-वीर शान्तमना व्यक्ति मरण आने पर कायर नहीं बनते, दृढ़मना रहते हैं। ऐसे जीव स्वर्ग और फिर मोक्ष जाते हैं।

धन्य हैं वे पुरुष जो अग्नि-शिखाके समूहमे भस्म होते हुए भी समाधिको नहीं छोड़ते और शरीर त्याग करते हैं। यही सतोकी रीति है।

और द्वैपायन मुनिने अपना तप विगाड़ा, अपना नाश किया, अनेक जीवोंको नष्ट किया और अपना भविष्य विगाड़ा। जो आदमी क्रोध, मान, माया और लोभके वशीभूत हो जाता है, वह अपना घात तो अवश्य करता है, दूसरोका घात कर सके या न कर सके क्योंकि दूसरोका घात तो उनके अपने भाग्याधीन है। दूसरोंको मारने का प्रयत्न करना, जलते लोहेके गोलेको उठानेके समान है। उसको उठानेवाला तो स्वयं अवश्य जलता है, वह दूसरोको जला सके या नहीं, यह कोई नहीं कह सकता। जहाँ दूसरे आदमियोंके लिए तप निर्वाणका कारण बनता है, वहाँ द्वैपायनके लिए वह दीर्घ आवागमनका कारण बन गया। द्वैपायनने भवितव्यताके वश होकर द्वारिका पुरीको भस्म किया। वह नगरी छह महीने लगातार जलती रही। उसके ऊँचे-ऊँचे भवन, महल और अटारिया जलकर मिट्टीमें मिल गईं। यह था द्वारिका का नाश, महानाश।

श्री कृष्ण परलोक गमन

बलदेव और श्री कृष्णकी महानताको मनुष्य वर्णन नहीं कर सकता। उन दोनोंने पुण्यके योगसे परम उच्चता प्राप्त की और मुदर्जन चक्र आदि अनेक महारत्न इनके पास थे। वे भरत क्षेत्रके भूपति थे। पर जब उनके पुण्य का क्षय हो गया, उनके रत्न गये, बन्धु वर्ग आदि गये। केवल उनके प्राण मात्र ही उनका परिवार था। ये दोनों वीर महाधीर शोकसे अति पीड़ित जीने मात्रकी आशा नेकर दधिगणकी ओर चल पड़े। क्योंकि वहाँ पाण्डव दक्षिण मथुरा-में निवास कर रहे थे। इस विपत्तिमें दोनोंने वही जानेका निर्णय लिया।

मार्गमें हस्तप्रभ नगर पड़ता था। कृष्ण तो नगरके बाहर वनमें दहर गए और बन्देव भोजनके लिए सामग्री लेने नगरमें गये। अपना नमन शरीर वस्त्रमें लपेट रखा था। वहाँ का राजा अनन्दन वाण प्रगिद्ध और महावनुवर्षी था और धूतराष्ट्रके वश-का था। वह यादवोंके दोग ही दृढ़ता रहता था। वह उनका महा शत्रु था।

ज्योती वनभद्रने नगरमें प्रवेश किया, उनके अपना स्पष्ट छिपाने के बारे प्रयत्न करने पर भी लोगोंने उन्हे पहचान लिया और उनके इंगिदे एकत्रित हो गये। वलभद्रने एक वणिकको अपने कर्णे और

कुण्डल देकर उससे खाने-पीने की सामग्री ली और नगरसे निकला। राजा के पहरेदारोंने भी बलभद्र को पहचान लिया और उन्होंने राजा को तुरन्त सूचना दे दी। फिर क्या था? राजा ने उसको पकड़ने-मारनेके लिए तुरन्त अपनी सेना भेज दी।

बलभद्रने अन्नादि सामग्री परे रख दी और हाथी बाधनेका थम्ब उखाड़ कर लड़नेको तैयार हो गया और मुख्य द्वारकी आगल निकाल कर सेनाके सामने डट गया। उन दोनोंने राजा और सेना-को मार कर भगा दिया।

फिर ये दोनों भाई खाद्य सामग्री लेकर विजय वनमे एक रमणीक सरोवरके पास आ गये। वहाँ उन्होंने जल छानकर स्नानादि करके भगवान् नेमिनाथका स्मरण करके भोजन किया और कुछ समय विश्राम किया।

फिर वे दक्षिणकी ओर चल पडे और चलते-चलते महादुर्गम् और महाभयानक कौशम्बी वनमे पहुँचे। पशुओं, शृगालों और पक्षियोंके शब्दसे वह वन शब्दायमान हो रहा था। प्यासके मारे हिरण्योंके भुण्ड-के-भुण्ड वहाँ मारे-मारे इधर-उधर फिर रहे थे। वहाँ की गर्म-नगर्म पवन असह्य थी और दावानलसे वहाँ की लताओं-के समूह, झाड़ियाँ और वृक्ष भुलस गये थे। पानीका वहाँ कही नामोनिशान तक न था। मारे गर्मिके जगली जानवरोंके जो श्वास-पर-श्वास निकल रहे थे, उनके गोरसे वन गूँज रहा था। ऐसे वनमे पहुँच कर प्याससे पीड़ित कृष्णने अपने बड़े भाई बलभद्रसे कहा, “हे आर्य! मैं प्याससे बहुत व्याकुल हूँ। मेरे होठ और तालु सूख गये हैं। अब मैं एक कदम भी आगे चलने मेरे असमर्थ हूँ। इसलिए अनादि और सारहीन ससारमे सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाको दूर करनेवाला शीतल जल मुझे पिलाओ।”

वलभद्र कृष्णको जिनवाणी रूप अमृतका पान करनेको कहकर जल लेने वहाँ से दूर चले गये । कृष्ण पीताम्बर ओढ़ कर सघन वृक्षकी ढायामें विश्राम करने लगे ।

देवयोग से उसी समय जरत्कुमार वहाँ आ निकला । वह शिकारके लिए वनमें अकेला धूम रहा था । पहले बताया जा चुका है, कि वह तो कृष्णके प्राणकी रक्षाके विचारसे स्नेहवश द्वारिकासे वनमें चला गया था । वह वनचरोके समान वनमें रह रहा था । पर भवितव्यके योगसे जरत्कुमार वही आ पहुँचा । उसके हाथमें धनुष था । उसने दूरसे कृष्णके हिलते पीले वस्त्रोंको देख कर भ्रातिवश समझा, कि कोई हिरन है । उसने झटसे वाणीका निशाना वाधा और खीच कर तेज तीर मारा, जिसने कृष्णके पावको बीध दिया । तभी कृष्णने उठ कर चारों ओर देखा, पर जरत्कुमार वृक्षकी ओटमें हीने में दिखाई न दिया । तब कृष्णने पुकार कर पूछा, “इस वनमें हमारा कौन शत्रु है ? किमने हमारा पाव अकारण बीधा है ? जन अपना नाम और कुल तो बताओ ? मैंने कभी अज्ञात कुल और अज्ञात नाम बाले व्यक्तिका वध नहीं किया । इस वनमें ऐसा मेरा कौन घातक है, जिसकी शत्रुता तक का मुझे पता नहीं ?” ।

इस पर जरत्कुमारने उन्नरदिया, “मैं वलदेव और श्री कृष्णके पिता वसुदेवका पुत्र जरत्कुमार हूँ । कायरोसे अगम्य इस वनमें मैं अकेला धूम रहा हूँ । जब मैंने श्री नेभिनायकी भविष्यवाणी सुनी कि मेरे हाथों छोटे भाई कृष्णका वध होगा, तभीमें मैं उस दुष्कृत्य को टालने के लिए इस वनमें बारह वर्षमें फिर रहा हूँ । इस लम्बी अवधिमें मैंने आज तक किसी आर्यका वचन नहीं मुना, फिर यहाँ कौन है ?”

जरत्कुमारना उन्नर मून कर कृष्ण समझ गया कि वह उसका दाया भाई है । तभीने उसे प्रसन्न पान बुलाया । जरत्कुमारने यह रामनाम किए उसने रामानों वाला लगा है, वह ‘टाय-हाय’

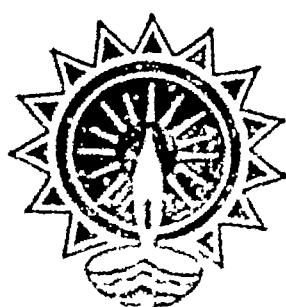
चिल्लाने लगा । वह कृष्णके पास गया । उसने धनुष वारण धरती पर फेक दिया और उसके चरणों पर गिर पड़ा । वह अत्यन्त शोकमग्न था । तब कृष्णने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया । कृष्णने जरत्कुमारसे कहा, “हे ज्येष्ठ भ्राता ! शोक मत करो । होनहार अटल होती है । आपने मेरी प्राण रक्षाके लिए सुख-सम्पदा छोड़ी, वहुत वर्षों तक वनमें निवास किया, होनहारको टालनेका प्रयत्न किया । अपयश और पापसे डरनेवाला सज्जन पुरुष बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करता है, परन्तु जिसका दैव कुटिल हो, पराज्ञमुख हो, तब कोई क्या यत्न कर सकता है ?”

इसके पश्चात् जरत्कुमारने कृष्णसे वनमें आने का कारण पूछा, तो कृष्णने आरम्भसे द्वारिका दहन तक का सब हाल सुनाया । वंशका नाश सुन कर जरत्कुमार विलाप करने लगा । वह कहने लगा, “हे भाई ! चिरकालके बाद तो आप मिले और मैंने आपका यह आतिथ्य-सत्कार किया । मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? चित्तकी शान्ति कहाँ प्राप्त करूँ ? हा कृष्ण ! आपको मार कर मैंने दुनिया में दुख और अपयश ही पाया ।”

उत्तम हृदयी जरत्कुमारको सान्त्वना देते हुए श्री कृष्णने कहा, “हे राजेन्द्र ! इस विलापको छोड़ो । सब जीव किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं । ससारमें कौन किसको सुख-दुख देता है ? कौन किसका मित्र है ? कौन किसका शत्रु है ? वास्तवमें अपना किया हुआ कार्य ही सुख या दुख देता है । बलदेव मेरे लिए जल लेने गया है । आप शीघ्र ही उनके आनेसे पहले यहाँ से चले जाओ । कहीं ऐसा न हो कि वह आप पर कुद्ध होकर आपको मार दे और फिर अपना वश ही न रहे । आप श्रावकके व्रत धारण करो और जाकर पाण्डवोंसे सब वात कह दो । वे अपने हितैषी हैं । हमारे कुलकी रक्षाके लिए वे अवश्य आपको राज देंगे । इतना कहकर श्री कृष्णने जरत्कुमारको कौस्तुभमणि निशानीके रूपमें दी, जिसे देखकर पाण्डव-

उमका आदर करे । श्री कृष्णने उस मणिको छिपाकर ले जानेको कहा । जरत्कुमारने मणि लेकर कृष्णसे क्षमा मांगी । श्री कृष्णके पावका बागा निकाला और विदा ली ।

श्री कृष्णके पावमे धावकी बड़ी पीड़ा थी । तब उन्होने उत्तर दिगाकी ओर मुख करके पल्लव देश स्थित तीर्थकर नेमिनाथको नमस्कार किया और रामोकार मत्रका स्मरण किया । वे पृथ्वी रूपी जैया पर लेट गये । उन्होने अपना गरीर वस्त्रसे ढक लिया । उस भ्रमय उनकी बुद्धि समस्त परिग्रहसे निवृत्त हो गयी, वे बुद्धि या भनमे पूर्ण रूपसे अपरिग्रही बन गये । सब के प्रति उन्होने मित्रता का भाव प्रकट किया । इस प्रकार उनके विचार हर प्रकार से शुभ थे । कृष्णके जिन पुत्रों, पौत्रों, स्त्रियों, भाइयों, गुरुओं और कुटुम्बी वान्धवोंने भविष्यका विचार छोड़ करके अग्निके पहले तमस्या करना आरम्भ कर दिया था, वास्तवमे वे धन्य थे । पर हजारों न्यौ-पुरुष और द्वारिकावासी और मित्रगण तपका कष्ट न उठा कर अग्निमे भस्म हो गये । कर्मके प्रबल भारसे कृष्णने भी नप नहीं किया, श्रावकके व्रत भी नहीं पाले, पर जिनदेव, वीतराग गुणों और निरग्रन्थ साधुओं और दया-धर्ममे सच्ची तथा दृढ़ श्रद्धा थी । शुभ चिनन करते हुए कौसावी बनसे वे भावी तीर्थकर पर-स्नोक मिधारे ।



बलदेव का तप

बलदेव स्वामी श्री कृष्णके लिए जल लेने जगल मे दूर निकल गये पर उन्हे जल नहीं मिला । उसके मन मे कृष्ण ही वसा था । रास्ते मे उसे वहुत से अपशकुन हुए पर वह लौटा नहीं । वन मे जल दुर्लभ था और जगह-जगह मृगतृणा थी । वह समझने लगा कि यह जल भरा है । वह वनमे मृगोके समान दौड़ रहा था । तब उस ने एक सरोवरी देखी जिसके किनारे चकवे, सारस और कलहंस सुन्दर शब्द कर रहे थे । सरोवरी तरगे मार रही थी । सरोवरी को देखकर बलदेवने सुखकी लम्बी साँस ली ।

बलदेवने जल छानकर स्वय पिया और पत्तो के पात्रमे पानी भरा और चल पड़ा । वह तेज चला ताकि वह शीघ्र जाकर भाई को पानी पिलाये ।

बलदेवके मनमे चिंता थी कि निर्जन भयानक वनमे वह भोले भाई कृष्ण को अकेला छोड़ कर क्यो चला आया । बलदेव ने दूर से कृष्णको पीताम्बर ओढे लैटा देखा, तो सोचा कि जहाँ मैं उसे छोड़ गया था, वही सुख निद्रासे सो रहा है । वह स्वय जागेगा तभी उसे पानी पिलाऊगा । जब वहुत देर हो गई और श्रीकृष्ण न जागे, तब उसने श्रीकृष्णको जगाने के लिए कहा कि वहुत सो चुके, अब उठो और जल पियो । यदि कृष्ण सोते होते, तो इन

वानो से उठ जाने पर वे तो दीर्घ निद्रामें सो रहे थे, मर चुके थे, नव कैसे उठते ?

बलदेव चुप होकर बैठ गया । पर जब उसने चीटियोंको वस्त्र में धाव पर जाते देखा तब उसने कपड़ा हटाया और देखा कि उसकी तो हालत ही कुछ और थी । बलदेवने सोचा कि कृष्ण तो मारे प्यास के मर गया और उसका सर्वस्व जाता रहा । फिर बलदेव वासुदेवकी छानीसे लग गया और मूर्च्छित हो गया । बलभद्र के लिए मूर्च्छित होना भी अच्छा ही था, वरना वह भाईके शोकसे तभी मर जाता । बलदेव तो हृसिके स्नेह पाशमें दृढ़ रूपसे बधा था । उन जैसा स्नेह जगतमें और किसको था ? जब बलदेव सचेत हुआ तब उसने वासुदेवके अग्र अपने हाथ से छुए, पावके धावको देखा, तो नाल पाव रक्तसे अधिक लाल हो गया था । रक्तकी दुर्गंधि भी उसे मालूम हुई । तब उसने समझा कि यहाँ उसको मारनेवाला कौन हो नकाना है ? तभी बलदेवने निहनाद किया, जिससे सारा वन गूज उठा, हाथियों का मद उत्तर गया और गेर मारे डर के गुफाओंमें युग गये । उसने पुकार कर कहा, “जिसने अकारण मेरे भाईको माना है, जरा वह जीव्र मेरे सामने आये । जो क्षत्री शूरवीर होते हैं, वे नोने हुए अम्ब्रहीन, अमाववान, नम्रीभूत, त्यक्तमान और भागने हुए को नहीं मारते । वे स्त्री, वालक, दृढ़ और रोगीको भी नहीं मारते । ऐसे क्षत्री यशस्वी होते हैं, यश के धनी होते हैं ।”

जब उधर-उधर दीदनेपर भी बलदेवको कोई न मिला, तब उसने रुप्या को छानी ने लगा लिया और विनाप करके रोने लगा । बलदेव रो-रो कर कहने लगा, “हाय जगतके प्रिय ! जगतके म्बामी हाय जगतेन ! तू मुझे छोड़कर कहा चला गया ? तू जन्दी आ ! पर जनक युन्न निजीव को वाग-वार पानी पिलाना था, पर उनके रोने में जल उगा भी प्रवेश नहीं करता था । बलदेव कभी उनका मुर

धोता, हर्ष पूर्वक उसे देखता, कभी चूमता तो कभी उनको सूधता, वह कभी उनका वचन सुनने की इच्छा करता। ऐसा मूढ़बुद्धि वन गया था बलदेव। आचार्योंने ऐसी आत्म-मूढ़ता को धिक्कारा है। कभी बलदेव कहता, “क्या स्वर्ग समान विगाल वैभवशाली द्वारिका के भस्म हो जाने से जीने की आवश्यकता न समझकर तू तप्त हो रहा है? ना भाई, ऐसा मत कर। भारत भूमि नाना प्रकारकी अविनाशी खानों से भरी पड़ी है। क्या समस्त यादवों और भोजवंशियों के क्षय हो जानेसे अपने को वन्धु रहित समझकर तू मोह को प्राप्त हो गया है? ऐसा करना उचित नहीं है। मैं और आप जीवित रहे, तो समझो कि हमारे सब भाइयों का समूह जीवित है। तुम सदा मुझे देखते रहते थे, फिर भी तुम्हे तृप्ति न होती थी। पर आज तुम मेरी ओर देखते भी नहीं। मैंने सूखता से पानी लेने जाने के कारण अपने रत्नसदृश भाई को खो दिया। मेरे रहते तुझे हरनेवाला, मारनेवाला कौन था? तू कसके क्रोध और जरासध के यशको चकनाचूर करनेवाला था, पर खेद है कि आज तू स्वयं नहीं रहा। आज सूरज भी तुझे निद्रामें डूबा देखकर तेरे प्रति शोक प्रकट करता हुआ अपनी किरणों को सिकोड़कर अस्ताचल की ओट में चला गया है। सभी प्रकृति तेरे शोक में निमग्न है, रुदन कर रही है। हे देव! अब वहुत मत सोओ। सूर्य अस्त हुआ, सन्ध्या भी गई, अब रात हो गई है। हे भाई! यह वन तुम्हारे रहने लायक नहीं है। यहा अनेक पापी जीव फिरते हैं, यहा कुशब्द हो रहे हैं। इसलिए यहा से चलकर किसी और दूसरे सुन्दर स्थान में जाकर रात व्यतीत करे। यहां वन के दुष्ट मासभक्षी जीव गिछ, कब्बे और गीदड इत्यादि विचर रहे हैं। तुम सुन्दर महलों में रहते थे, राजा लोग तुम्हारे दर्घनों को प्रतीक्षा करते थे, प्रात गीत तथा सगीत होने पर तुम उठते थे। पर आज तुम्हे क्या हो गया है?” इस प्रकार बलदेव विलाप कर रहा था।

गीतम् गण्ठरने राजा श्रेणिक से कहा, “हे श्रेणिक ! बलदेवने वासुदेवसे अधिक मोह किया । दोनो भाई प्राणवललभ थे । पर बलदेव की सब वाते व्यर्थ गईं । वह कृष्ण को छातीसे लगाये बन मे फिर रहा था । उसे विलाप करते बहुत से दिन-रात बीत गये । न खाना, न पीना और न सोना । वह कृष्ण के मृत शरीर को लिए फिरते रहे, पर कही जान्ति न मिली ।”

ग्रीष्म ऋतु गयी, वर्षा ऋतु आई । वादल गरजने और बरसने लगे । काली घटाओंसे विजली चमकने लगी । उसी समय वासुदेव की आजानुमार जरत्कुमार भीलके भेपमे पाण्डवोंके पास दक्षिण मथुरा गया और युधिष्ठिरसे राजसभामे मिला । तब जरत्कुमारने युधिष्ठिर आदि को द्वारिका द्वहन और प्रमादवण अपने द्वारा कृष्णके परलोक गमनके समाचारको रोकर मुनाया । उसने प्रमाण स्वरूप कृष्णकी दी हुई कीन्तुभमणि राजाको दिखाई । मणिको देखकर और कृष्णके वियोगका नमाचार मुनकर युधिष्ठिर आदि पाचो भाई विलाप करने लगे, ज्योंकि कृष्णने उनका बड़ा स्नेह था । उसी समय रनवाममे कुन्ती माना और पाचो भाइयोंकी रानिया ढहाड मार-मार कर रोने लगी । पाण्डवोंके घरके नर-नारी सभी विलाप करके कहने लगे, “हा प्रदान पुण्य ! महावीर ! हा नसारके कष्टोंको दूर करनेवाले । आप जैसे महा पुण्योंकी यह क्या ढशा हुई ?” इस प्रकार उन्होंने बहून देव नक बार-बार ददन किया ।

पाण्डव नो नगन्त नीति-रिवाजोंको जानते थे । रोना-चीखना बन रहीं थी उन्होंने श्रीकृष्णको जला दिया । उन्होंने जरत्कुमारको भी रहा । भेप छोटकर राजकुमारोंके बन्ध पहननेको कहा । उन्होंने उनीं भी सोए रहमें छोटकर श्रावकके बन धारण करनेको कहा । शिर दूरी दूर दूर बन्धेवही देनाने चले । उनके गाथ माना कुन्ती, औपची और उनके पुछ भी थे । उनका भी उनके गाथ थी । बनमें दूर दूर उन्होंने देना, जि बलदेव नो शुप्ताके मृतक शरीरको

उबटना मलकर स्नामे करा रहा है और आभूषण पहना रहा है। वे बलदेवको छातीसे लगाकर बहुत रुदन करने लगे। कुछ समय बीतनेपर माता कुन्ती और उनके पुत्रोंने बलदेवको दाह-सस्कार करनेको कहा। पर बलदेवने कृष्णके मृत शरीर को न दिया, उल्टा कुपित होकर कुछ-कुछ कहने लगा। उसने उन्हे कृष्णको स्नान कराने और उसके लिए भोजन तैयार करनेको कहा। सब कुछ जानते हुए और बलदेवके कामोंको व्यर्थ समझते हुए भी पाण्डवोंने बलदेवकी आज्ञाका पालन किया और समस्त वर्षाकाल वही वनमे उसके पास रहे।

बरसात बीत गई। गीत ऋतु आ गई। वे सब वही वनमे बलदेव के पास रहे। श्रीकृष्णके जिस शरीरसे जीवित अवस्थामे सुगंध आती थी, अब उससे महा दुर्गन्ध आने लगी।

अब बलदेवके प्रतिबुद्ध होनेका समय आ गया। तभी वहा सिद्धार्थ नामका सारथी भाई जो देव हो गया था और जिसने बलदेव को वचन दिया था, वहां आ गया। उसने बलदेवको प्रबुद्धकरने के लिए निम्नलिखित अनेक दृष्टान्त दिये।

पहले उसने एक ऐसा रथ दिखाया जो पर्वतके विषम मार्गपर आसानीसे चल सका पर चौरस मैदान मे आकर रुक गया और टूट गया। वह देव उस रथकी सन्धिको ठीक करने लगा, जोड़ने लगा। पर वे जुड़ती ही न थी। तब बलदेवने पूछा, “हे भाई! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, तेरा रथ पर्वतके विषम मार्गपर तो चल सका पर यहां मैदानमे आकर रुककर टूट गया और तेरे ठीक करनेपर भी ठीक नहीं होता। इसका खड़ा होना कैसे सम्भव है?” देवने उत्तर दिया, “हे बलदेव! जिस कृष्णका महाभारतमे वाल वाका नहीं हुआ, वह जरत्कुमारके वाण मात्र से नीचे गिर गया। अब इस जन्ममे इसका उठना कैसे सम्भव हो सकता है?” फिर देव

एक निर्जन गिला तलपर कमलिनी लगाने लगा। बलदेवने पूछा, “निर्जन गिला तलपर कमलिनी कैसे उग सकती है?” इसपर देवने कहा, “भला निर्जीव गरीरमे कृष्णकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?” फिर देव एक मूखे वृक्षको सीचने लगा। तब बलभद्र ने कहा, “कहीं सूखा वृक्ष भी पानी देनेसे हरा हुआ है?” देव ने उससे पूछा, “हे बलदेव! मृत कृष्णको स्नान कराने से क्या लाभ है?” फिर देव एक मृतक बैल को धास-पानी देने लगा। उसे देखकर बलदेवने पहले की तरह पूछा, “अरे मूर्ख! इस मृतक बैल को धास-पानी देने से क्या लाभ होगा?” उत्तर मे देवने कहा, “मृतक कृष्णको आहार-पानी देने से जो लाभ हो सकता है, वही लाभ इस मरे बैलको धास-पानी देने से हो सकता है। कितने आश्चर्य की बात है कि बड़े आदमी अपनी भूल नहीं समझते, दूसरो की भूले नुग्न्त देव लेते हैं।”

उस देवकी इन बातोमे बलदेवकी आखों खुल गई। वह अपनी भूतको ममझ गया। उसका भूटा मोहपाठ टूट गया और वह समझ गया, कि कृष्ण तो परलोक गये। बलदेव कहने लगा, “मैं व्यर्थ छह महीने कृष्णके मृत यर्गण्को निए फिरता रहा। मैं भूलसे ममझता रहा कि मैं न था, नभी उनको बाण लगा। डम प्राणीका न कोई रक्षक है, न नामकर है। आयु कर्म भवका रक्षक है, आयु कर्मके क्षीण होते ही यर्गण्का नाज होता है। यह राज्य मम्पदा हाथीके कानके समान चलता है। जहाँ सवोग है, वहा वियोग है, जीवन मरणके दुखसे नीरज है। एक मोहा ही अविनाशी है। वही प्राप्त करने योग्य है।” ऐसे प्रसार बलदेवने अपने वशके उम देवसे धर्मज्ञान और मच्चा विद्याना प्राप्त किये।

इसे अन्त बलदेव, जगन्नुमार और पाण्डवोंने तुड़गीगिरि के विश्वरूप शीर्षमारा दाह यमकार कन्के जगन्नुमार्गको गजय दिया। दहराने वीरनारी दग्धमनुर ममझ कर परिग्रह के व्यागका निश्चय करके

साथियोंके साथ उसी पर्वत शिखरपर आश्रय लिया । अब उन्हे वैराग्य हो गया । वहा उस समय कोई मुनि नहीं था, जिससे वे दीक्षा लेते । उस समय पल्लव देश मे तीर्थकर नेमिनाथ विराजमान थे । अत बलदेवने पल्लव देशकी तरफ मुख करके नेमिनाथका स्मरण किया, उन्होंने नमस्कार किया और उनकी शिष्यता स्वीकार की । फिर उन्होंने अपने हाथोंसे अपने सिरके केश उखाड़े ।

अब बलदेव महाव्रती बन गये । बलदेव गरीरसे अत्यन्त सुन्दर नहीं थे । जब वे आहारके लिए नगरमे गये, तो स्त्रियोंकी विपरीत चेष्टाए देखकर उन्होंने नगरमे आना ही छोड़ दिया और बनमे ही आहार लेनेकी प्रतिज्ञा की । बनके बाहर आहार लेने का भी त्याग कर दिया ।

बलदेवके वैराग्य लेने पर पाण्डवोंने जरत्कुमारके साथ अनेक राज कन्याओंका विवाह कर दिया । फिर वे पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी आदि तीर्थकर नेमिनाथके दर्शनार्थ और सयम धारने के लिए पल्लव देश गये ।

बलदेवने मुनि होकर घोर महातप करना शुरू कर दिया । ससारमे सिवाय आत्माके सब कुछ अनित्य या क्षणभगुर हैं । तन, धन, कुटुम्ब, ससारके सुख, राज्य, सम्पदा तथा सम्बन्ध आदि सब अनित्य हैं । इस जीवकी शरण या रक्षा करनेवाला कोई नहीं, धर्म ही उसकी शरण है । यह ससार रूपी चक्र अनादि कालसे भ्रमण करता है । कभी स्वामीसे सेवक बनता है और कभी स्वामी पिता पुत्र बन जाता है और पुत्र पिता । यह प्राणी अकेला मरता है । मैं (आत्मा) चेतन हूँ और गरीर अचेतन है । जब गरीर भी मुझसे भिन्न है, तब दूसरी वस्तुओंसे भिन्नता क्यों न होगी ? अपना या पराया शरीर रक्त, वीर्य आदि मलीन पदार्थोंसे बना है । इसलिए कौन पवित्र आत्मा इस अपवित्र गरीरसे विशेषज्ञके समय गोक करेगा

और स्यांगके समय राग या प्रेम करेगा ? काया, वचन और मनके योगसे पुण्य और पाप कर्मका आगमन होता है । कर्मोंके आगमनके बाद यह जीव उनमें बबकर ससारसे जन्मता-मरता है । कर्मोंके आगमनको रोकना सबर कहलाता है । सद्गतिका मार्ग सबर ही है । फिर आये हुए कर्मोंको क्षय करना आवश्यक है । कर्म अपना फल देकर ममाप्न हो जाते हैं । पर सचित कर्मोंको तपके द्वारा नष्ट करना कल्याणकारी है । यह लोक अनादि निधन है, इसका कोई कर्ता धर्ता नहीं है । इस ससारमें रत्नत्रय अर्थात् सच्चा विश्वास, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र प्राप्त करना दुर्लभ है । कर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । नमाखिमरण दुर्लभ है । धर्म ही मोक्षदाता है । इसके दस लक्षण उत्तम धर्म, मत्य और अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निर्गर्वता, निराकृपटता, पवित्रता, तप और सयम है । धर्मके त्यागसे जीव अनत दुखोंमें पाता है । मुनि वलदेव हर समय इस प्रकारके विचारोंका चिन्तवन करने लगे । भाई श्रीकृष्णका जो मोह था, वह इन सद्विचारोंमें हूँ दूर हो गया ।

तप करने और मुनियन निवाहने में अनेक कष्टोंका सामना लगना पड़ता है, उन्हें गानिके साथ सहना पड़ता है । इन कष्टोंको जीनना, उनमें जरा भी विचलित न होना, महान तपस्वीके लिए आवश्यक है । भूत-प्यान, गर्भों-मर्दी, दास, मच्छर, नगनता, अरुचिकर प्रसंग, काम वासना, अप्रिय वचन, ताडन-तर्जन, याचक वृत्ति, अनिष्ट वन्नुकों प्राप्ति, नोग महन और सत्कार मिलना या न मिलना यादि अनेक कष्ट हैं । उन नव कष्टोंका मुनि वलदेव सम भासने गठन करने लगे । ऐसे अनेक कष्ट उनपर आये, पर उन्होंने उनपर विजय पाई । उन परीपहो—कष्टों—की कल्पना मात्रसे ही आशमी या उद्घाटन है । पर मुनि नो उन्हें विना दुख माने समझावसे गठते हैं । इस भूतकौन दायरी मुग्ध और नहा यह अनेक कष्टोंसे भरी

मुनिचर्या ? तपके फल तककी इच्छा भी मुनिजन नहीं करते, किसी वस्तुकी कामना नहीं । बाह्य शारीरिक तपके साथ-साथ वे सभी प्रकारका आत्मिक तप—प्रायश्चित्त, विनय, सेवा, स्वाध्याय, कायो-त्सर्ग, ध्यान—करने लगे । इस प्रकार विषय-कपायो आदि दोषोंको जीत कर बलदेव दुर्द्वर कठोर तप करने लगे । वे तपस्वियोंमें शिरो-मणि बन गये ।

ससारसे भयभीत महा पराक्रमी युधिष्ठिर आदि पाचो पाण्डव, कुन्ती और द्रौपदी आदि श्री तीर्थंकर नेमिनाथके पास पल्लव देशमें गये । उस समय भगवान अपने समवसरण में विराजमान थे । उन्होंने समवसरणकी प्रदक्षिणा करके बड़ी विनयसे भगवान को नमस्कार किया । उन्होंने भगवानके ज्ञानामृतका पान किया । फिर उन्होंने श्री नेमिनाथसे अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त पूछा । तब भगवानने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा उनके पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा कि युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तीनों भाई इसी जन्ममें मोक्ष जायेंगे और नकुल तथा सहदेव एक जन्मके बाद सिद्ध होंगे अर्थात् मोक्ष जायेंगे । और द्रौपदी सम्यग्दर्शनसे शुद्ध होकर तपके प्रभावसे स्वर्गमें देवी होगी, फिर वहांसे चयकर नरभव पाकर तप करके निरजन पद पायगी, मोक्ष जायगी । अपने पूर्व-जन्मोंका हाल सुनकर पाण्डव ससारसे विरक्त हो गये और तभी तीर्थंकर नेमिनाथके पास सयम ग्रहण किया । माता कुन्ती, द्रौपदी, और सुभद्रा आदि अनेक रानियोंने गुरुआरणी राजमतीसे आर्यिका दीक्षा ली । वे साधिवर्यां बन गईं । वे पाचो पाण्डव रत्नत्रयको अपना कर पाचो महाव्रत पालते हुए आत्म-स्वरूपका ध्यान करने लगे । वे महातप करने लगे और पदयात्रा करके विहार करने लगे । बड़ा उग्रतप था उनका । उन सब पाण्डवोंने जो तप किया, वह उनसे ही होनेवाला अद्वितीय तप था और किसीके द्वारा इतना घोर कठोर

तप अवश्य था । युधिष्ठिर आदि मुनियोंने दो-दो तीन-तीन दिनके उपचार किये । मुनि भी तो बहुत ही शक्तिशाली थे । उन्होंने मनमें नोचा कि यदि उन्हे भालेके अग्रभागपर आहार मिलेगा, तभी उसे ग्रहण करेंगे । ऐसे आहारका सयोग छह महीनेतक नहीं बना । क्षुधाने उनका बरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया । इस तपसे उनका हृदयका थम दूर हो गया । ऐसे अपूर्व और महातपस्की परिव्राजक ये बे पाण्डव ।



श्री नेमिनाथ निर्वाण

सब देवोंके देव तीर्थकर नेमिनाथजी उपदेश करते हुए उत्तरसे-
उत्तराष्ट्र देशकी ओर आये । उनका तेज पूर्ववत् सर्वत्र व्याप्त था ।
समवसरणकी विभूतिवाले नेमि जनेन्द्र जब दक्षिणमे विहार कर
रहे थे, तब वहाँके देश स्वर्गके समान सुशोभित हो रहे थे । जब
उनका अंतिम समय आया, तब निर्वाण कल्याणकी विभूतिको
प्राप्त करनेवाले नेमिनाथ स्वयं गिरनार पर्वत पर पहुँच गये । वहाँ
उत्तराष्ट्रको रचना हो गयी । वहाँ उन्होने स्वर्ग और मोक्षकी
प्राप्तिके साधन सम्यग्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य-
रूप जिनधर्मका उपदेश दिया । यह उपदेश कोई एक महीने तक
चलता रहा । धर्मोपदेश उनका स्वाभाविक गुण था । किसी की
प्रेरणासे वे धर्मोपदेश नहीं देते थे । उन्होने सैकड़ों मुनियोंके साथ
निर्वाण प्राप्त किया, वे सिद्धलोक को सिधारे । सभी प्रकार के देव
और इन्द्रोने इस निर्वाण कल्याणकी पूजा की । दिव्य-गन्ध और
पुष्प आदि से पूजित तीर्थकर आदिके शरीर मोक्ष जाते समय क्षण
भरमें बिजलीके समान चमकते हुए आकाशमे विलीन हो जाते हैं ।
उनके शरीरके परमाणु अंतिम समय बिजलीके समान क्षण भरमे
समाप्त हो जाते हैं । जब वहाँ उनका भौतिक शरीर नहीं रहा,
तब इन्द्रादिने उनका मायामय शरीर बना कर उसका दाह-कर्म
कर दिया ।

समुद्रविजय आदि अन्य मुनि भी गिरनार पर्वतसे मोक्ष गये ।
इसलिए उस समयसे गिरनार पर्वत निर्वाण स्थानके रूपमे प्रसिद्ध
हो गया, वह तीर्थराज बन गया ।

जब पाचो पाढ़व मुनियोने श्री नेमिनाथके निर्वाणका समाचार सुना, तब वे गत्रुञ्जय पर्वत पर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये । उस समय वहाँ दुर्योधनके वंगका ध्रुयवरोधन नामका कोई पुरुष रहता था । पर्वत पर पाण्डवोंके आनेकी बात सुनकर पूर्व बैरके कारण उसने पाण्डवोंको बडे कष्ट दिये । ऐसे कष्टोंको उपसर्ग कहते हैं । उसने लोहेके मुकुट, कडे और कटिसूत्र गर्म करके उन पाण्डव मुनियोंको पहनाये । पाण्डव मुनि बडे धीर, वीर थे—वे बडे-से-बडा कष्ट भहन करने मे समर्थ थे । उन्होने समझा कि यह सब उनके कर्मोंका फल है, और वे उनका अय करने मे समर्थ थे । उन्होने उन तपते हुए लोहेके मुकुट आदि को हिमके समान शीतल नमझा । युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तो उन कष्टोंको सहते हुए नरकर मोक्ष गये । परन्तु नकुल और सहदेव बडे भाइयोंके कष्टोंको देखकर कुछ-कुछ आकुल चिन हुए थे । इसलिए वे सर्वार्थ-सिद्धि गये । वहाँसे मुनि और नारद भी दीक्षा लेकर तप करके मोक्ष गये ।

तु गीगिरिके शिखरपर बलदेवने भी ससार चक्रको तोड़नेके लिए बडा धोर तप किया । कभी वे एक दिनका उपवास करते, कभी दो दिन का । कभी-कभी तीन दिनका, तो कभी पन्द्रह दिनका उपवास करते । यहा तक कि वह छह-छह महीनेका उपवास भी कर देते हैं । उन प्रकार उन्होने न केवल अपने गरीरको मुखाया, वरन् अपने श्रोत, मान, नाया और लोभ कपायोंको भी जलाया और खैर्य ही पुढ़ दिया । पहले बताया जा चुका है, कि बनदेव मुनि आहार शार्दि के लिए नगर और ग्राम नहीं जाते थे । उन्हे बनमे ही आहार नहीं ही प्रतिज्ञा थी । परं बनमे आहार कहा ? उनकी उम प्रतिज्ञा ही बात नगर-नगर और गाव-गांवमेफैल गयी । समीपवर्ती गजा ग्रन्थ-ग्रन्थोंमें युन्हाँ धृमिन हुए और धर्मनिमि भूमज्जिन हाँकर बल-देवों पाढ़ देंते दिए जैवार तो गये । उन गजाओंने मुनियोंसमांग नमोप मिलाए नमूह जो देगा । ये निह देव-रचित थे ।

राजाओंने अपने विचारको त्याग दिया और बलदेव मुनिको नमस्कार किया । तबसे बलदेव नरसिंहके नामसे प्रसिद्ध हो गये । वास्तवमें उनका वक्षस्थल सिंहके वक्षस्थलके समान चौड़ा था और वे सिंहों द्वारा सेवित थे । उन्होंने एक सौ वर्ष कठोर तप किया और चार तरह की आराधनाएँ की । वे स्वर्गमें ब्रह्मेन्द्र हुए । उन्हे अवधिज्ञान था । उन्होंने भूत-भविष्यका सब हाल जान लिया । अपने अवधिज्ञानसे उन्होंने कृष्णसे भेट की । दोनों आपसमें मिलकर बड़े प्रसन्न हुए । श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा कि हम दोनों तपके द्वारा कर्मोंको नष्ट करके मोक्ष जायेगे । श्रीकृष्णने बलदेवसे कहा, “द्वारिका-दहन और यदुवशके क्षयसे जो लोकापवाद हुआ है, उसे दूर करनेके लिए तुम ऐसा काम करना कि भरत क्षेत्रमें गख, चक्र, गदा और पद्मादि से युक्त मेरी मूर्तियाँ स्थापित करो ।” बलदेवने वैसा ही किया और फिर स्वर्ग चला गया । यह कथा गौतम गणधर्ने राजा श्रेणिको सुनायी ।

महा प्रतापी राजा जरत्कुमारके राज्यमें प्रजा बहुत सुखी थी । उसने राजा कर्लिंगकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वसुध्वज नामका पुत्र हुआ, जो चन्द्रमाके समान प्रजाको प्यारा था । इसी वशमें भीमवर्मा राजा हुआ । उसके वशमें अनेक और राजा हुए । फिर उसी वशमें हरिवशका आभूषण राजा कपिष्ट हुआ । जिसके अजात-शत्रु पुत्र हुआ । उसका पुत्र शत्रुसेन, पौत्र जितारसेन और प्रपौत्र जितशत्रु हुआ । गौतम गणधर्ने राजा श्रेणिकसे पूछा कि क्या वह राजा जितशत्रुको नहीं जानता ? उस जितशत्रुसे तीर्थंकर महावीरके पिता सिद्धार्थकी छोटी बहनका विवाह हुआ था, जो महावीरकी बुआ थी ।

जब महावीरका जन्म हुआ, तब जितशत्रु कुण्डलपुर गया और राजा सिद्धार्थने उसका बड़ा आदरमान किया । राजा जितशत्रुकी रानी यशोदमासे उत्पन्न यशोदा राजकुमारी थी । राजाकी उत्कट

उच्छ्वासी कि अपनी पुत्री यशोदाका विवाह महावीरसे हो जाय, परन्तु महावीरने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, वे तपके लिए वनमें चले गये। केवलज्ञान प्राप्त करके महावीर विहार करने लगे। तब नजा जितगत्रु भी तप करने लगा। मुनि जितगत्रुने अपने तपसे केवलज्ञान प्राप्त किया और उससे उनका मनुष्य जन्म सफल हुआ।

इन प्रकार गौतम गणधरने राजा श्रेणिकको यह लोक-प्रसिद्ध नया त्रेसठ यन्नाका पुरुषोंके पुराणपद्धतिसे सम्बन्ध रखनेवाली हरिवंशकी कथा मध्येष्टमे कही।

राजा श्रेणिक इस पवित्र कथाको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और वह गौतम गणधरको नमस्कार करके अपने नगरको चला गया।

महामुनि जितगत्रु केवली भी ससारमें विहार करके कर्मवधन-न मुक्त होकर मोक्ष गये। भगवान् महावीर भी जगत के नरनारियोंको अपना उपदेश देकर पावापुर नगरीमें पहुँचे और वहाँ के मनोहर उच्चानमें विराजमान हो गये। जब चतुर्थ कालमें तीन वर्ष साढे छह मास बाकी रहे, तब वे स्वाति नक्षत्रमें कार्तिकी अमावस्याके दिन प्रथम ग्रन्थके नमय कर्मांको नष्ट करके सब वन्धन रहित होकर मोक्ष गये। उन नमय मुर-अमुरीके द्वारा जलाई हुई बहुत देवीप्यमान शीपकोंको पक्षिने पावा नगरीका आकाश जगभगा उठा। राजा श्रेणिकने भी प्रजाके नाय नीर्घकर महावीरके निवरण कल्याणकर्ता पूजा की। नवमें भारतवर्षमें उन कल्याणककी स्मृतिके रूपमें यह निर्दारण उनका दीपमानिकाके स्वप्नमें प्रतिवर्ष बडे उत्साह और हर्षमें नवागा जाता है और नभी नर-नारी भगवान्की पूजा करके निर्वाण-प्राप्ति उर्जाकी भावना करते हैं।

